CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुष्प

21628

कविवर बुलाखीचन्द बुलाकीदास एवं हेमराज

प्रकाशक
श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी जयपुर

लेखक एवं सम्पादक
डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस भाग की विशिष्टता न केवल इन रचनाओं का अज्ञात होना है अपितु इनकी भाषागत एवं साहित्यिक वैशिष्ट्य की पांडित्यपूर्ण विशद विवेचना भी है जो जैन वाङ्मय के लब्धप्रतिष्ठ अधिकारी विद्वान डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा की गई है। डा. कासलीवाल को ऐसे बीसों कवियों को प्रकाश में लाते हुए, इसी प्रकार के कई विद्वतापूर्ण संकलन संपादित करने का श्रेय है। ये सभी ग्रंथ विद्वत्समाज में चर्चित और समादृत हुए हैं। श्री महावीर ग्रंथ अकादमी के छठे 'पुष्प' के रूप में प्रकाशित इस संकलन की श्रृङ्खला को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील, डा. कासलीवाल की यह निःस्वार्थ सेवा सभी साहित्य प्रेमियों के द्वारा अभिनंदनीय और अनुकरणीय है।

रावत सारस्वत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी के [illegible]

श्री गणेश वर्णी दि-जैन संस्थान, वाराणसी

को भेंट

डा. कस्तूरचंद कासलीवाल

27/6/87

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी–छठा पुष्प

कविवर बुलाखीचन्द बुलाकीदास एवं हेमराज

[१७वीं–१८वीं शताब्दि के छह प्रतिनिधि कवियों—
बुलाखीचन्द, बुलाकीदास, पाण्डे हेमराज, हेमराज गोदीका,
मुनि हेमराज एवं हेमराज के जीवन, व्यक्तित्व एवं कृतित्व
के साथ उनकी महत्त्वपूर्ण कृतियों के मूल पाठों का संग्रह]

लेखक एवं सम्पादक
डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

प्रकाशक

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी, जयपुर

प्रथम संस्करण : मार्च, १९८३ मूल्य : ४०.००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादक मण्डल—श्री रावत सारस्वत, जयपुर
डा. हरीन्द्रभूषण जैन, उज्जैन
श्रीमती शशिकला बाकलीवाल, एम. ए. जयपुर

निदेशक मण्डल—
परम संरक्षक— स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्त्तिजी महाराज मूडबिद्री
संरक्षक— साहू अशोककुमार जैन, देहली
पूनमचन्द जैन, झरिया (बिहार)
रमेशचन्द जैन (पी. एस. जैन) देहली
डी. वीरेन्द्र हेगड़े, धर्मस्थल
निर्मलकुमार सेठी, लखनऊ
महावीरप्रसाद सेठी, सरिया (बिहार)
कमलचन्द कासलीवाल, जयपुर
डा. (श्रीमती) सरयू वी. दोशी, बम्बई
पन्नालाल सेठी, डीमापुर
अध्यक्ष— कन्हैयालाल जैन, मद्रास
कार्याध्यक्ष— रतनलाल गंगवाल, कलकत्ता, पूरणचन्द गोदीका, जयपुर
उपाध्यक्ष— गुलाबचन्द गंगवाल रेनवाल, अजितप्रसाद जैन ठेकेदार, देहली
कन्हैयालाल सेठी जयपुर, पदमचन्द तोतूका जयपुर
रतनलाल विनायक्या डीमापुर, त्रिलोकचन्द कोठारी कोटा
महावीर प्रसाद नृपत्या जयपुर, चितामणी जैन बम्बई
रामचन्द्र रारा गया, लेखचन्द बाकलीवाल जयपुर
रतनलाल विनायक्या भागलपुर, सम्पतकुमार जैन कटक
पदमकुमार जैन नेपालगंज, ताराचन्द बख्शी जयपुर
डालचन्द जैन सागर, रतनचन्द पंसारी जयपुर

निदेशक एवं प्रधान
सम्पादक— डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल, जयपुर

प्रकाशक— श्री महावीर ग्रंथ अकादमी
८६७—अमृत कलश, बरकत कालोनी,
किसान मार्ग, टोंक रोड, जयपुर-३०२०१५

प्रतियां : ११००

मूल्य : ४०.००

मुद्रक— मनोज प्रिन्टर्स
७६६, गोदीकों का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर-३०२ ००३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३४२८

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी–प्रगति रिपोर्ट

श्री महावीर ग्रंथ अकादमी की स्थापना समस्त हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के उद्देश्य के साथ साथ जैन साहित्य का प्रकाशन, नव साहित्य निर्माण एवं जैन साहित्य, कला, इतिहास, पुरातत्व जैसे विषयों पर शोध करने वाले विद्यार्थियों को दिशा निर्देशन के उद्देश्य को लेकर की गई थी। इन उद्देश्यों में अकादमी निरन्तर आगे बढ़ रही है। हिन्दी जैन कवियों पर प्रकाशित होने वाले भागों में छट्ठा पुष्प पाठकों एवं माननीय सदस्यों के सामने प्रस्तुत किया जा रहा है। अब तक प्रस्तुत भाग सहित निम्न भाग प्रकाशित किये जा चुके हैं।

१. महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवनकीर्त्ति
२. कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि
३. महाकवि ब्रह्म जिनदास — व्यक्तित्व एवं कृतित्व
४ भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द्र
५. आचार्य सोमकीर्ति एवं ब्रह्म यशोधर
६. कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज

अकादमी के सप्तम पुष्प की सामग्री भी संकलित की जा रही है तथा उसे अक्टूबर तक अथवा वर्ष समाप्ति के पूर्व ही प्रकाशित कर दिया जायेगा।

जैन कवियों के द्वारा विशाल हिन्दी साहित्य की संरचना की गयी थी। इसलिये उनकी सम्पूर्ण कृतियों को २० भागों में प्रकाशित करना तो संभव नहीं हो सकेगा क्योंकि ब्रह्म जिनदास एवं पाण्डे हेमराज जैसे बीसों कवि हैं जिनकी कृतियों के मूल पाठ प्रकाशित करने के लिए एक नहीं अनेक भाग चाहिये। फिर भी यह प्रसन्नता का विषय है कि अकादमी की ओर से अब तक बूचराज, छीहल, ठक्कुरसी, गारवदास, सोमकीर्ति, ब्रह्म यशोधर सांगु, गुणकीर्ति, यशःकीर्ति जैसे कुछ कवियों की तो सम्पूर्ण रचनायें प्रकाशित की जा चुकी है तथा शेष कवियों ब्रह्म रायमल्ल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्रिभुवनकीर्ति, ब्र. जिनदास, बुलाखीचन्द्र, बुलाकीदास एवं हेमराज की रचनाओं के प्रमुख पाठों को प्रकाशित किया गया है। जिससे विद्वान गण उनकी काव्यगत महानता की जानकारी प्राप्त कर सकें और चाहें तो उनकी रचनाओं का भी अध्ययन कर सकें।

अकादमी द्वारा २० भाग प्रकाशित होने के पश्चात् हिन्दी जगत् में है जैन कवियों के प्रति जो उपेक्षा एवं हीन भावना व्याप्त हैं वे पूर्ण रूप से दूर होगी और उन्हें साहित्यिक जगत् में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त होगा और उनका साहित्य साधारण पाठकों को स्वाध्याय के लिये उपलब्ध हो सकेगा ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है।

सहयोग

अकादमी को समाज का जितना सहयोग अपेक्षित है यद्यपि उतना सहयोग अभी तक नहीं मिल सका है फिर भी योजना के क्रियान्वय के लिये विशेष कठिनाई नहीं हो रही है लेकिन हमें भविष्य में और भी अधिक सहयोग प्राप्त होगा। जिससे प्रकाशन कार्य में और भी अधिक तेजी लायी जासके। मैं उन सभी महानुभावों का जिनका हमें परम संरक्षक, संरक्षक, अध्यक्ष, कार्याध्यक्ष, उपाध्यक्ष, सम्माननीय सदस्य एवं विशिष्ट सदस्य के रूप में सहयोग मिला है हम उनके पूर्ण आभारी हैं। अकादमी के परम संरक्षक स्वास्ति श्री पंडिताचार्य भट्टारक चारुकीर्ति जी महाराज मूडविद्री स्वय विद्वान हैं, हजारों ताडपत्रीय ग्रंथों के व्यवस्थापक हैं। साहित्य प्रकाशन की महत्ता से वे स्वयं परिचित हैं। हम उनके सहयोग के लिये आभारी हैं।

नये सदस्यों का स्वागत

पञ्चम भाग के पश्चात् ड़ा. (श्रीमती) सरयू दोशी बम्बई एवं श्रीमान् पन्नालाल जी सेठी डीमापुरने अकादमी का संरक्षक बनना स्वीकार किया है। डा. श्रीमती दोशी जैन चित्र कला की ख्याति प्राप्त विदुषी है। मार्ग जैसी कला प्रधान पत्रिका की सम्पादिका है। सारे देश के जैन भण्डारों में उपलब्ध चित्रित पाँडुलिपियों का गहरा अध्ययन किया है। Homage to Shravan belgola. जैसी पुस्तक की लेखिका है। इसी तरह माननीय श्री पन्नालाल जो सेठी डीमापुर समाज के सम्माननीय सदस्य हैं। उदार हृदय एवं सेवा भावी सज्जन हैं। साधु भक्ति में जीवन समर्पित किये हुए है तथा प्रतिवर्ष हजारों साधर्मी बन्धुओं को जिमा कर आनन्द का अनुभव करते हैं। हम दोनों ही महानुभावों का हार्दिक स्वागत करते हैं।

इसी तरह निदेशक मंडल में श्रीमान् माननीय डालचन्द जो मा. सागर एवं श्रीमान् रतन चन्द जी मा. पंसारी जयपुर ने उपाध्यक्ष के रूप में अकादमी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहयोग प्रदान किया है। हम दोनों ही महानुभावों का हार्दिक अभिनन्दन करते हैं। श्री डालचन्द जी सा. सागर से सारा जैन समाज परिचित है। अ. भा. दि. जैन परिषद के वे अध्यक्ष हैं। आपकी लोकप्रियता एवं सेवाभावी जीवन सारे मध्यप्रदेश में प्रसिद्ध है, इसी तरह श्री पंसारी सा. रत्नों के व्यवसायी हैं तथा जयपुर जैन समाज अत्यधिक सम्माननीय सज्जन हैं।

अकादमी के सम्माननीय सदस्यों में जयपुर के डा. राजमलजी सा. कासलीवाल देहली के श्री नरेशकुमार जी मादीपुरिया, मेरठ के श्री शिखरचन्द जी जैन, सागर के श्री खेमचन्द जी मोतीलाल जी, एवं डीमापुर के श्री किशनचन्द जी सेठी एवं कटक के श्री निहालचन्द शान्ती कुमार का भी हम हार्दिक स्वागत करते हैं। सभी महानुभाव समाज के प्रतिष्ठित एवं सेवाभावी व्यक्ति है। डा. राजमलजी तो नेताजी सुभाष चन्द्र वोस के विश्वस्त साथी रह चुके हैं।

संस्थाओं द्वारा सहयोग

दिसम्बर ८२ में श्री दि. जैन सिद्ध सेक आहार जी में अ. भा दि. जैन विद्वत परिषद के नैमित्तिक अधिवेशन में अकादमी की साहित्य प्रकाशन योजना की प्रशंसा करते हुए समाज से अकादमी का सदस्य बनने एवं उसे पूर्ण आर्थिक सहयोग देने के लिए जो प्रस्ताव पारित किया गया उसके लिए हम विद्वत् परिषद् के पूर्ण आभारी हैं। इसी तरह आहारजी में ही अ भा. दि. जैन महासभा के अध्यक्ष आदरणीय श्री निर्मल कुमार जी सा. सेठी ने अपने अध्यक्षीय भाषण में अकादमी के कार्यों की जिस रूप में प्रशंशा की तथा उसे सहयोग देने का आश्वासन दिया उसके लिए हम उनके भी पूर्ण आभारी हैं। माननीय सेठी सा. तो अकादमी के पहिले ही सम्माननीय संरक्षक हैं।

विद्वानों का सहयोग

अकादमी को हिन्दी साहित्य के मनीषियों का बराबर सहयोग मिलता रहता है। अब तक डा सत्येन्द्र जी जयपुर, डा. हीरालाल माहेश्वरी जयपुर, डा, नरेन्द्र भानावत जयपुर, डा. नेमीचन्द्र जैन इन्दौर एवं डा. महेन्द्र कुमार प्रचंडिया अलीगढ ने संपादकीय लिखकर एवं पं. अनूपचन्द्रजी न्यायतीर्थ, पं. मिलापचन्द जी शास्त्री, श्रीमती डा कोकिला सेठी, श्रीमती सुशीला वाकलीवाल, डा. भागचन्द भागेन्दु जैसे विद्वानों का सम्पादन में हमें सहयोग मिलता रहा है। प्रस्तुत भाग के संपादक हैं सर्वं श्री रावत सारस्वत जयपुर, डा हरीन्द्र भूषण उज्जैन एवं श्रीमती शशिकला जयपुर। माननीय श्री रावत सारस्वत राजस्थानी भाषा के प्रमुख विद्वान हैं तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

'राजस्थानी भाषा प्रचार सभा' के निदेशक हैं। आपने प्रस्तुत भाग पर जो महत्वपूर्ण संपादकीय लिखा है वह आपकी गहन विद्वता का परिचायक है। डा. हरीन्द्र भूषण जी जैन साहित्य के शीर्षस्थ विद्वान् हैं तथा कितने ही पुस्तकों के लेखक हैं। विक्रम विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के रीडर पद से अभी अभी रिटायर हुए हैं। अकादमी लिये के आप विशेष प्रेरणा स्रोत हैं। श्रीमती शशिकला बाकलीवाल जयपुर उदीयमान विदुषी है। हम तीनों के प्रति अत्यधिक आभारी हैं।

विशेष आभार

वैसे तो हम पूरे समाज के आभारी हैं जिसके मंगल अशीर्वाद से अकादमी अपनी साहित्यिक योजना में सतत आगे बढ़ रही है। विशेषतः पूज्य क्षुल्लकरत्न श्री सिद्ध सागर जी महाराज लाडनूं वाले, पं. अनूपचन्दजी न्यायतीर्थ जयपुर, ब्र. श्री कपिल कोटडिया हिम्मतनगर, के भी आभारी हैं जिनका अकादमी को पूर्ण अशीर्वाद एवं सहयोग मिलता रहता है।

८६७ अमृत कलश
बरकत कालोनी, किसान मार्ग
टोंक फाटक, जयपुर–३०२०१५

डा. कस्तूर चन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान संपादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संरक्षक के दो शब्द

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के षष्टम पुष्प 'कविवर बुलाखीचन्द बुलाकीदास एवं हेमराज' को पाठकों को हाथों में देते हुये मुझे अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। सम्पूर्ण हिन्दी जैन साहित्य को २० भागों में प्रकाशित करने के उद्देश्य से संस्थापित यह अकादमी निरन्तर अपने उद्देश्य में आगे बढ़ रही है। प्रस्तुत भाग में १७-१८ वीं शताब्दि के तीन प्रमुख कवि बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। तीनों ही कवि आगरा के थे तथा अपने समय के समर्थ कवि थे। महाकवि बनारसीदास ने आगरा में जो साहित्यिक चेतना जागृत की थी उसीके फलस्वरूप आगरा में एक के पीछे दूसरे कवि होते गये और देश एवं समाज को नयी-नयी एवं मौलिक कृतियाँ भेंट करते रहे। इस भाग के प्रकाशन के साथ ही डा० कासलीवालजी ऐसे २६ जैन प्रमुख हिन्दी कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाल चुके हैं, जिनकी सभी कृतियां हिन्दी साहित्य की बेजोड़ निधियां हैं। इन कवियों में ब्रह्म रायमल्ल, बूचराज, छीहल, गारवदास, ठक्कुरसी, ब्रह्म जिनदास, भ० रत्नकीर्ति, कुमुदचन्द्र, आचार्य सोमकीर्ति, सांगु, ब्रह्मयशोधर, बुलाखीचन्द, बुलाकीदास, हेमराज पांडे एवं हेमराज गोदीका के नाम विशेषतः उल्लेखनीय है। इन सभी कवियों ने हिन्दी साहित्य को अपनी कृतियों से गौरवान्वित किया है।

यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि प्रस्तुत भाग में कविरत्न बुलाखीचन्द ऐसे कवि है जिनका परिचय साहित्यिक जगत को प्रथम बार प्राप्त हो रहा है। डा० कासलीवालजी की साहित्यिक खोज एवं शोध सचमुच प्रशंसनीय है, जो अकादमी के प्रत्येक पुष्प में किसी न किसी अचर्चित एवं अज्ञात कवि को साहित्यिक जगत के समक्ष प्रस्तुत करते रहते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि डा. साहब की लेखनी से अब तक उपेक्षित सैंकड़ों हिन्दी जैन कवि एवं मनीषी तथा उनका विशाल साहित्य प्रकाश में आ सकेगा।

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी की स्थापना एवं उसका संचालन डा० कासलीवाल की साहित्यिक निष्ठा का सुफल है। दो वर्ष पूर्व जब मुझे मेरे घनिष्ठ मित्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एवं सामाजिक कार्यों में सहयोगी तथा प्रसिद्ध संगीतज्ञ श्री ताराचन्दजी प्रेमी ने अकादमी के सम्बन्ध में चर्चा की तथा उसका संरक्षक सदस्य बनने के लिए कहा, तो मैंने तत्काल अपनी स्वीकृति दे दी। मैं इसके लिए श्री प्रेमी जी का आभारी हूं। ऐसी साहित्यिक संस्था को सहयोग देने में मुझे ही नहीं, सभी साहित्यिक प्रेमियों को प्रसन्नता होगी।

अकादमी को निरन्तर लोकप्रियता प्राप्त हो रही है, जिसकी मुझे अतीव प्रसन्नता है। इसके पंचम भाग का विमोचन बम्बई महानगरी में परम पूज्य आचार्यश्री विमलसागरजी महाराज की पुण्य जन्म जयन्ती महोत्सव के अवसर उन्हीं के सानिध्य में मूड़बिद्री के भट्टारक स्वस्ति श्री चारूकीर्तिजी महाराज ने किया था। भट्टारकजी महाराज अकादमी के परम संरक्षक भी हैं। इस अवसर पर स्वयं आचार्यश्री जी ने डा० कासलीवाल जी को साहित्यिक क्षेत्र में सतत् आगे बढते रहने का शुभाशीर्वाद दिया था। पंचम भाग के प्रकाशन के पश्चात् डा० (श्रीमती) सरयू दोशी बम्बई एवं श्री पन्नालाल सेठी डीमापुर ने अकादमी का संरक्षक सदस्य बनने की महती कृपा की है। इसके लिए हम उनके आभारी हैं। डा० (श्रीमती दोशी जैन चित्रकला की शीर्षस्थ विदुषी है, तथा अपना समस्त जीवन जैन कला के महत्व को प्रस्तुत करने में समर्पित कर रखा है। उनका Homage to shrawan belgola अपने ढंग की अनूठी कृति है। इसी तरह माननीय श्री पन्नालाल जी सेठी एक प्रमुख व्यवसायी है तथा अपनी उदारता, दानशीलता एवं साधु भक्ति के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। हम दोनों का हार्दिक स्वागत करते हैं। उक्त दोनों के अतिरिक्त सागर के प्रसिद्ध उद्योगपति एवं लोकप्रिय समाज सेवी श्री डालचन्द जी जैन, जो वर्तमान में अखिल भारतीय दि० जैन परिषद के अध्यक्ष है, अकादमी को उपाध्यक्ष के रूप में सहयोग देकर मध्यप्रदेश में अकादमी के कार्य क्षेत्र में वृद्धि की है। इसी तरह जयपुर में रत्नों के व्यवसायी श्री रतनचन्दजी पंसारी ने भी उपाध्यक्ष सदस्य बनने की स्वीकृति प्रदान की है। श्री पंसारी जी जयपुर जैन समाज के लोकप्रिय समाज सेवी है तथा नगर की कितनी ही संस्थाओं को अपना सहयोग प्रदान करते रहते हैं। हम दोनो महानुभावों का उनके सहयोग के लिये हार्दिक स्वागत करते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुझे यह भी लिखते हुये प्रसन्नता है कि अकादमी को साहित्यिक संस्था के रूप में सर्वथा मान्यता मिल रही है। अभी गत वर्ष दिसम्बर ८२ में श्री आहारजी सिद्ध क्षेत्र पर आयोजित अ० भा० दि० जैन विद्वत् परिषद ने एक प्रस्ताव द्वारा श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी के कार्यों की भूरि २ प्रशंसा की है तथा समाज से अकादमी के लिए पूर्ण सहयोग देने की अपील की है। ऐसे उपयोगी प्रस्ताव पारित करने के लिए हम विद्वत परिषद के अध्यक्ष एवं मंत्री दोनों के पूर्ण आभारी हैं।

अन्त में मैं समाज के सभी महानुभावों से प्रार्थना करता हूं कि वे अकादमी के अधिक से अधिक संख्या में सदस्य बनकर जैन साहित्य के प्रकाशन में अपना पूर्ण योगदान देने का कष्ट करें।

७-ए, राजपुर रोड
देहली-५४

रमेशचन्द जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्पादकीय

भारतीय भाषाओं और उनके साहित्य में एतद्देशीय जैन वाङ्मय का बड़ा प्रशंसनीय सहयोग रहा है। राजस्थानी और हिन्दी के विगत प्रायः एक हजार वर्षों के इतिहास में इस सहयोग के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा चुके हैं। इससे पूर्व की भी, संस्कृत, अर्द्धमागधी, प्राकृत अपभ्रंश आदि तद्दकालीन भाषाओं में रचित, बहुसंख्यक जैन रचनाओं के विवरण प्रकाशित हुए हैं। जैन धर्माचार्यों ने अपने उपदेशों को जनसाधारण के लिए बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से लोकभाषा को माध्यम बनाया। यद्यपि वे पाण्डित्य पूर्ण विशिष्ट रचनायें मान्य साहित्यिक भाषाओं में करते रहे, पर लोककल्याण की भावना से प्रेरित उनका विपुल साहित्य देशभाषाओं में ही रचा गया। यह अतिरिक्त हर्ष का विषय है कि जैन समाज ने अपने धर्माचार्यों की इस धरोहर को यत्नपूर्वक सुरक्षित रखा है, जिसके फलस्वरूप सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी वे कृतियां अनुसंधित्सुओं को प्राप्य हो सकी हैं। श्रद्धालु जैन समाज के श्रावकों ने आचार्यों की इस थाती से लाभान्वित होकर स्वयं भी उनके अनुकरण पर बहुसंख्यक रचनायें की हैं। ऐसी अनेक रचनाओं ने जैन वाङ्मय में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुयायियों में इस प्रवृत्ति का विशेष बाहुल्य रहा है। ब्रजभाषा, बुन्देली और पश्चिमी हिन्दी से सटे राजस्थान के पूर्वी और पूर्वी-दक्षिणी अंचलों में ऐसी रचनायें अधिक रची गई।

इस धर्म प्रधान साहित्यिक जागरण को उस अखण्ड ज्ञान चेतना से अङ्गी-भूत रूप में ही देखा जा सकता है जो शताब्दियों से उत्तरप्रदेश, राजस्थान, पंजाब और मध्यप्रदेश के विशाल भू भागों को जैन संस्कृति की देन के रूप में आलोकित करती रही है। प्रस्तुत शोधग्रंथ में जैन समाज के ऐसे ही तीन सुकवियों की रचनायें संकलित की गई हैं।

इस संकलन की विशिष्टता न केवल इन रचनाओं का अज्ञात होना है अपितु इनकी भाषागत एवं साहित्यिक वैशिष्ट्य की पांडित्यपूर्ण विशद विवेचना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी है जो जैन वाङमय के लब्धप्रतिष्ठ अधिकारी विद्वान डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल द्वारा की गई है। डा. कासलीवाल को ऐसे बीसों कवियों को प्रकाश में लाते हुए, इसी प्रकार के कई विद्वतापूर्ण संकलन संपादित करने का श्रेय है। ये सभी ग्रंथ विद्वत्समाज में चर्चित और समादृत हुए हैं। श्री महावीर ग्रंथ अकादमी के छठे 'पुष्प' के रूप में प्रकाशित इस संकलन की श्रृङ्खला को आगे बढ़ाने में सतत प्रयत्नशील, डा. कासलीवाल की यह नि:स्वार्थ सेवा सभी साहित्य प्रेमियों के द्वारा अभिनंदनीय और अनुकरणीय है।

विषयवस्तु की दृष्टि से जैन रचनाओं को समग्र भाषा-साहित्य से पृथक् करके देखने की जो प्रवृत्ति कहीं-कहीं दिखाई देती है, उसे भाषा और साहित्य का सामान्य हित चाहने वाले लोग संकुचित और एकांगी ही कहेंगे। भाषा के ऐतिहासिक विकास क्रम का अध्ययन करने वाले विद्वानों ने इन रचनाओं की उपादेयता को स्वीकार किया है। जिस काल विशेष की अन्यान्य अजैन रचनायें दुष्प्राप्य हैं सके लिए तो ये ही रचनायेंहमारा एक मात्र आधार बनी हुई है। इन्हीं रचनाओं में प्रसंगवश समकालीन इतर साहित्यकारों के प्रकीर्णक छंद भी उद्धृत मिलते हैं जिनसे साहित्य का इतिहास नवीन तथ्यों से समृद्ध बनता है। प्रबन्ध चिन्तामणि, पुरातन प्रबन्ध संग्रह, प्रबन्ध कोश, पुरातन पद्य प्रबन्ध आदि ग्रंथों में संकलित उत्तर अपभ्रंश कालीन प्रबंधों में दिए गए ऐसे उदाहरण देशभाषाओं के उद्‌भव को समझने में बड़े सहायक सिद्ध हुए हैं।

भाषा के संबंध में दूसरी विशेषता जैन कवियों द्वारा प्रयुक्त वह मनोरम शब्दावली है जो लोक में सतत व्यवहार के कारण बड़ी आर्द्र, स्निग्ध और संस्कार संपन्न हो गई है। यह शब्दावली, परिनिष्ठित साहित्यिक शब्द प्रयोगों की रूढिगत कृत्रिमता और शुष्क वाग्जाल से आकुञ्चित न होकर, लोकमानस में प्रवहमान मानवीय भावनाओं की सरसता और अपनत्व से ओत प्रोत है। इसमें मस्तिष्क को बोझिल और सारग्राहिणी बुद्धि को कुण्ठित करने के उपक्रम के स्थान पर सीधे हृदय से दो-दो बातें करने का अबाधित और अनायास संपक है। इस दृष्टिकोण से लोकभाषाओं की स्थानीय रंगत में रंगे जैन काव्यों का अध्ययन अभीष्ट है।

जैन प्रबंध रचनाओं में सांस्कृतिक सामग्री की जो विशदता, विपुलता और सर्वांगीणता मिलती है वह संस्कृतेतर भाषाओं के अन्यान्य साहित्य में तुलनात्मक रूप से अति विरल ही कही जाएगी। हमारे विस्मृत एवं लुप्तप्राय: ज्ञानकोश के पुनर्निर्माण के लिए जैन साहित्य का महत्व सर्वोपरि माना जाना चाहिए। साहित्यिक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्णनों की जो परम्परा जैन ग्रंथों में उपलब्ध है उनसे अनेक उलझे सूत्र सुलझाने में बड़ी सहायता मिली है। इस वर्णक सम्मुचय को हम तत्कालीन काव्य पाठशालाओं के पाठ्यक्रम का एक अंग ही मान सकते हैं। वर्णनों की इस परिपाटी ने प्राचीन भारतीय संस्कृति को सुरक्षित करने में बड़ा योगदान दिया है। प्रस्तुत संकलन में आई ऐसी सांस्कृतिक सामग्री पर डा. कासलीवाल ने अपनी विद्वत्तापूर्ण भूमिका में अच्छा प्रकाश डाला है।

जब से विद्वानों का ध्यान जैन रचनाओं की इस सांस्कृतिक समृद्धि की ओर गया है, अनेक महत्वपूर्ण ग्रंथों के साँस्कृतिक अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं। हरिवंश पुराण, कुवलयमाला, उपमितिभव प्रपंचकथा, प्रद्युम्नचरित, जिनदत्तचरित निशीथ चूर्णि प्रभृति ग्रंथों के ऐसे अध्ययनों ने सांस्कृतिक विषयों में रुचि रखने वाले अध्येताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित किया है। संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश आदि के ग्रंथों में प्राप्त प्रभूत सांस्कृतिक संदर्भो के अनुकरण पर प्राप्य भाषा-काव्यों में भी ऐसी सामग्री का अभाव नहीं है। कविवर वनारसीदास की आत्मकथा 'अर्द्ध कथानक' का ऐसा ही एक अध्ययन हाल ही में किया भी गया है। इस शैली पर, विषयों की और गहराई में उतरते हुए, सांस्कृतिक शब्दों का खुलासा किया जाना अपेक्षित है। शब्दों के व्युत्पत्ति जन्य एवं पारंपरिक अर्थों की समीचीनता को उद्घाटित करने के कारण ही 'श्री अभिधान राजेन्द्र कोष' जैसे प्रामाणिक ग्रंथ विश्व भर में समादृत हुए हैं।

संस्कृति के पक्ष से ही अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ राज और समाज का प्रश्न भी है। ऐतिहासिक उल्लेखों की जो प्रामाणिकता जैन विद्वानों की रचनाओं से सिद्ध हुई है उसकी तुलना में हमारा दूसरा पारम्परिक साहित्य नहीं ठहरता। इसका मुख्य कारण तो यही हो सकता है, कि जैनधर्माचार्य निरन्तर विहार करते रहने के कारण हरेक स्थान से संबंधित घटनाओं के विश्वस्त तथ्यों से परिचित हो सकते थे। इसी निजी संपर्क से लोक व्यवहार एवं सामाजिक रीति-नीति का भी निकटतम और सहज अध्ययन संभव था। निरन्तर जन सम्पर्क में आते रहने से लोक मानस के अन्तराल का वैज्ञानिक अध्ययन एवं मनोवृत्तियों का सम्पर्क विश्लेषण भी उनके लिए सहज बन गया था। किसी भी साहित्यकार के लिए देश-देशांतर का इस प्रकार का निरीक्षण अत्यन्त श्रेयस्कर है। पर अनेक कारणों से ऐसा करना विरले ही लोगों के वश की बात है। जैनाचार्यों ने चूंकि इसे जीवन का एक अति आवश्यक अंग बना लिया था, अतः उनके लिए यह साहित्यिक सामर्थ्य का एक कारण भी बन गया है। इस प्रकार के चतुर्दिक में रहने के कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ही जैन रचनाओं में राज, समाज और संस्कृति की अमूल्य सामग्री समाहित हो सकी है।

प्रस्तुत संकलन में आए हुए कवियों की रचनाओं का सामाजिक और साँस्कृतिक अध्ययन मध्यकालीन समाज और संस्कृति के अनेक अज्ञात अथवा अल्पज्ञात पक्षों को उजागर कर सकता है। यह हर्ष का विषय है कि डा. कासलीवाल ने इस दिशा में संकेत करते हुए अपने संपादकीय आलेखों में यह शुभारम्भ कर दिया है। आधुनिक विश्वविद्यालयों में शोवरत छात्रों द्वारा ऐसे लघुशोध प्रवंध तैयार करवाये जाकर इस प्रयत्न को आगे वढाया जा सकता है। कालान्तर में ऐसे ही प्रयासों से 'विशाल भारतीय संस्कृतिकोश' का निर्माण संभव हो सकेगा -

प्रस्तुत संकलन के संपादन व प्रकाशन के लिए श्री महावीर ग्रंथ अकादमी से संवद्ध सभी सुधीजन, विशेषतः डा. कासलीवाल, सभी साहित्य प्रेमियों के साधुवाद के पात्र हैं।

डी २८२, मीराँ मार्ग वनीपार्क,
जयपुर। — रावत सारस्वत

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लेखक की ओर से

"कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज" पुस्तक को पाठकों के हाथों में देते हुये मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है। विशाल हिन्दी जैन साहित्य के प्रमुख कवियों में उक्त तीनों ही कवियों का प्रमुख स्थान है। ये १७ वीं १८ वीं शताब्दि के चमकते हुये प्रतिभा सम्पन्न कवि थे जिन्होंने अपनी महत्त्वपूर्ण कृतियों से तत्कालीन समाज एवं स्वाध्याय प्रेमियों को गौरवान्वित किया था। यह भी प्रसन्नता की बात है कि तीनों ही कवियों का आगरा से विशेष सम्बन्ध था जहाँ महाकवि बनारसीदास जैसे कवि उनके पूर्व हो चुके थे।

उक्त तीन कवियों में बुलाखीचन्द का नाम हिन्दी जगत के लिये एक दम अनजाना है। आज तक किसी भी विद्वान् ने उनके नाम का उल्लेख नहीं किया इसलिये ऐसे अचर्चित कवि को हिन्दी जगत् के सामने प्रस्तुत करने में और भी प्रसन्नता होती है। बुलाखीचन्द की एक मात्र कृति 'वचन कोश' की अभी तक उपलब्धि हो सकी है किन्तु यही एक मात्र कृति उनके व्यक्तित्व को जानने/परखने के लिये पर्याप्त है। कवि ने अपनी पद्यात्मक कृतियों में बीच २ में हिन्दी गद्य का प्रयोग करके उस समय के चर्चित गद्य का भी हमें दर्शन करा दिया है। हिन्दी गद्य साहित्य के विकास को जानने के लिये भी 'वचन कोश' एक महत्त्वपूर्ण कृति है। लगता है कवि साहित्यिक होने के साथ इतिहास प्रेमी भी थे इसलिये उन्होंने अपने इस कोश में अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति, काष्ठा संघ का इतिहास, जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास, भगवान महावीर के समवसरण का जैसलमेर में आगमन जम्बू स्वामी का कैवल्य एवं निर्वाण जैसी ऐतिहासिक बातों का अच्छा वर्णन किया है। प्रस्तुत भाग में हम वचन कोश के पूरे पाठ नहीं दे पाये हैं कुछ प्रमुख पाठ देकर ही हमें सन्तोष करना पड़ा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस भाग के दूसरे कवि बुलाकीदास है जिनका पाण्डवपुराण अत्यधिक लोकप्रिय ग्रंथ माना जाता है। बुलाकीदास ने पाण्डवपुराण एवं प्रश्नोत्तरश्रावकाचार- दोनों ही ग्रन्थों का निर्माण अपनी माता जैनुलदे की प्रेरणा से किया था। सारे साहित्यिक जगत् में पंडिता जैनुलदे जैसी आदर्श एवं स्वाध्यायशीला महिला का मिलना कठिन है। बुलाकीदास का पाण्ड़वपुराण काव्य की दृष्टि से भी एक सुन्दर कृति है जिसमें महाभारत के पात्रों का बहुत ही उत्तम रीति से वर्णन हुआ है। एक जैन कवि के द्वारा युद्ध का इतना सांगोपांग वर्णन अन्य काव्यों में मिलना कठिन हैं।

इस भाग के तीसरे कवि है पाण्डे हेमराज। लेकिन हेमराज एक कवि ही नहीं है। एक समय में हेमराज नामके चार कवि मिलते हैं जिनमें दो तो बहुत उच्चश्रेणी के कवि हैं। हेमराज पाण्डे का नाम हम सब जानते अवश्य हैं लेकिन उनके काव्यों की महत्ता एवं कला से अनभिज्ञ रहे हैं। हेमराज आचार्य कुन्द-कुन्द के बडे भारी भक्त थे इसलिये उन्होंने प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों पर हिन्दी गद्य में टीका लिखी और फिर समयसार एवं प्रवचनसार को छन्दों में लिखकर हिंन्दी जगत् को अध्यात्म साहित्य को स्वाध्याय के लिये सुलभ बनाया। पाण्डे हेमराज के ग्रन्थों का गद्य भाग भाषा के अध्ययन की दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है किस प्रकार जैन विद्वानों ने हिन्दी भाषा की अपूर्व सेवा की थी इस सबसे इन ग्रन्थों के अध्ययन के पश्चात् अच्छी तरह परिचित हो सकते हैं। वास्तव में हेमराज अपने समय के जबरदस्त विद्वान् थे तथा समाज द्वारा समाहृत कवि माने जाते थे।

पाण्डे हेमराज के अतिरिक्त एक दूसरे कवि थे हेमराज गोदीका। वे मूलतः सांगानेर थे लेकिन कामां जाकर रहने लगे थे। ये भी आध्यात्मिक कवि थे कुन्द-कुन्द के प्रवचनसार पर उनकी अगाध श्रद्धा थी। इसलिये उन्होंने भी इसे हिन्दी पद्यों में गूंथ दिया। उनकी दूसरी रचना उपदेश दोहा शतक है। जिसका पूरा पाठ इस भाग में दिया गया है। हेमराज गोदीका अपने समय के सम्मानित कवि थे। इसी तरह उसी शताब्दि में दो और हेमराज नाम के कवि हुए जिन्होंने भी अपनी लघु रचनाओं से हिन्दी जगत को उपकृत किया।

प्रस्तुत भाग में बुलाखीचन्द के वचनकोश बुलाकीदास के पाण्डवपुराण, हेमराज पाण्डे का प्रवचनसार (पद्य), हेमराज गोदीका के उपदेश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहाशतक (पूरी कृति) एवं प्रवचनसार (हिन्दी पद्य) के कुछ प्रमुख पाठों को दिया गया है। आशा है पाठक गण उनके अध्ययन के पश्चात् कवियों की काव्य प्रतिभा का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

सम्पादक मंडल

प्रस्तुत भाग के सम्पादन में माननीय रावत सारस्वत जयपुर, डा० हरीन्द्र भूषण जैन उज्जैन एवं श्रीमती शशिकला बाकलीवाल जयपुर का जो सहयोग मिला है उसके लिये मैं उनका पूर्ण आभारी हूँ। श्री रावत सास्वत ने जो सम्पादकीय लिखा है वह अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है तथा हिन्दी जैन साहित्य के महत्त्व एवं उसकी उपयोगिता पर विस्तृत प्रकाश डालने वाला है।

आभार

मैं श्री दि० जैन बडा तेरहपंथी मन्दिर जयपुर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री कपूरचन्दजी सा० पापडीवाल, पाण्डे लूणकरणजी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार के व्यवस्थापक श्री मिलापचन्दजी बागायतवाले एवं दि० जैन मन्दिरजी ठोलियान के व्यवस्थापक श्री नरेन्द्र मोहनजी डंडिया का आभारी हूँ जिन्होंने अपने २ शास्त्र भण्डारों में से वांछित पाण्डुलिपियां संपादन के लिये देने की कृपा की। आशा है भविष्य में भी आप सबका इसी प्रकार का सहयोग प्राप्त होता रहेगा।

मैं आदरणीय श्री रमेशचन्दजी सा० जैन देहली का भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक के लिये दो शब्द लिखने की कृपा की है। जैन सा० का अकादमी को विशेष सहयोग मिलता रहता है।

अन्त में मैं मनोज प्रिन्टर्स के व्यवस्थापक श्री रमेशचन्दजी जैन का भी आभारी हूँ जिन्होंने पुस्तक के मुद्रण में पूरी तत्परता दिखाई है तथा उसे सुन्दर बनाने में योग दिया है।

जयपुर

१ मार्च १९८३ डा० कस्तूर चन्द कासलीवाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विषय-सूची

	पृष्ठ संख्या
१ श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी-प्रगति रिपोर्ट	iii–vi
२ संरक्षक के दो शब्द	vii–ix
३ संपादकीय	x–xiii
४ लेखक की ओर से	xiv–xvi
५ पूर्व पीठिका	१–२
६ कविवर बुलाखीचन्द	३–४४
(i) वचन कोश–मूल पाठ	४५–११५
७ कविवर बुलाकीदास	११६–१५०
(ii) पाण्डवपुराण–मूलपाठ	१५१–२००
८ मुनि हेमराज	२०१–२०४
९ पाण्डें हेमराज	२०४–२२४
१० हेमराज गोदीका	२२४–२२६
११ हेमराज (चतुर्थ)	२२६–२३२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कृतिया–(i) उपदेश दोहा शतक २३३–२४०

(ii) प्रवचनसार भाषा पद्य २४१–२५४

(iii) प्रवचनसार भाषा(कवित्त बंध) २५५–२६४

१२ नामानुक्रमणिका २६५–से

१३ कवर पृष्ठ पर चित्र —कविवर बुलाकीदास पाण्डवपुराण की रचना करते समय अपनी माता जैनुलदे को सुनाते हुए

□ □

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्व पीठिका

विक्रम की १७वीं शताब्दि समाप्त होने के साथ ही देश में हिन्दी कवियों की बाढ़ सी आगयी। एक ही समय में बीसों कवि होने लगे। प्राकृत, संस्कृत, एवं अपभ्रंश में रचनायें करना बन्द सा हो गया। जन-साधारण भी हिन्दी कृतियों को पढ़ने में सर्वाधिक रूचि दिखलाने लगा। भाषा कवियों का आदर बढ़ गया। कबीर, मीरा, सूरदास एवं तुलसी का नाम उत्तर भारत में श्रद्धा के साथ लिया जाने लगा एवं उनकी रचनाओं ने धार्मिक रचनाओं का स्थान ले लिया। जैन कवि तो आरम्भ से ही अपभ्रंश के साथ-साथ राजस्थानी, व्रज एवं हिन्दी में रचनायें निबद्ध करने में आगे थे। १७वीं शताब्दि के पूर्व कविवर सधारू, राजसिंह, ब्रह्म जिनदास, भ. ज्ञानभूषण, आचार्य सोमकीर्त्ति, बूचराज, ब्र. यशोधर, छीहल, ठक्कुरसी, ब्रह्म रायमल्ल, भ रत्नकीर्त्ति, कुमुदचन्द, बनारसीदास, रूपचन्द जैसे प्रभावी जैन कवि हो चुके थे जिन्होंने राजस्थानी एवं हिन्दी में काव्य निर्माण का मार्ग प्रशस्त कर दिया था तथा जन-मानस में हिन्दी रचनाओं के प्रति गहरी श्रद्धा उत्पन्न कर दी थी। पाठकों की इस श्रद्धा से हिन्दी कवियों को अत्यधिक बल मिला और उन्होंने विविध संज्ञा परक रचनाओं के निबद्ध करने में अपने आपको समर्पित कर दिया।

१६वीं, १७वीं एवं १८वीं शताब्दि में एक ओर गुजरात एवं बागड प्रदेश हिन्दी एवं राजस्थानी कवियों का केन्द्र बना रहा तो दूसरी ओर आगरा नगर जैन कवियों के लिये तीर्थ बनने लगा। गुजरात एवं बागड प्रदेश में भट्टारकों एवं उनके शिष्य प्रशिष्यों का जोर था। वे चरित, रास, वेलि, कथा एवं भक्ति परक रचनाओं को निबद्ध करने में लगे हुए थे तो दूसरी ओर आगरा जैसे नगर में अध्यात्मवादी कवियों का जोर था और वे समयसार नाटक एवं आध्यात्मिक कृतियों के लिखने में झूम रहे थे। आत्म तत्व के प्रेमी ये कवि देश में एक नयी लहर फैलाने में लगे हुए थे। इसलिये कविवर बनारसीदास एवं उनकी मंडली के कवि रूपचन्द, कौरपाल जैसे कवियों ने दिन-रात एक करके पचासों आध्यात्मिक रचनायें लिखने में सफलता प्राप्त की जिनका देश के सभी भागों में जोर का स्वागत हुआ। बनारसी-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दास तो उत्तरी भारत में स्वाध्याय प्रेमियों के लिये आदर्श बन गये। उत्तर में मुलतान एवं दक्षिण में राजस्थान, मध्यप्रदेश, देहली आदि सभी स्वाध्याय केन्द्रों पर समयसार नाटक, बनारसी विलास जैसी कृतियों की स्वाध्याय एवं चर्चा होने लगी।

यहां यह उल्लेखनीय है कि अधिकांश कवियों के संरक्षक विभिन्न भट्टारक थे जो अपने समय के सर्वाधिक प्रतिष्ठित जैन सन्त के रूप में समादृत थे। राजस्थान में आमेर, सांगानेर, अजमेर, नागौर जैसे नगर इनके केन्द्र थे जहाँ पचासों पंडित साहित्य सेवा में लगे रहते थे। लेकिन आगरा केन्द्र से सम्बन्धित कवि भट्टारकों के अधिक सम्पर्क में नहीं थे। बनारसीदास ऐसे कवियों के आदर्श थे। इसलिये संवत् १७०१ से १७५० तक के काल को बनारसीदास का उत्तरवर्ती काल के नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। इस अवधि में आगरा, कामां, सांगानेर, आमेर, टोडारायसिंह जैसे नगर हिन्दी कवियों के प्रमुख केन्द्र थे। हमारे तीनों चर्चित कवि बुलाखीचन्द, बुलाकीदास एवं हेमराज इसी अवधि में होने वाले कवि थे जिनका प्रस्तुत भाग में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है। इन पचास वर्षों में मनोहरलाल, हीरानन्द, खडगसेन, अचलकीर्त्ति, रामचन्द्र, जगतराम, जोधराज, नेमिचन्द्र, भैया भगवतीदास, आनन्दघन जैसे पचासों कवि हुए जिन्होंने अपनी सैकड़ों रचनाओं से हिन्दी के भण्डार को समृद्ध बनाने में सफलता प्राप्त की। इन सभी कवियों का विशेष अध्ययन अकादमी के आगे के भागों में किया जावेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कविवर बुलाखीचन्द

बुलाखीचन्द हिन्दी विद्वानों के लिये एक दम नया नाम हैं। क्या जैन एवं क्या जैनेतर विद्वानों में से किसी ने भी कविवर बुलाखीचन्द के विषय में अभी तक नहीं लिखा है। इसलिये अकादमी के प्रस्तुत भाग में एक अज्ञात कवि का परिचय देते हुए हमें भी अत्यधिक प्रसन्नता है। इसके पूर्व भी अकादमी के दूसरे भाग में गारवदास, चतुर्थ भाग में आचार्य जयकीर्त्ति, राघव, कल्याण सागर तथा पंचम भाग में ब्रह्म गुणकीर्त्ति जैसे अज्ञात कवियों का परिचय दिया जा चुका है लेकिन बुलाखीचन्द उन सबसे विशिष्ट कवि थे तथा अपने समय के प्रतिनिधि कवि थे।

जीवन परिचय :

कविवर बुलाखीचन्द जैसवाल जाति के श्रावक थे। जैसवाल जाति की उपरोतिया एवं तिरोतिया इन दो शाखाओं में से बुलाखीचन्द तिरोतिया शाखा में उत्पन्न हुये थे। उनके पितामह का नाम पूरणमल एवं पितामह का नाम प्रताप था। वे राजाखेडा के चौधरी थे तथा उनकी आगरा तक धाक् थी।[1] प्रताप जैसवाल के पांच पुत्र थे जिनमें सबसे छोटे लालचन्द थे।

लालचन्द के पुत्र का नाम जिनचन्द था लेकिन सभी परिवार वाले उसे बुलाखीचन्द के नाम से पुकारते थे।[2] लेकिन वे कौनसे संवत में पैदा हुए, माता का नाम

---

१. कारज गाम गोत परनए इहिं विधि जैसवाल वरनए।
उपरोतिया गोत छत्तीस, तिरोंतिया गनि छह चालीस ।।७४।।
तिरोंतिया तिनि में एक जानि, पूरण प्रश्न प्रताप सुव जानि।
राजाखेरा कौ चउधरी, अग्गलपुर को आनु जु बरी ।।७५।।

२. ताके पांच पुत्र अभिराम, अनुज लालचन्द तसु नांम।
ता सुत हीये प्रीति जिनचन्द, सब कोऊ कहे बुलाखीचन्द ।। ७७ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्या था तथा उनका बचपन एवं युवावस्था किस प्रकार व्यतीत हुई इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती। लेकिन इतना अवश्य है कि आगरा से विशेष सम्बन्ध होने के कारण कवि को अच्छी शिक्षा मिली होगी। प्राकृत, संस्कृत एवं हिन्दी भाषा का उन्हें अच्छा ज्ञान था तथा काव्य रचना में उनकी रुचि थी। उनका कवि हृदय था।

संवत् १७३७ के पूर्व उनके हृदय में एक ऐसे ग्रंथ निर्माण करने का भाव आया जिसमें जिन कथा दी हुई हो। कवि के वृन्दावन एवं सागरमल ये दो मित्र थे। जब कवि को काव्य रचना की इच्छा हुई तो उसने अपने इन दोनों मित्रों से चर्चा की और उन दोनों की आज्ञा लेकर बचनकोश को रचना कर डाली।[1] दोनों मित्र जिनधर्मी एवं परम पवित्र थे। सभी उनका सम्मान करते थे। दोनों को जैन-धर्म का अच्छा ज्ञान था। ग्रंथ पूरा होने पर उसका नाम बचनकोश रखा गया। कवि ने लिखा है कि बचनकोश नाम ही अत्यधिक उज्वल माना गया।[2]

रचना काल एवं रचना स्थान

बचनकोश की रचना संवत् १७३७ वर्ष में वैशाख सुदी अष्टमी के शुभ दिन समाप्त हुई थी। उस दिन सोमवार था। कवि ने सोमवार का 'नीस' नाम दिया है। रचना स्थान वर्द्धनपुर था जो उस समय एक सुन्दर नगर था तथा वहाँ के निवासियों में अपनी बुद्धि पर गर्व था।

संवत सत्रहसे वरस ऊपरि सप्त अरु तीस।
वैशाख अंधेरी अष्टमी, बार बरनउ नीस ॥ ८३ ॥
वर्द्धनपुर नगरी सुभग, तहाँ बुद्धि को जोस।
रच्यो बुलाखी चन्द ने, भाषा वचन जुकोश ॥ ८४ ॥

---

१. तासु हिरदे उपजी वह आंनि, कीजे क्यों जिन कथा बखान।
वृन्दावन सागरमल मित्र जिनधरमी अरु परम पवित्र ॥ ७८ ॥

२. तिनकी आज्ञा ले सिर धरी, बचनकोश की रचना करी।
भाषा ग्रंथ भयो अति भलो, बचनकोश नाम जु उजलो ॥ ७९ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्द्धनपुर कौनसा नगर था तथा वर्तमान में उसका क्या नाम है यह खोज का विषय है किन्तु हमारे विचार में यह नगर मथुरा के पास होना चाहिये क्योंकि जैसवाल जैन समाज त्रिभुवनगिरी को छोड़ कर मथुरा आ चुका था। यहीं पर जम्बू स्वामी को कैवल्य एवं निर्वाण की प्राप्ति हुई थी इसलिये वृन्दावन का नाम ही वर्धनपुर होना चाहिये। वृन्दावन मथुरा के समीप ही है और कभी वहाँ जैसवाल जैन समाज की अच्छी संख्या रही होगी।[1]

बचनकोश का महात्म्य

कवि के अनुसार बचनकोश कोई साधारण रचना नहीं है किन्तु यह एक ऐसा ग्रंथ है जिसको पढ़ने से मिथ्याज्ञान दूर हो जाता है तथा जिनवाणी के अतिरिक्त अन्य किसी की बात अच्छी नहीं लगती। इसकी स्वाध्याय से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। जो स्त्री पुरुष इसका रुचि पूर्वक श्रवन करते हैं उनके घर में लक्ष्मी का निवास हो जाता है। जो इसका मनन करते हैं उनके किसी प्रकार का भी रोग नहीं आता। बचनकोश की तो इतनी अधिक महिमा है जिसका वर्णन करना भी कवि के लिए संभव नहीं हैं। क्योंकि उसके पठन पाठन एवं श्रवण मात्र से भी बुद्धि एवं बल दोनों की वृद्धि होती है तथा उसे मान सम्मान भी मिलता है।[2]

बचनकोश विलास सदृश रचना है जिसमें गद्य पद्य वाली रचनाओं का संग्रह रहता है। लेकिन बचनकोश की एक यह विशेषता है कि इसमें कवि ने कोश के

---

१. छांडि तिहुवन गिरी उठि धाइयौ, जैसवाल वाल आनियो।
प्रभु दरसन लइए नविहंड, दुरमति करि मारि सत खंड ॥ ७१ ॥
जम्बू स्वामि भयो निरवान, पाई पंचम गति भगवान।
जेसवाल रहे तिही ठाम, मन मान्यो जु करइ कांम॥ ७२ ॥

२. विनसे तासु पठत मिथ्यात, सांची लगे न परमत बात।
क्षयोपशम को कारण यही, बचनकोश प्रगट्यो यह मही॥ ८० ॥
श्रवन करें रूचि सं नरनारि, लक्ष्मी होइ शुभग निरधार।
लक्ष्मी होइ, न रोग आकुलौ, याके पढे होइ अति जु भलौ ॥८१ ॥
जिनवानी की करिति घनी, कहां लौ वरनि सके नहीं मनी।
सुन तासु न पावें पार, मांनि सकति जु बुधि बलसार॥ ८२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप में रचानायें लिखी है। उसने अपनी रचना में अपने दो मित्रों के नामों के अतिरिक्त अपने पूर्ववर्त्ती अथवा समकलीन कवियों का नामोल्लेख तक नही किया। इससे वह स्पष्ट लगता है कि कवि अन्य कवियों के सम्पर्क में नहीं थे तथा स्वयं ही अपनी ही धुन में काव्य रचना किया करते थे।

बचनकोश किसी सर्ग अथवा अध्याय में विभक्त नहीं है लेकिन जब किसी का वर्णन समाप्त होता है तो उस विषय की समाप्ति लिख दी गयी है। यही उसकी विभाजन रेखा है। वैसे कवि ने तो विषय का इस प्रकार प्रतिपादन किया है कि उससे बिना सर्ग अथवा अध्याय के भी काम चल जाता है।

वचनकोश का अध्ययन

वचनकोश का प्रारम्भ मंगलाचरण से किया गया है। जिसमें पंचपरमेष्ठी रूपी समयसार के चरणों की वन्दना की गयी है। पंच परमेष्ठियों में सिद्ध परमेष्ठी को देव शब्द से अभिहित किया गया है तथा अरहन्त, आचार्य, उपाध्याय एवं सर्व साधु को गुरु के रूप में स्मरण किया गया है। सिद्ध परमेष्ठी पंच ज्ञान के धारी हैं। वे वर्ण, गंध एवं शरीर से रहित हैं। अविनाशी है, विकार रहित हैं तथा लघु गुण रहित हैं। अर्हंत परमेष्टी अनन्त गुणों के धारक हैं, परम गुरु हैं तथा तीनों लोकों के इन्द्रों द्वारा पूजित है।[3] इसी तरह आचार्य, उपाध्याय एवं साधु परमेष्टी का गुणानवाद किया है

ऋषभदेव की स्तुति

पंचपरमेष्टी को नमन करने के पश्चात् कवि ने २४ तीर्थंकरों की स्तुति की है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव थे जिनके नाभिराय एवं मरुदेवी पिता एवं माता थे। उनका शरीर पांचसो योजना था। उनका देह स्वर्ण के समान था। वे इश्वाकु वंश में उत्पन्न हुये थे। चैत्र कृष्णा नवमी जिनकी जन्म तिथि है

---

१. समयसार के पय नमु, एक देव गुरु च्यारि।
 परमेष्टि तिनिस्यौं कहें, पंच ज्ञान गुण धार॥ १॥

२ वरण गंध काया नहीं, अविनाशी अविकार।
 गुरु लघु गुण विनु देव यह, नमों सिद्ध अवतार॥ २॥

३ श्री जिनराज अनन्त गुण, जगत परम गुरु एव।
 अध ऊरध मधि लोक के, इन्द्र करे शत सेव॥ ३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ऋषभदेव को तीर्थंकर के रूप में जन्म लेने के लिये ११ भवों तक साधना करनी पड़ी थी। चैत्र सुदी की नवमी को उन्होंने गृह त्याग किया था। साधु अवस्था में सर्व प्रथम उन्हें एक वर्ष तक निराहार रहना पड़ा और फिर हस्तिनापुर के राजा श्रेयांस के यहां सर्व प्रथम इक्षु रस का आहार लिया था। वट वृक्ष के नीचे उन्होंने केश लोंच किया तथा फागुण बुदी ग्यारस के दिन प्रातः उन्हें कैवल्य हो गया। उनका समवसरण १२ योजन विस्तार वाला था जिसकी रचना इन्द्रों ने की थी। ऋषभदेव के ८४ गणधर थे। अन्त में माघ सुदी १४ को पद्मासन से उन्हें निर्वाण की प्राप्ति हुई और सदा सदा के लिये जन्म मरण के बन्धन से मुक्ति प्राप्त की। कवि ने अन्त में यह भी कहा है कि जो व्यक्ति इस दिन का उपवास करता है उसे पुनः मनुष्य भव की प्राप्ति होकर अन्त में निर्वाण पद प्राप्त हो सकता है। ऋषभदेव की पूरी स्तुति १० पद्यों में समाप्त होती है।

२ अजित नाथ की स्तुति

अजितनाथ दूसरे तीर्थंकर थे जो ऋषभदेव के लाखों वर्ष पश्चात् हुए थे। अयोध्या उनका जन्म स्थान था। राजा जितरिपु उनके पिता एवं विजया उनकी माता थी। हाथी उनका लांछन था। वे भी इश्वाकु वंश में पैदा हुये थे। माघ सुदी नवमी उनका जन्म दिन था। चैत्र शुक्ला पंचमी को उन्होंने गृह त्याग कर साधु दीक्षा ली। तीन दिन निराहार रहने के पश्चात् ब्रह्मदत्त राजा के यहाँ गाय के दुग्ध का उनका आहार हुआ। जम्बु वृक्ष के नीचे उन्होंने तप करना प्रारम्भ किया। और अन्त में माघ शुक्ला दशमी के दिन संध्या समय उन्हें कैवल्य प्राप्त हुआ। उन्होंने सम्मेदशिखर पर खड़े रहकर तपः साधना की और अन्त में उसी पर्वत से पोष सुदी एकम के दिन उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।[1]

---

१. सागर लाख करोरि पचास, वीते अजितनाथ परगास।
जितरिपु राजा विजया मात, गज लांछन हाटक समगात ।।१।।
पुरी अजोध्या जनम कल्याण, तीनि भवांतर तें भयो जान।
धनक चारिसे साठे काय, लाख बहत्तर पूरव आयु ।।२।।
वंश इषाक नवे गिनि धार, तीन दिवस अंतर आहार।
धेनु खीर पीयौ मुनि देह, ब्रह्मदत्त नृप वनिता गेह ।।३।।

शेष पृष्ठ ८ पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३ संभवनाथ

तीसरे तीर्थंकर संभवनाथ थे जो अजितनाथ के निर्वाण के लाखों वर्ष पश्चात् हुए। सावित्री नगरी के राजा जितारथ के यहाँ फागुण सुदी पूर्णिमा के दिन उनका जन्म हुआ। उनका वंश भी इश्वाकु वंश था। उनका शरीर हेम वर्ण का था जो ४०० धनुष ऊंचा था। पर्याप्त समय तक राज्य सुख भोगने के पश्चात् चैत्र शुक्ला षष्टी को वैराग्य ले लिया। शाल वृक्ष के नीचे वे तपस्या करने लगे और अन्त में कार्त्तिक की पूर्णिमा को मध्याह्न में कैवल्य हो गया। कार्त्तिक बुदी चतुर्थी को सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया। निर्वाण प्राप्ति के समय वे खड्गासन अवस्था में थे। संभवनाथ का चिह्न घोड़ा है जो कवि के शब्दों में "तुरंग पवन गति ध्वज आकार" है।

४ अभिनन्दन नाथ

अभिनन्दन नाथ चतुर्थ तीर्थंकर हैं जिनका जन्म अयोध्या में इश्वाकु वंश के राजा समरराय के यहाँ हुआ। उनकी देह स्वर्ण के समान थी। माघ शुक्ला द्वादशी

जंबु वृक्ष तलें तपु लियो, रत्नत्रय व्रत निर्मल कियो।
समोसरण श्री जिनवर तनों, जोजन साढे ग्यारह भणों ॥४॥
बरननि सकों अलप मोहि ज्ञान, सांझ समें भयो केवलज्ञान।
बहुविधि राज विभूति विलास, ताहि त्यागी पाई सुख राशि ॥५॥

सोरठा

ठाडे जोगाभ्यास कियो सिद्ध सम्मेद पर।
पहुचे अविचल वास सकल करम वन दहन के ॥६॥

दोहा

जेष्ठ वदि मावस गरभ, जनम माघ सुदि नौमि।
चैत्र सुदि पांचै सु तप, ध्यान अगनि कर्म होमि ॥७॥
माघ महीना शुकल पक्ष, दशमी तिथि को ज्ञान।
पूस उज्यारी प्रतिपदा, ता दिन प्रभु निर्वाण ॥८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के दिन उनका जन्म हुआ और उसी तिथि को घोर तपः साधना के पश्चात् कैवल्य हुआ। अन्त में पोष शुक्ला चतुर्दशी को सम्मेदाचल से मोक्ष प्राप्त किया। अभिनन्दन स्वामी का चिह्न बन्दर है।

५ सुमितनाथ

कवि ने अभिनन्दन नाथ की स्तुति के पश्चात् पांचवे तीर्थंकर सुमतिनाथ की स्तुति की है सुमति नाथ का प्रादुर्भाव जैन सन्तों को प्रतिबोध देने के लिये हुआ था। उनका जन्म कौशल देश के राजा मेघराय के यहाँ हुआ था। मंगला उनकी माता का नाम था। जिनका इश्वाकु वंश था। वे सुवर्ण वर्ग की देह वाले थे। वैशाख शुक्ला नवमी के दिन उनका जन्म हुआ था। चैत्र शुक्ला एकादशी को उन्होंने राजा सम्पदा परिवार स्त्री एवं पुत्र को छोड़ कर साधु दीक्षा ले ली। घोर तपः साधना एवं विहार के पश्चात् उन्हें कैवल्य हो गया। वे सर्वज्ञ बन गये। देवों ने समवसरण की रचना की जहाँ से सुमतिनाथ ने जगत् को सुख शान्ति का सन्देश दिया और अन्त में कायोत्यर्ग अवस्था में निर्वाण प्राप्त किया।

६ पद्मप्रभु

ये छट्टे तीर्थंकर थे जो सुमति के निर्वाण के पश्चात् हुए। इनके पिता कोशाम्बी के राजा थे जिनका नाम घुर था। रानी सुसीमा उनकी माता थी। कमल पद्मप्रभु का निशान है। फागुण कृष्णा चतुर्थी के दिन उनका जन्म हुआ। पदमप्रभु भी अपनी राज्य सम्पदा को छोड़ कर कार्तिक बुदी तेरस के दिन मुनि दीक्षा धारण करली। वे दिगम्बर बन गये और घोर तपस्या करने लगे। पद्मप्रभु ने सर्व प्रथम प्रियगु वृक्ष के नीचे तपस्या की थी। मंगलपुर के राजा सोमदत्त के यहाँ आपका सर्व प्रथम आहार हुआ। बहुत वर्षों तक तप करने के पश्चात् कार्तिक सुदी तेरस के दिन ही कैवल्य हो गया। उस समय गोधूलि का समय था। सम्मेदाचल से खड्गासन अवस्था में आपने निर्वाण प्राप्त किया।

७. सुपार्श्वनाथ

सुपार्श्वनाथ सातवें तीर्थंकर थे जिनका स्मरण मात्र ही दुःखों एवं अशान्ति का विनाशक है। वाराणसी नगरी के राजा के यहाँ जन्म हुआ। स्वस्तिक आपका लांछन है। आपकी देह नील वर्ण की थी। जन्म से ही वे तीन ज्ञान के धारी थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वस्तिक उनका निशान है। साधु बनने के पश्चात् उन्होंने काफी समय तक तपस्या की थी और अन्त में उन्हें कैवल्य हो गया। अपने समवसरण से उन्होंने शान्ति का सबको सन्देश सुनाया। फागुण बदी षष्टी के शुभ दिन सम्मेदाचल से उन्हें निर्वाण प्राप्त हुआ।

८. चन्द्रप्रभ

आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ हैं जिनकी स्तुति करते हुये कवि ने लिखा है कि चन्द्रप्रभ का जन्म पौष बदि ग्यारस के दिन चन्द्रपुरी के राजा महासेन एवं रानी लछमा के यहाँ हुआ। उनके पिता भी इश्वाकु वंशी राजा थे। चन्द्रप्रभ को तीर्थंकर अवस्था पूर्व के सात जन्मों की लगातार तपः साधना के पश्चात् प्राप्त हुई थी। तीर्थंकर चन्द्रप्रभ को राज्यवैभव, परिवार एवं सम्पदा अच्छी नहीं लगी इसलिये फागुण बुदी सप्तमी के दिन उन्होंने वैराग्य धारण कर लिया। नाग वृक्ष के नीचे बैठकर वे ध्यान करने लगे। सर्व प्रथम चन्द्रदत्त के यहाँ आहार हुआ। लम्बे समय तक तपः साधना के पश्चात् उन्हें पहिले कैवल्य हुआ और फिर निर्वाण प्राप्त किया।

९. पुष्पदन्त

चन्द्रप्रभ के पश्चात् पुष्पदन्त हुये। जिनका जन्म पौष सुदी एकम को हुआ। उनका जन्म स्थान काकन्दी नगर था। सुग्रीव पिता एवं रामा माता का नाम था। उनका लांछन मगर है। उनके देह की आकृति चन्द्रमा के समान है। भादवा सुदी अष्टमी को पुष्पदन्त ने घर बार छोड़ कर वैराग्य धारण कर लिया तथा सर्व प्रथम गोरस का आहार लिया। तपः साधना के पश्चात् उन्हें अगहन सुदी प्रतिपदा के दिन संध्या समय कैवल्य हुआ। उनके ८० गणधर थे जो उनके सन्देश की व्याख्या करते थे। उनके समोसरण की लम्बाई आठ योजन प्रमाण थी। अन्त में सम्मेदाचल से कार्त्तिक सुदी द्वितीया के दिम निर्वाण प्राप्त किया।

१०. शीतलनाथ

दसवे तीर्थंकर शीतलनाथ स्वामी थे जिनका जन्म भागलपुर के राजा दृढरथ के यहाँ हुआ था। शीतलनाथ का शरीर नव्वें धनुष का था। पर्याप्त समय तक उनका मन सांसारिक कार्यों में नहीं लगा और आसोज सुदी अष्टमी को दिगम्बर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीक्षा धारण कर ली। कैवल्य प्राप्ति के पश्चात् इन्हें पौष बुदी चतुर्दशी को सम्मेदाचल से निर्वाण की प्राप्ति हुई और सदा के लिये जन्म मरण के चक्कर से छूट गये। राज्य शासन करते हुए इन्हें वैराग्य उत्पन्न हुआ था। शीतलनाथ का वर्णन ९ पद्यों में समाप्त होता है।

११. श्रेयान्स नाथ

एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् भारत देश के आर्य खण्ड में सिंघपुरी के राजा विभव के यहाँ श्रेयान्सनाथ का जन्म हुआ। उस दिन फागुण बुदी एकादशी थी। इनकी देह का रंग स्वर्ण के समान था। पहिले इन्होंने राज्य सुख भोगा और फिर श्रावण सुदी पूर्णिमा के दिन घर बार त्याग करके दिगम्बरी दीक्षा धारण कर ली। सर्व प्रथम ये तेंदू वृक्ष की सघन छाया में बैठकर ध्यानासन्न हुये और अन्त में फागुण सुदी एकादशी की प्रभात वेला मंगल वेला में सर्वज्ञता प्राप्त की। सम्मेदाचल पर ये ध्यानास्थ हुये और माघ बुदी अमावस के दिन मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त किया।

१२ वासुपूज्य स्वामी

वासुपूज्य स्वामी १२ वें तीर्थंकर थे। उनका जन्म चंपापुरी नगरी में हुआ था। फागुण बदि चतुर्दशी उनकी जन्म तिथि मानी जाती है। उनकी माता का नाम जयादेवी था। पर्याप्त समय तक गृहस्थाश्रम में रहने के पश्चात् भादवा सुदी चौदश को उन्होंने गृह त्याग दिया। उसी समय केश लोंच किया मुनि दीक्षा धारण कर ली। सिद्धार्थ पुरी के राजा सुन्दर के यहाँ गाय के दूध का आहार किया। कोशाम्बी नगर में वासुपूज्य स्वामी को कैवल्य प्राप्त हुआ। कैवल्य के पश्चात् उनका देश के विविध भागों में विहार हुआ और अन्त में माघ सुदी पंचमी को निर्वाण प्राप्त किया। वासुपूज्य तीर्थंकर का भैंसा चिह्न माना गया है।

१३ विमलनाथ

कपिलापुरी में जन्म लेने वाले विमलनाथ १३ वें तीर्थंकर हैं। उनके पिता राजा कृतवर्मा एवं रानी श्यामा माता थी। वे इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रिय थे। विमल नाथ का शरीर स्वर्ण के समान था। विमल नाथ भी राज्य सुख से घृणा करने लगे और तपस्या के लिये घर बार छोड़ दिया और जंबु वृक्ष के नीचे तपः साधना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करने लगे। पाटन के वीर राजा के यहाँ उनका प्रथम आहार हुआ। जब उन्हें कैवल्य हुआ तो उस समय संध्या काल था। देवों द्वारा उनका समवसरण लगाया गया। अन्त में उन्होंने सम्मेदशिखर से महानिर्वाण प्राप्त किया। उस समय वे खड्गासन अवस्था में तपः लीन थे। उस दिन चैत्र बुदी अमावस्या थी। विमल नाथ का लांछन सुअर है।

१४ अनन्तनाथ

अनन्तनाथ १४ वें तीर्थंकर थे जो विमल नाथ के पश्चात् माघ शुक्ला तेरस के शुभ दिन पैदा हुए थे। वे इश्वाकु वंशीय क्षत्रिय थे। जन्म में ही तीन ज्ञान के धारी थे उन्हें राज्य सम्पदा अच्छी नहीं लगी इसलिये वैराग्य लेने का निश्चय किया। चैत्र बदी अमावस्या के दिन ग्रह त्याग कर निर्ग्रन्थ साधु बन गये। घोर तपस्या के पश्चात् ज्येष्ठ कृष्णा एकादशी को कैवल्य हो गया। उनके गणधरों की संख्या ५४ थी। सम्मेदशिखर से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

१५ धर्मनाथ

धर्मनाथ १५वें तीर्थंकर थे। रतनपुरी के राजा भानु के घर माघ शुक्ला १३ के दिन उनका जन्म हुआ। वे कुंभ वंशीय क्षत्रिय थे। जन्म में ही तीन विशिष्ट ज्ञान के धारी थे। उनके जन्म के दिन माघ शुक्ला तेरस थी। वे भी योग धारण कर वन में घोर तपस्या करने लगे। जब उन्हें कैवल्य हुआ तो उनके गणधरों की संख्या ४० थीं। अन्त में सम्मेदशिखर से उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

१६ शान्तिनाथ

इस युग के १६ वें तीर्थंकर शान्तिनाथ थे। उनका जन्म गजपुर के राजा विश्वसेन के यहाँ जेठ बुदी १४ को हुआ। उनकी माता का नाम ऐरादेवी था। वे कुरुवंशी क्षत्रिय थे। उनका शरीर स्वर्ण के समान चमकता था। जब वे राज्य सम्पदा से ऊब गये तो सब को छोड़ कर दिगम्बर साधु बन गये। जेष्ठ बदी १३ के दिन उन्हें कैवल्य हो गया। वे सर्वज्ञ बन गये। उस समय संध्या काल था। उनके गणधरों की संख्या ३६ थी। अन्त में सम्मेदाचल से जेठ बुदी १४ के दिन निर्वाण प्राप्त किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७ कुंथनाथ

कुंथनाथ १७ वें तीर्थंकर थे। जिन्होंने सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया। बकरी इनका लांछन माना जाता है।

१८ अर नाथ

कुंथ नाथ के पश्चात् अरनाथ तीर्थंकर हुए। राजा सुदर्शन इनके पिता एवं देवी इनकी माता थी। स्वरितक इनका लांछन है। चैत्र शुक्ला पूर्णिमा को कैवल्य एवं अगहन सुदी प्रतिपदा को इन्हें मोक्ष की प्राप्ति हुई।

१९ मल्लिनाथ

मल्लिनाथ १९ वें तीर्थंकर थे। मिथिला पुरी के राजा कुभ एवं रानी प्रभावती के पुत्र के रूप में इनका जन्म हुआ। इनकी काया स्वर्ण के समान निर्मल थी। कुमारकाल के पश्चात् इन्हें जाति स्मरण होने से वैराग्य हो गया। और अशोक वृक्ष के नीचे इन्होंने दीक्षा धारण कर ली। ये जीवन पर्यंत अविवाहित रहे। कहापुर के राजा नन्दिसेन को मल्लिनाथ को आहार देने का सर्व प्रथम सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनको जन्म, तप और केवल्य एक ही तिथि पौष बदी २ को प्राप्त हुआ। अन्त में फागुण सुदी पंचमी को इन्होंने सम्मेदाचल से निर्वाण प्राप्त किया।

२० मुनिसुव्रत नाथ

मल्लिनाथ के पश्चात् २० वें तीर्थंकर मुनि सुव्रत नाथ हुये जिनकी कवि ने वन्दना की है। राजग्रही नगरी के राजा सुमतिराय इनके पिता थे तथा उनकी रानी पद्मावती माता थी। मुनि दीक्षा लेने के पश्चात् सर्व प्रथम मिथिला के राजा विश्वसेन के यहाँ इनका आहार हुआ। वैशाख बुदी ९ के शुभ दिन उन्हें कैवल्य हुआ और फागुण बदी एकादशी के दिन सम्मेदशिखर से मोक्ष प्राप्त किया।

२१ नमिनाथ

नामिनाथ २१ वें तीर्थंकर हुये जिनका जन्म वाराणसी नगरी में आषाढ बदी दशमी के दिन हुआ। देवों एवं मनुष्यों तथा तिर्यञ्चों ने भी इनका जन्म महोत्सव मनाया। अन्त में वैशाख बदी १४ को सम्मेदशिखर में निर्वाण प्राप्त किया। इनके १३ गणधर थे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२२ नेमिनाथ

ये २२ वें तीर्थंकर थे। द्वारावती के राजा समुद्रविजय पिता एवं रानी शिवादेवी इनकी माता थी। जब ये विवाह पर जाने के लिये तोरण द्वार पर पहुँचे तो पशुओं की पुकार सुनकर वैराग्य हो गया तथा मुनि दीक्षा धारण कर ली। और गिरिनार पर्वत पर जाकर तप करने लगे। कार्तिक शुक्ला ११ को इन्हें कैवल्य हो गया। इनके ११ प्रमुख शिष्य थे जो गणधर कहलाते थे। अन्त में गिरनार पर्वत से आषाढ शुक्ला अष्टमी को निर्वाण प्राप्त किया।

२३ पार्श्व नाथ

पार्श्वनाथ २३ वें तीर्थंकर थे जिनका यशोगान चारों ओर विद्यमान है। वाराणसी में राजा अश्वसेन के यहाँ इनका जन्म हुआ। वामा देवी इनकी माता थी। इनकी शारीरिक ऊचाई नो हाथ की थी तथा १०० वर्ष की आयु थी। तीर्थंकर पद प्राप्त करने के लिये इन्हें ११ पूर्व जन्मों से तपः साधना करनी पड़ी और पौष बुदी ११ को ये अविवाहित रहते हुए जिन दीक्षा धारण ली। मुनि बनने के पश्चात् राजा धनदत्त के यहाँ इनका प्रथम आहार हुआ। चैत्र बुदी ४ को कैवल्य हुआ। इनके दश गणधर थे। अन्त में खड्गावस्था में ही श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन निर्वाण प्राप्त किया। इनका निर्वाण स्थल सम्मेदशिखर का उत्तुंग शिखर माना जाता है।

२४ महावीर

महावीर इस युग के अन्तिम तीर्थंकर थे जो पार्श्वनाथ के पश्चात् हुये थे। कुंडलपुर नगरी के राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के पुत्र रूप में चैत्र शुक्ला १३ को इनका जन्म हुआ। इनका मन राज्य कार्य में नहीं लगा। ये भी अविवाहित ही रहे। मंगसिर कृष्णा १० के दिन इन्होंने राज्य कार्य परिवार को छोड़कर वन में जाकर मुनि दीक्षा धारण कर ली। उस समय इनकी आयु ३० वर्ष की थी। १२ वर्ष तक घोर तपस्या के पश्चात् वैशाख शुक्ला १३ को इन्हें कैवल्य प्राप्त हो गया। वे ३० वर्ष तक लगातार विहार कर जन २ को मार्ग दर्शन देने के पश्चात् कार्त्तिक कृष्णा अमावस्या के दिन पावापुरी से इन्होंने मोक्ष प्राप्त किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि ने सभी २४ तीर्थंकरों की स्तुति करते हुए लिखा है जो व्यक्ति उनकी मन वचन काय से प्रातः एवं सायं स्तुति करते हैं उनके मिथ्यात्व रूपी अन्धकार स्वयं दूर हो जाता है ।

ए चौबस जिनेश्वर नाम, बोले सदा सुमरण के काम ।
जो मन वच संझा प्रात, सुमिरैं फटे तिमिर मिथ्यात ।।

चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति के पश्चात् कवि ने मध्यलोक एवं उर्द्धलोक के सभी जिन चैत्यालयों की वन्दना की है जो सभी अकृत्रिम हैं शाश्वत हैं एवं जिनकी वन्दना मंगलकारी है । मंगलाचरण के अन्त में सरस्वती की वन्दना की है जो श्वेत वस्त्रधारी है । वीणा से सुशोभित है । वास्तव में तीर्थंकर मुख से निकली हुई वाणी ही सरस्वती है । वही कवियों की जननी है ।[1]

मंगलाचरण के पश्चात् कवि जैसवाल जाति की उत्पत्ति का इतिहास कहना प्रारम्भ करता है[2] और उसके प्रसंग में तीनों लोकों का वर्णन करता है । लेकिन कवि ने तीनों लोकों का वर्णन करने के साथ अपनी लघुता प्रकट की है साथ में यह भी कहा है कि यदि विस्तार से इनका कथन समझना चाहें तो बड़े ग्रंथों को देखना चाहिये ।[3]

मध्य लोक में असंख्यात द्वीप समुद्र हैं इसमें अढाई द्वीप में जंबूद्वीप है जो एक लाख योजन विस्तार वाला है । उसके मध्य में सुदर्शन मेरु पर्वत है उसके उत्तर दक्षिण भाग पर भरत ऐरावत क्षेत्र है मानुषोत्तार पर्वत के वर्णन के पश्चात् असंख्यात अनन्त का गणित भेद, योजन गणित भेद, पल्यायु भेद, पल्यसागर भेद

---

१. श्वेत वस्त्र करि वीना लसैं, सुमति रजाह कुमति सब नसैं ।
मुख जिन उद्भव मंगल रूप, कवि जननी और परम अनूप ।।

२. नमिता चरण सकल दुख दहौं, जेसवाल उतपति सब कहौं ।
अधो मधि है लोकाकाश, पुरुषाकार बखानें तास ।।६।।

३. अल्प बुद्धि सूक्षम मम ग्यान, अढाई द्वीप तनों बखान ।
करयो संक्षेप पनैं विस्तार, ब्योरो कहत ग्रंथ अधिकार ।।
जाकौं सब ब्यौरे की चाह, बड़े ग्रंथ देखो अवगाह ।।२६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आदि का वर्णन किया गया है। कवि ने पूरव गणित के लिये निम्न संख्या लिखी है—

सत्तरि लाख करोरि मित, छप्पन सहस करोरि।
इतने वरष मिलाइयैं, पूरव संख्या जोरि ॥१॥

षट्काल वर्णन

कवि ने छह काल का वर्णन किया है। ये काल हैं सुषमा सुषमा, सुषमा, सुषमा दुषमा, दुषमा सुषमा, दुखमा एवं दुषमा दुषमा। ये काल चक्र कहलाते हैं

प्रथम तीन काल भोग भूमि काल कहलाते हैं जिसमें मानव कल्पवृक्षों के आधार पर अपना जीवन व्यतीत करता है। अपनी सम्पूर्ण आवश्यकताएं उन्हीं से पूर्ण करता है। ये कल्पवृक्ष दस प्रकार के बतलाये गये हैं।

सो तरु दश प्रकार वरनये, तिनिके नाम सुनौ गुण जयो।
सूरज मध्य विभूषा जानि, स्नग अरु ज्योति द्विप गुण खानि।
गृह भोजन भाजन अरु भास, सुनि अब इनको दान प्रकाश ॥६॥

कल्पवृक्षों से जब इच्छानुसार वस्तुयें मिल जाती है तो जीवन सुख शान्ति से व्यतीत होता है। प्रथम सुषमा सुषमा काल में माता के युगल सन्तान पैदा होती है और पैदा होते ही माता पिता की आयु समाप्त हो जाती हैं। माता को छींक आती है और पिता जंभाई लेता है। यह दोनों ही मृत्यु का सूचक है। पैदा होने वाले युगल अंगूठा पीकर बड़े होते हैं। वें पति पत्नि के रूप में रहने लगते हैं। प्रथम काल में तीन दिन में एक बार, दूसरे सुषमा काल में दो दिन में एक बार तथा तीसरे काल में एक दिन छोड़कर आहार ग्रहण करते हैं।

तीसरे काल का जब अष्टम अंश शेष रहता है तब कल्प वृक्ष नष्ट होने लगते हैं तब कुलकर जन्म लेते हैं जो मनु कहलाते हैं। वे कुलकर मानव समाज को प्राकृतिक विपत्तियों से सचेत करते हैं तथा मनुष्य को जीने की कला सिखलाते हैं।[1]

---

१. लोपे होइ कल्प द्रुम ज्यौ ज्यौं, कुलकर भाषें आगे त्यौं त्यौं।
भावी काल बखानै यथा, कहै सकल जीवनि सौं कथा ॥२८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये कुलकर चौदह होते हैं जो एक के बाद दूसरे होते रहते हैं। प्रथम कुलकर का नाम प्रतिश्रुत था तथा अन्तिम नाभि थे।

चतुर्थ काल कर्म भूमि काल कहलाता है जिसमें मुक्ति का मार्ग खुल जाता है तथा मानव असि मसि कृषि वाणिज्य आदि विद्याओं द्वारा अपनी आजीविका चलाता है। एक साथ पैदा होना एवं मरना मिट जाता है। वर्षा होती है खेती होती है लेकिन सदैव सुकाल रहता है।

पञ्चम काल दुषमा काल का ही दूसरा नाम है जो २१ हजार वर्ष का होता है। वर्तमान में पञ्चम काल चल रहा है। इस काल में मुक्ति के द्वार बन्द हो जाते हैं। मनुष्य की आयु १२० वर्ष की होती है। जो जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार आयु के तीसरे भाग में अगले भव का बन्ध होता है। शरीर का त्याग करते ही दूसरा शरीर मिल जाता है।

पंचम काल में कृषि के माध्यम से शरीर का पोषण होगा। सुकाल कम होंगे दुष्काल अधिक। मानव की एक बार के भोजन में भूख नहीं मिटेगी किन्तु दिन में दो तीन बार खाते रहेंगे। मध्यम वर्षा होगी।[1]

षष्टम काल इससे भी भयंकर होगा। उसमें सब मर्यादाएं समाप्त हो जावेंगी। यह काल भी २१ हजार वर्ष का होगा। कृषि का विनाश हो जावेगा। एक जीव दूसरे जीव का आहार करेगा।

प्रथम तीर्थंकर का जन्म

उक्त वर्णन के पश्चात् कवि चौदह कुलकरों में से अन्तिम कुलकर नाभि राजा से अपना कथन प्रारम्भ करता है। नाभिराजा विशिष्ट ज्ञान के धारी थे। उनकी रानी का नाम मरुदेवी था। इन्द्र ने जब जाना कि मरुदेवी के उदर से प्रथम तीर्थंकर जन्म लेने वाले हैं तो उसने नगरी को सब तरह से सुसज्जित बनाने का आदेश दिया। मरुदेवी ने एक रात्रि को सोलह स्वप्न देखे। जब उसने नाभि राजा से उनका फल पूछा तो यह जानकर अत्यधिक प्रसन्नता हुई कि वह प्रथम तीर्थंकर की माता बनने वाली है।

चैत्र कृष्ण नवमी के शुभ दिन आदिनाथ का जन्म हुआ। देवताओं एवं मानवों ने जिस उत्साह एवं प्रसन्नता के साथ जन्मोत्सव मनाया, कवि ने उसका ४७ दोहा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौपाई छन्द में बहुत ही मनोरम वर्णन किया है। ऋषभदेव धीरे धीरे बड़े हुए। उनकी बाल सुलभ क्रीडा सबको प्रिय लगती थी। ऋषभदेव युवा हुये। राज्य कार्य में सबको सहयोग देने लगे। अन्त में नाभि ने ऋषभदेव को राज्यसिंहासन पर अभिषिक्त किया। ऋषभदेव ने इस युग में सर्व प्रथम विवाह की प्रक्रिया प्रारम्भ की। किसीकी का लड़का एवं किसी की लड़की को लेकर दोनों का विवाह कर दिया। इस प्रकार विवाह संस्था को जन्म दिया।[2] स्वयं ऋषभ का भी कच्छ महाकच्छ की पुत्रियां नन्दा यशस्वती से विवाह सम्पन्न हुआ। जिससे आगे संसार चलता रहे।[2]

वैहै प्रभु कौ व्याही राय, आनन्द मंगलचार कराय।
भोग विलास करत संतोष, तब सबभिराएीं को कोष ।।३६।।२०।।

ऋषभदेव के यशस्वती रानी से भरत आदि १०० पुत्र एवं ब्राह्मी पुत्री तथा नन्दा से बाहुबली पुत्र एवं सुन्दरी पुत्री हुई। भरत बड़े हुए। वे बड़े प्रतापी एवं योद्धा थे। जब प्रजा भूखे मरने लगी तो ऋषभदेव ने इक्षु उगाने की विधि बतलाई। अपने ही वंश में विवाह करने की उन्होंने मनायी की। कुछ समय पश्चात् ऋषभदेव ने भरत को राज सम्हला कर वैराग्य धारण कर लिया।

स्वयम्बर की प्रथा

वाराणसी नगरी का अकंपन राजा था उसे सब सेनापति कहते थे। उसके एक लड़की सुलोचना थी। वह भरत के पास आकर प्रार्थना कि उसकी लड़की विवाह योग्य हो गयी इसलिये उसके लिये कोई वर बतलाइये। भरत ने सोच समझ कर स्वयंवर रचने के लिये कहा।

वरमाला कन्यां कौ देहु, पुत्री निज इच्छा वर लेहु।
ताही वरत कोऊ मानै बुरो, ताकौ मान भंग सब करौ ।।४५।।२०।।

इस प्रकार स्वयंवर प्रथा की नींव रखी गयी।

---

१. तृप्ति नहीं भक्षें एक बेर, जेवें दुपहर सांझ सवेर।
मध्यम वृष्टि मेघ सब करैं, धर्म विछिप्ति तहीं परवरे ।।४७।।१४।।

२. पुत्री काहूं की आनिये, सुत काहूं को तहां बुलाय।
करें विवाह लगन शुभवार, इह विधि बढ़त चल्यौ संसार ।।११।।१६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वैराग्य

एक दिन राजसभा में ऋषभदेव सिंहासन पर बैठे थे। नीलांजसा अप्सरा का नृत्य हो रहा था। कवि ने उसे नटी की संज्ञा दी है तथा आगे पातुरी कहा है। ये तत्कालीन शब्द थे जो राज्य सभाओं में नृत्य करने वाली के लिए प्रयुक्त किये जाते थे। अचानक नीलांजसा नृत्य करती हुई गिर गयी इससे प्रभु को वैराग्य हो गया वे बारह भावनाओं के माध्यम से संसार के स्वरूप पर विचार करने लगे। कोश में इन भावनाओं बहुत ही उपयोगी एवं विस्तृत वर्णन हुआ है। जो कवि की विषय वर्णन करने की शक्ति की ओर संकेत करता है।[1] ऋषभदेव के वैराग्य के समाचार सुनते ही स्वर्ग से लौकातिक देव तत्काल वहाँ आये और उनके वैराग्य भावना की प्रशंसा करने लगे।

उसी समय ऋषभदेव ने भरत का राज्याभिषेक किया। बाहुबली को पोदनपुर का राज्य दिया तथा अपने दूसरे पुत्रों को भी उनकी इच्छानुसार राज्य बांट दिया। सब भाई भरत की सेवा में रहने लगे। उस दिन चैत्र कृष्णा नवमी थी। ऋषभदेव ने एक विराट समारोह के मध्य वैराग्य धारण कर लिया। सब प्रकार के परिग्रह को त्याग कर वे निर्ग्रन्थ दिगम्बर हो गये। केश लुञ्चन किया। तथा सब प्रकार के पारवारिक एवं अन्य सम्बन्धों से अपने आप को मुक्त करके पंच महाव्रत धारण कर लिये।[2] परम दिगम्बर ऋषभदेव को स्वयमेव आठ प्रकार की ऋद्धियां प्राप्त हो गयी।[3] जिनके कारण उनको अपार शक्ति मिल गयी। कवि ने इन ऋाद्धियों का विस्तार से वर्णन किया है। जैसे बीज बुद्धि ऋद्धि के उदय से एक पद पढ़ने से अनेक पदों का ज्ञान हो जाना तथा एक श्लोक का अर्थ जानने से पूरा ग्रंथ का ज्ञान स्वयमेव हो जाना बुद्धि ऋद्धि का फल होता है—

बीज बुद्धि जब उदय कराइ, पढत एक पद श्री जिनराय।
पद अनेक की प्रापति होय, यह था बुद्धि तनों फल जोइ।
एक श्लोक अर्थ पद सुने, पूरण ग्रंथ आपतें भनें ।।३१।।२७.

---

१. ए शुचि बारह भावना, जिन तें मुक्तिनि वास।
श्री जिनवर के चित्त में, तब ही भयो प्रकाश ।।६।।२६ ।।
२. मंडे पंच महाव्रत घोर, त्यागी सकल परिग्रह जोर ।।१४/१।। २६।।
३. बुद्धि औषधी बल तप चार, रस विक्रिय क्षेत्र क्रिया सार।१८।।२६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तप ऋद्धि के प्रसंग में श्रुतस्कंध व्रत वर्णन में आचार्य कुन्दकुन्द के पांच नामों की उत्पत्ति कथा, विदेह क्षेत्र गमन, भट्टारक पद स्थापन आदि का गद्य में अच्छा वर्णन दिया है।

कवि ने सभी कल्याणकों के वर्णन का आधार जिनसेनाचार्य कृत आदिपुराण को बनाया है जिसका स्वयं कवि ने उल्लेख किया है—

अल्प बुद्धि वरणों संक्षेप, आदि पुराण मिटैं भ्रम वेपु।
बारह विधि तपु कीनौ ईश, जगत शिरोमनि श्री जगदीश ।।३८/५६

ज्ञान कल्याणक

ऋषभदेव को कैवल्य होते ही समोसरन की रचना की गयी। जिसका वर्णन कवि ने विस्तार से किया है। यद्यपि उसने अपने को अल्पबुद्धि लिखा है। लेकिन समवसरण का वर्णन उसने १७४ पद्यों में लिखा है। ऋषभदेव ने अपना उपदेश मागधी भाषा में दिया था।[1] सात तत्व एवं नौ पदार्थों के विस्तृत परिचय के लिये कवि ने हेमराज कृत कर्मकांड, पंचास्तिकाय ग्रंथों को देखने के लिये लिखा है।[2] इसके पश्चात् सात तत्व एवं नव पदार्थ का विस्तृत वर्णन किया है—

जीव अजीव और आश्रव संवर निर्जर बंध।
मोक्ष मिलें ए जानियें, सप्त तत्व संवंध ।।१।।
पुन्य पाप हैं ए जुदे, नव इनि मांहि मिलाइ।
जिनवानी नव पद विमल, सो वरणों मुनि ताहि ।।२।।६३।।

जीव तत्व के वर्णन में कवि ने सात प्रकार के समुद्घातों का वर्णन किया है।[3]ये हैं जीव वेदना समुद्घात, कषाय समुद्घात, वैंक्रियक समुद्घात, मरणांतिक समुद्घात, तेजस समुद्घात, आहारक समुद्घात, केवल समुद्घात, इसके पश्चात् सात प्रकार के

---

१. मुख्य मागधी भाषा जानि, सबके सुनत होई दुख हानि ।।६६/६३.
२. जो कोई इनि सातनि को भेद, व्यौरो चाहों जो तजि खेद।
कर्मकांड पंचसुकाय, हेमराज कृत खोजो मांहि ।।७४।।६३।।
३. समुद्घात हैं सात प्रकार तिनि के भेद सुनो तुम सार।२७।।६६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संयम स्थानों का वर्णन मिलता है ।[1] दर्शन स्थान का वर्णन के पश्चात् छह लेश्याओं पर विस्तृत विचार किया गया है । कृष्ण, नील, कपोत, पीत पद्म और शुक्ल लेश्या को निम्न उदाहरण द्वारा समझाया है—

सुनो एक इनिको दृष्टांत, प्रकटैं विमल बोध की कांत ।
गए पुरुष छह वनह मझार, आम्र वृक्ष फल देख्यो सार ।।२९।।
सघन शुभग अरु बहु फल पर्‍यो, जांकी छांह पथिक श्रम हर्‍यो ।
खेवट प्राणी ता तरजाइ, फल भक्षण की ईछा भाई ।।३०।।
कृष्ण धनी कहैं जर काटिये, पीछें वांके फल वांटिये ।
तब बोल्यो अंग जाके नील, गोदें काटत करो न ढील ।।३१।।
वा तरु की काटौ सब डारि, कहि कापोत धनी निर्द्धार ।
गुच्छा तोरि लेहु रे मीत, यौं भाषै जाके उर प्रीति ।।३२।।
बीन लेहु पके फल सबैं, बोल्यौ पद्म धनी यह तबें ।
गिरि लेहु मति लाउ हाथ, कहैं सुकल वारी गाथ ।।३३।।
धरि षट लेस्यां स्वांग अनूप, नाचत फिरें जीव विद्रूप ।
काल अनादि गये इंहि भांति, आतम अनुभौ विना नसांत ।।३४।।७०

चौदह गुणस्थानों का भी वर्णन करके कवि ने चौदह जीव समासों का वर्णन किया है ।[2] ये सब दार्शनिक वर्णन हैं जिसे कवि ने अपने ग्रंथ में स्थान दिया है । ऐसा लगता है कवि ने गोम्मटसार जीवकांड को अपने कथन का मुख्य आधार बनाया है ।

पंच परावर्तन, एवं जाति स्थानों के वर्णन के पश्चात् कवि चार प्रकार के ध्यानों का वर्णन प्रारम्भ करता है ।

---

१. संजम और असंजम जानि, छेदोपस्थापन परमांन ।
जथाख्यात सामायिक अंग, सूक्ष्म सांपराय गुण चंग
परिहार विशुद्धि कहों संजमा, सातों स्वांग धरै आतमा । ८२।।६८।।

२. एई चौदह जीव समास, करै आतमा तहां निवास ।
जो लौ संसारी कहवाइ, तोलौं इनमें भ्रमन कराइ ।।१०१।।७३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ध्यान का स्वरुप

रौद्र ध्यान वाला प्राणी हिंसा करने में आनन्दित होता है, चोरी करता है, झूंठ बोल कर प्रसन्न होता है। विषयों के सेवन में अपना कल्याण मानता है। ये चारों रौद्र ध्यान के अंग है।[1] पृथ्वी, अग्नि, वायु, जलतत्वों का भी प्रस्तुत ग्रंथ में वर्णन हुआ है।

पिडंस्थान ध्यान पदस्थ ध्यान मोक्ष मार्ग का साधक है। कवि ने पदस्थ ध्यान का वर्णन विभिन्न मंत्रों के साथ किया है। इन मंत्रों में ह्रींकार मंत्र, अपराजितमंत्र[2], षोडशाक्षर मंत्र[3], षडाक्षरीमंत्र[4], चतुवर्णमंत्र[5], बीजाक्षरमंत्र[6], चत्तारिमंगलमंत्र[7], त्रयोदशाक्षरमंत्र[8], सप्ताक्षरमंत्र[9], पंचाक्षरमंत्र[10],

---

१. हिंसा करत चित्त आनंद, चोरी साधत हिए ननंद।
बोलत झूंठ खुशी वहु होइ, सेवत विषय हुलासी जोइ।
रौद्र ध्याम के चारचों अंग, कर्म बंध के हेतु अभंग ॥६६।७६.

२. एक शत आठ वार जो जपें, प्रभुता करि सब जग में दिपें।
एक उपास जुतौ फल होइ, कर्म कालिमा डारे खोइ ॥४३॥८०॥

३. अर्हंत्‌सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः
करि एकाग्र चित्त धरि प्रीति, होइ उपवास तनों फल मीत ॥४६॥

४. अरहंत सिद्ध इति षडाक्षरी मंत्र

५. अरहंत इति चतुर्वर्णमंत्र

६. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रं ह्रौं ह्रः अति आऊसा नमः इति बीजाक्षर मंत्र।

७. मंगल सरण लोकतम जांनि, चारि भांति करि कीयौ वखान।
ध्यावे जपें चित्त की ठोर, ताकौ मुक्ति रमणि वरें दोरि ॥५४॥८०

८. ॐ अरहंत सिद्धासयोग केवली स्वाहा। इति त्रयोदशाक्षर मंत्र।

९. ॐ ह्रीं श्रीं अर्हन्नमः। इति सप्ताक्षर मंत्र।

१०. नमो सिद्धाणं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चन्द्ररेखामंत्र[1], श्रीवर्णमंत्र[2], पापभक्षिणी विद्या मंत्र, असि आऊसा मंत्र, सिद्ध मंत्र आदि का अच्छा वर्णन मिलता है। जान पड़ता है कवि मंत्र शास्त्र के भी अच्छे ज्ञाता थे।

कवि ने रूपस्थध्यान एवं रूपातीत ध्यान[3], का भी वर्णन किया है।

ध्यान का वर्णन करने के पश्चात् कवि ने जीव की विभिन्न जातियों की संख्या का वर्णन किया है।

नर पशु नारक अी सुरदेव, लाख चौरासी जाति कहेव।
इतने रूप चिदानंद धरें, जाति स्थान नाम परि वरें ।।१८/८३.

षट् द्रव्य वर्णन

अजीव तत्व पुदगल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इस प्रकार पांच प्रकार का है। पुद्गल द्रव्य मूर्तिक तथा शेष अमूर्तिक हैं।[4] शब्द भी पुद्गल द्रव्य का ही एक पर्याय है तथा वह मूर्त्तिक है[5] इसके पश्चात् कवि ने शेष द्रव्यों का संक्षिप्त वर्णन किया है।

षट् द्रव्यों का वर्णन के पश्चात् आठ कर्मों की प्रकृतियों का वर्णन किया गया

---

१. ॐ नमो अरहंताणं इति मंत्र ;

२. ॐ ह्रीं ऽ श्री वर्णमंत्र:
राज रहित इंद्री रहित सकल कर्म नसाइ।
जीन तनौ विश्राम यह, रूपातीत कहाइ ।।१५।।८३.

३. इह रूपस्थ अनूप गुण जिन सम आतम ध्यान।
करि यांको अभ्यास मुनि, पावै पद निरवान ।।४।। ८३

४. पुदगल धर्माधर्म आकास, काल मिलें पांचौ परकार।
है अजीव इनिकौ नाम, तिनि में मूरति पुदगल धांम ।।४४/८४।।

५. सुनि पुदगल के सकल पर्याय, प्रथम शब्द भाष्यो जिनराज।
शबद कहे वरण तम रूप, पुदगल कौ पर्याय अनूप ।।४६/८४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। जैन दर्शन कर्म प्रधान दर्शन है। जैसा यह जीव कर्म करता है उसे वैसा ही फल भोगना पड़ता है। ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय के भेद से आठ प्रकार के एवं प्रकृतियों सहित १४८ भेद है। इसके पश्चात् प्रकृतियों के गुणों का विस्तृत वर्णन मिलता है जिसमें कवि में अगाध सैद्धान्तिक ज्ञान होने का प्रमाण मिलता है। प्रचला दर्शनावरण प्रकृति का लक्षण देखिये—

प्राणी जहां नींद बसि आइ, महा चंचल हाथरू पाइ।
नेत्र गात्र सब वैक्रिय होइ, मानों भार सिर जोइ ।।४७।।

करें नींद जब लहि विशेष, तव द्रग रेत भरे से देखि।
मुद्रित मुकुलित आधें आध, प्रचला दरशनावरण अगाध ।।४८/६०।।

प्रकृति गुणों के विस्तृत वर्णन के पश्चात् कवि ने चौंदह गुणस्थानों की प्रकृति भेदों का वर्णन किया है।

सात तत्वों का स्वरूप

सात तत्वों में जीव, अजीव, आस्रव, बंध संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्व गिनें जाते हैं। जीव, अजीव तत्व का तो पहिले विस्तृत वर्णन किया जा चुका है इसलिये कवि ने आस्रव तत्व का विभिन्न दृष्टियों से व्याख्या की हैं। हास्य प्रकृति आश्रव के निम्न क्रियाओं के कारण होता है—

धर्मी जन अरु दीन निहार, तारी दे तहां हंसे गंवार।
मदन हास्य अरु करै प्रलाप, धर्म जज्ञ लखि लोचनराय ।।२५।।

इन तें हास्य प्रकृति जु बंधाइ, कही प्रगट श्री गौतमराय।
बैठें देखे नर तिय संग, मिथ्याचार लगावें नंग ।।२६/१०७।।

मनुष्य जीवन कब किसे मिलता है यह एक विचारणीय प्रश्न है जिसका कवि ने निम्न प्रकार समाधान दिया है—

स्वल्पारंभ परिग्रह जांन, भद्र प्रकृतियां चारि मांनि।
करुणा घनी आर्य परिणाम, धुलि रेख सम दीसे ताम ।।४८।।

पर दोषी न कुकर्म हि करें, मधुर वचन मुख तें उचरें।
कानन सून्यो होइ जो दोष, भूलनि कवहू भाषे दोष ।।४६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव गुरुनि कौ पूजे सदा, निसि भोजन यांकै नही कदा ।
शुभ ध्यानी लेश्या कापोत, बंध मनुष्य श्रायु को होत ।।५०/१०८।।

इस प्रकार कवि ने दार्शनिक एवं सैद्धान्तिक वर्णन भगवान ऋषभदेव के ज्ञान कल्याणक के अन्तर्गत किया है । निर्वाण कल्याणक वर्णन में कवि ने दान की उपयोगिता पर विस्तृत प्रकाश डाला है । दान भी पात्र कुपात्र देखकर दिया जाना चाहिये । कुपात्र को दिया हुआ दान निष्फल जाता है । कवि के अनुसार साधु को दिया हुआ भोजन (आहार) उत्तम दान है । साधर्मी जनों को दिया हुआ दान मध्यम दाना है हिंसक जनों को दिया हुआ दान तो एक दम व्यर्थ है । जिस प्रकार किसान भूमि की उपज देख कर उसमें बीज डालता है उसी प्रकार दान देते समय पात्र कुपात्र का ध्यान रखा जाना चाहिये ।

जो किसान खेती के हेत, कल्लर भूमि रही चित देत ।
दान जु पात्र तनें अनुसार, पात्र समान फल है बहुसार ।। ७८ ।। ११३

सम्राट भरत ने ब्राह्मण वर्ण की स्थापना की थी । कवि ने उनमें पाये जाने वाले ९ प्रकार के गुणों का वर्णन किया है । उनमें से आठवां एवं नवां गुण निम्न प्रकार है—

अल्पाहारी चित संतोषी, दुष्ट वचन सुनि नहि जिय रोष ।
आशीर्वाद परायन जानि, अष्टम गुण द्विज को यह जांनि ।।९३।।

शुभोपयोगी विद्यावान, आतम अनुभव करण प्रधान ।
परम ब्रह्म को ध्यान कराइ, ए ब्राह्मण के नव गुण कहिवाइ ।।९४/११४

जब तक भरत रहे तब तक वे इन गुणों से युक्त रहे लेकिन बाद में उनमें भी शिथिलता आती गयी ।

चक्रवर्त्ति के चौदह रत्न

कवि ने चौदह प्रकार के रत्नों के नाम गिनाये हैं । जो निम्न प्रकार हैं—

सेनापति अरु स्थपित बखांन, हर्मपती अरु गज अश्व प्रधान ।
नारी चर्म चक्र काकिनी, छत्र परोहित मनि तहां गनी ।।८३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

षडग दंड मिलि चौदह भए, इनि के भेद सुनौ अब जए।
सेनापति अैसो गुन लेत, नव प्रकार सैन्या सज देत ।।८४/१२६।।

उक्त चौदह रत्न चक्रवर्ती के ही होते हैं अन्य किसी राजा को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। कवि ने इन सभी का विस्तृत वर्णन विया है। अन्त में लिखा है—

चर्क्री पुण्य प्रताप बल, चौदह रत्न अनूप।
औरन काहू कौं मिलें, मिलें अनेक जग भूप ।।१७।। १२७।।

गौतम द्वारा महावीर का अनुयायी बनाना

कवि ने चौरासी बोल, श्वेताम्बर मत उत्पत्ति वर्णन, आदि पर भी विस्तृत प्रकाश डाला है। इसके पश्चात् कवि एक दम महावीर के समवसरण में पहुँच जाता है। कैवल्य होने पर भी जब भगवान की दिव्य ध्वनि नहीं खिरती है तो इन्द्र को बड़ी चिन्ता होती है और वह एक वृद्ध के रूप में गौतम ऋषि के पास पहुँचता है। वह उससे "त्रैकाल्यं द्रव्य षटकं" श्लोक का अर्थ समझना चाहता है लेकिन जब अर्थ समझ में नहीं आता है तो वह अपने शिष्यों के साथ महावीर के समवसरण में आता है। समवसरण में लगे हुए मानस्थंभ को देखते ही गौतम को वास्तविक ज्ञान उत्पन्न हो जाता है और वह महावीर की निम्न प्रकार स्तुति करने लगता है।

गौतम नम्यौ चरन अष्टांग, लागौ जिन स्तुति पढन अभंग।
दीन दयाल कृपा निधि ईस, कर पंकज नाऊं शीस ।।१४/१३८।।

गौतम को तत्काल मनःपर्यय ज्ञान की प्राप्ति हो गयी। वह महावीर के शिष्यों में प्रमुख शिष्य हो गया।[1]

उसी समय मगध का सम्राट श्रेणिक रानी चेलना के साथ वहां आया। श्रेणिक बौद्धधर्म का अनुयायी था लेकिन चेलना महावीर की परम भक्त थी। समवसरण में आने के पश्चात् भगवान महावीर ने उसके पूर्व भवों का वृतान्त विस्तार के साथ सुनाया।

---

१. तव गौतम मुनिराज सरेष्ठ, सकल गनि मध्य भए वरेष्ठ ।।१६/१३८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ता घरनी चेलना अनूप, जाके रत्न सम्यक्त स्वरूप ।
तव सुनि श्रेनक नृप की कथा, श्री गुरु मुख तें भाषी जु जथा ।

श्रेणिक द्वारा जैनधर्म स्वीकार करने की कथा

पूरी कथा में राजा श्रेणिक चेलना के आग्रह से किस प्रकार जैनधर्म का अनुयायी बना इसका भी वर्णन दिया हुआ है । सर्व प्रथम राजा श्रेणिक ने बौद्धधर्म की प्रशंसा की तथा जैनधर्म के प्रति अपने विचार प्रगट किये ।[1] चेलना के कहने से राजा ने पहिले बौद्ध साधु को बुलाया और विभिन्न प्रकार से उसकी परीक्षा ली । फिर जैन साधु की चेलना ने परिगाहना की । परीक्षा में जैन साधु द्वारा खरा उतरने पर राजा श्रेणिक ने जैनधर्म स्वीकार कर लिया ।

सुनि श्रेनिक संसे उडि गई, द्दढ प्रतीति जिनमत पर भई ।
तब रानी कियो अंगीकार, धन्य सुबुद्धि पवित्र अवतार ।।३०।।

निज पति कौ तिन कीनौं जैन, बोध तनों उर तें गयो फैंन ।
वा मत वसि गयौ पहिलेंक्ख कहि न सकैं
नहिं जहां दुख केतें सक्कं ।।३१।। १४३ ।।

राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से साठ हजार प्रश्न किये और उनका समाधान भी सुना ।[2] अन्त में अषाढ सुदी १४ को सभी मुनिजनों ने योग धारण किया तथा कार्तिक सुदी १४ तक योग धारण किये रहे । लेकिन कार्तिक बुदी अमावस्या की रात्रि को जब प्रभात काल में चार घडी रही थी तब भगवान महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया ।

कातिग वदि मावसक रीति, चार घडी जब रह्यौ प्रभात ।।५।।

---

१. जैन कहां जांकौ उरधरे, तहां न कोऊ क्रिया आचरे ।
बोध तनें गुरु दीन दयाल, जैन जती निरधन वे हाल ।।
अशुचि अपावन बोध विहीन, कौन अंग निर्मे परवीन । ७६ ।। १४०।।

२. राजा श्रेनक चरित में, कह्यौ संक्षेप सुनाइ ।
अति हितकारी भाव कौ, परमत नहीं सहाइ ।।१।। १४३ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री जिन महावीर तीर्थेश, पंचम गति को कीयो प्रवेश।
मुक्ति सिद्ध सिला पर सिद्ध सरुप, परमातम भए चिदरुप ॥६॥

महावीर संघ के शेष मुनि गणों ने चतुर्मास पूर्ण किया।[1]

इसके पश्चात् कवि ने काष्ठा संघ की उत्पत्ति की कथा लिखी है जो ४० दोहा चौपाई छन्दों में पूर्ण होती है।

लोहाचार्य वर्णन

आचार्य गुप्ता गुप्त के भद्रबाहु शिष्य थे। उनके पट्ट शिष्य माघनन्दि मुनि थे। आचार्य कुन्दकुन्द उनके पट्ट शिष्य थे। तत्वार्थसूत्र के रचयिता उमास्वाति आचार्य कुन्दकुन्द के शिष्य थे। उमास्वाति के पट्ट शिष्य थे लोहाचार्य जिन्होंने काष्टासंघ की स्थापना की थी। लोहाचार्य विद्या के भण्डार एवं सरस्वती के साक्षात् अवतार थे। उनके एक बार शरीर में ऐसा रोग हो गया कि मरने की स्थिति आ गयी। वायु पित्त एवं कफ तीनों का जोर हो गया। तब उनके उसी भव के श्री गुरु स्नेहवश वहां आये। उन्होंने उनको सन्यास (समाधि मरण) दे दिया क्योंकि जीने की तनिक भी आशा नहीं रही थी। लेकिन शरीर की व्याधियां स्वतः ही धीरे धीरे कम होने लगी और वे स्वस्थ हो गये। भूख प्यास लगने लगी। तब उन्होंने अपने गुरु से विशेष आज्ञा मांगी। श्री गुरु ने कहा कि

श्री गुरु कहें न आग्या आन, करि सन्यास मरण बुधिवान।
ज्यो आगे परमादी जीव, प्रतिपालें जो व्रत जोग सदीव ॥२३॥

लोहाचार्य ने गुरु की बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और अन्न जल ग्रहण कर लिया। गुरु ने उनको अपने गच्छ से निकाल दिया और दूसरे किसी साधु को पट्टाधीश बना दिया। लोहाचार्य ने गुरु के इस विरोध पर गम्भीरता पूर्वक चिन्तन किया और अन्त में गुरु को छोड़कर अन्यत्र विहार कर दिया। उस समय विक्रम संवत सात सौ ७६० था।[2]

---

१. जो हो इनिसों कहो प्रकार, पूरौ करौ जाइ चोमास।
मति उर यो व्रत भंग जु भयो, तुम प्रभु के हित हो चित दियो ॥१३॥

२ लोहाचारज सोचि विचार, गुरु तजि कीयौ देश विहार।
संवत त्रेपन सात से सात, विक्रम राय तनो विख्यात ॥ २५॥१४४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लोहाचार्य अगरोहा ग्राम आये। जो नंदीवर गांव के नाम से विख्यात था।

अगरोहा ग्राम में अग्रवालों की बस्ती थी। वे धनाढ्य थे तथा दूसरे धर्म को मानने वाले थे। दूसरे धर्म की परवाह नहीं करते थे। उनकी उत्पत्ति के बारे में कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति

अगर नाम के ऋषि थे जो तपस्वी थे वनवासी थे तथा जिनकी माता ब्राह्मणी थी। एक दिन जब वे ध्यानस्थ थे तो किसी नारी का शब्द उनके कानों में पड़ा। नारी का शब्द सुनकर ऋषि कामातुर हो गये। शब्द बड़े मधुर एवं ललित थे तथा उसका स्वर कोकिल कंठी था। ऋषि का ध्यान छूट गया तथा वह उसका सौन्दर्य निरखने लगे।[1] उस नारी ने कहा कि वह नाग कन्या है इसलिये यदि ऋषि को काम सता रहा है तो वह उसके पिता से बात करे। वह ऋषि का रूप देखकर कन्या दान कर देंगे। यह सुनकर ऋषि खड़े हो गये और नाग लोक को चले गये। नागिनी ने ऋषि तपस्वी को बहुत आदर दिया। ऋषि ने नाग कन्या के पिता से प्रार्थना की कि वह अपनी कन्या का उसके साथ विवाह कर दे। नाग ने ऋषि की बात मान कर अपनी कन्या उसे दे दी। ऋषि कन्या को अपने साथ ले आया। उससे १८ लड़के हुए जिनमें गर्ग आदि के नाम उल्लेखनीय है। उनकी वंश वृद्धि होती गयी

---

१. अगर नाम रिष हें तप घनी, वनवासी माता वाभनि।
एक दिवस बैठें धरि ध्यान, नारी सब्द परयौ तब कांन ॥१२॥

मधुर वचन और ललित अपार, मानों कोकिलां कंठ उचार।
छुटि गयो रिष ध्यान अनूप, लागे निरिखिन नारी रूप ॥१३॥

२. तब ऋषिराय प्रार्थना करी, तब कन्या हसि जिय में बरी।
अब तुम दे हमें करी दान, ज्यों संतोष लहै मम प्रान ॥१७॥

नाग दई तब कन्यां वांहि, कर गहि अगर ले गए ताहि।
ताके सुत अष्टादस भये, गर्ग आदि सुत में वरनए ॥१८॥१४५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रौर उनको अगरवाल कहा जाने लगा। उनके १८ गोत्र हो गये जो ऋषि के पुत्रों के नाम से प्रसिद्ध हो गये।[1]

एक बार पुरवासियों ने सुना कि कोई मुनि ग्राये हुये हैं ग्रौर वे नगर के वाहर ही उतरे हुये हैं। नगरवासी उन्हें साधु जानकर भोजन हेतु प्रार्थना करने गये। मुनि ने नागरिकों से कहा कि वह तपस्वी है इसलिए यदि कोई श्रावक धर्म के पालन करने की प्रतिज्ञा लेवे तथा जिसे अन्य धर्म अच्छा नहीं लगता हो तो वह उन्हें आदरपूर्वक अपने घर ले जा सकता है। उसके घर पर वे भोजन करेंगे। मुनि के वाक्य सुनकर सभी नागरिक विस्मय करने लगे तथा आपस में चर्चा करने लगे कि ये कैसे मुनि हैं जो भोजन देने पर भी भोजन ग्रहण नहीं करते।[2]

मुनि के प्रभाव से कुछ लोग जिनधर्मी वन गये ग्रौर मुनि के चरणों में आकर वन्दना करने लगे। गुरु के उपदेश से धर्म का मर्म समझ लिया। उसके पश्चात् मुनि ने नगर प्रवेश किया। नव दीक्षित जैनों ने मुनि को भली प्रकार आहार दिया ग्रौर अनेक प्रकार के उत्सव करने लगे। मुनि श्री ने उनको प्रतिवोधित किया ग्रौर इस प्रकार अग्रवाल जैन वने। प्रारम्भ में वे केवल ७०० घर थे। वहीं जिन मन्दिर का निर्माण कराया गया ग्रौर उसमें काष्ठ की प्रतिमा विराजमान कर दी। दूसरे ही पूजा पाठ वना लिये जो गुरु विरोधी थे। यह बात चलती चलती भट्टारक उमास्वामी के पास आयी। बात सुनकर मुनि को खूब चिन्ता हुई कि काष्ठ की

---

१. तिनि कौ वंश बढयो असराल, ते सव कहिये अगरवाल।
उनके सव अष्टादश गोत, भए रिषि सुत नाम के उदोत ॥१६॥

२. तिनि सुन्यौ एक आयौ मुनि, पुरु के निकट उतर्यौ गुनी।
भिक्षुक जांनि सकल जन नए, भोजन हेत विनवत भए ॥२०॥

तव मुनि कहें सुनों धरि प्रीति, हम तपसीन की अैसी रीति।
जो कोऊ श्रावक धर्म कराइ, मिथ्यामत जाकों न सुहाइ ॥२१॥

सो अपने घरि आदर करें, ले करि जाइ दया तव चरें।
ग्रौर ग्रेह नहीं आहार, यह हम रीति सुनी निर्द्धार ॥२२॥ १४५ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिमा बनाने की नयी परम्परा डाल दी। लेकिन जैनधर्म में दूसरों को दीक्षित करने की जब बात मालूम पड़ी तो उन्हें सन्तोष हुआ और वे भी वहीं आ गये जहाँ मुनि श्री लोहाचार्य थे।[1] जब उन्होंने भट्टारक उमास्वामी के आने की बात सुनी तो उन्हें वे लिवाने गये और बड़े उत्साह से उनका स्वागत किया।

लोहाचार्य ने उमास्वामी को चरण पकड़ लिये। मुनिराज ने आनन्दित होकर लोहाचार्य को उठा लिया और उनको चरणों से उठाकर अपने पास पर बिठा लिया। सभी नागरवासियों ने उमास्वामी की वन्दना की और उन्हें ने सबको धर्म वृद्धि देते हुए आशीर्वाद दिया। उनकी अगवानी करके नगर में उसी मन्दिर में लाये जिसमें काष्ठ की प्रतिमा विराजमान थी। उमास्वामी से जब नगरवासियों ने उनसे आहार ग्रहण करने की प्रार्थना की तो वे कहने लगे कि जो उन्हें भिक्षा देना चाहेगा तो आचार्यश्री कों उनकी बात माननी पड़ेगी। लोहाचार्य तत्काल विनय पूर्वक आज्ञा देने के लिये प्रार्थना करने लगे जिससे उनका जीवन धन्य हो सके।

उमास्वामी ने कहा कि वे सब शिष्यों में सपूत हैं जो मिथ्यात्व का खंडन करने वाले एवं जैनधर्म का पोषण करने वाले हैं।तथा जिन्होंने जैनधर्म में वृद्धि की है। लेकिन एक शिक्षा वे उनकी भी माने और भविष्य कि काष्ठ की प्रतिमाविराजमान करना बन्द

---

१. चली बात चलि आई तहां, उमास्वामी भट्टारक जहां।
मुनि जिय चिन्ता भई अगाध, करी काठ की नई उपाधि ॥२८॥
आवत सुनि श्री निज गुरु भले, आगे होंन आचारज चले।
जीनें सकल नगर जन संग, वाजन अति बाजे मनरंग ॥२९॥

२. तब मुनि कहे सुनो गुन जूत, शिष्यन में तुम भये सपूत।
परमत भंजन पोषन जैन, धर्म बढायो जीत्यो मैंन ॥३४॥
वही सीख हमरे करि धरो, काठ तनी प्रतिमा मति करो।

३. तबतें काष्ठ संघ परवरयो, मूलसंघ न्यारो विस्तर्यो।
एक चना कीज्यौ द्वै दारि, त्यौ ए दांऊ संघ विचार ॥३८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करें। क्योंकि काष्ठ, अग्नि, जल लेप, आदि से विकृत होसकती है। लोहचार्य ने अपने गुरु की बात मान लीं। उन्होंने उनके हाथ से सुरही के वाल वाली पिच्छी ग्रहण की। दोनों गुरु शिष्य प्रसन्न होकर उठे। उसी समय से लोहाचार्य का संघ काष्ठा संघ कहलाने लगा। और वह मूलसंघ से पृथक माना जाने लगा यह कोई नया संघ नहीं है। संघ में जैनधर्म के प्रतिपादित सिद्धान्तों का पालन होता है।

काष्ठासंघ की उत्पत्ति का इतिहास कहने के पश्चात् कवि ने भक्तामरस्तोत्र एकीभावस्तोत्र, भूपालस्तोत्र, विषापहारस्तोत्र एवं कल्याणमन्दिरस्तोत्र के रचे जाने की कथायें लिखी हैं। कवि के कथा कहने का ढंग बड़ा ही आकर्षक है।

जैसवाल जाति का इतिहास

कल्याणमन्दिरस्तोत्र कथा समाप्ति के पश्चात् कवि ने ईक्ष्वाकु वंशीय जैसवाल जाति का इतिहास कहने की भावना व्यक्त की है।

जैसवाल इक्ष्वाकु कुल, तिनि कौ सुनौ प्रवन्ध

ऋषभदेव तीर्थंकर ने गृह त्याग करने से पूर्व महाराजा भरत को अयोध्या तथा वाहुबली को पोदनपुर का राज्य दिया तथा शेष पुत्रों को उनकी इच्छानुसार राज्य शासन सौंप दिया। उन्हीं में से एक पुत्र शक्ति कुंवर जैसलमेर चल कर आये और जैसलमेर मण्डल का शांतिपूर्वक राज्य करने लगे।[1] उनका वंश बढने लगा तथा जैन धर्म की वृद्धि होने लगी। कुछ समय पश्चात् उन्हीं के वंश में एक राजा ने जैनधर्म छोड़कर अन्य मत की साधना करने लगा। शुभ कर्म घटने लगे तथा पृथ्वी पाप बढ़ने लगे। एक दिन दूसरे राजा ने राज्य पर चढ़ाई कर दी जिससे सब राज्य चला गया। लेकिन प्रजा ने उसे अपने यहां रख लिया। राज्य से वंचित होने के

---

१. श्री जिणदेव ऋषभ महाराज, जब वाटयौ सब महि कौ राज
अवधिपुरी दई भरथ नरेस, बाहुबलि पोदनपुर देश ॥१॥
और सुतन जो मांग्यौ ठांम, श्री प्रभु ते दयौ अभिराम।
कुंवर शक्ति जिन वाट नरेस, चलि आए जहां जैसलमेर ॥२॥
वे मंडल कौ साधे राज, सुख साता के सबें समाज।
तिनि को वंश बढयौ असराल, जैनधर्म पालैं महिपाल ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चात् किसी ने खेती करना प्रारम्भ कर दिया तथा किसी ने चाकरी-नौकरी करली। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत हो गया और वहाँ जैनधर्म का प्रचलन बन्द हो गया।

२४ वें तीर्थंकर महावीर को जब कैवल्य हुआ तो इन्द्र ने समवसरण की रचना की। प्रचंड पुण्य के धारी सुर असुरों ने समवसरण को आर्यखंड में घुमाया और एक बार भगवान महावीर का समवसरण जैसलमेर के वन में आ गया। समवसरण के प्रभाव से सब ऋतुओं में फूल खिल गये। वनमाली ने राजा के पास जाकर तीर्थंकर महावीर के समवसरण के आने का समाचार दिया। तत्काल राजा भी अत्यधिक प्रसन्नतापूर्वक महावीर की वन्दना के लिए अपने परिवार एवं नगरवासियों के साथ चल दिया।[1]

राजा ने विनयपूर्वक महावीर की वन्दना की तथा मनुष्यों के प्रकोष्ठमें जाकर बैठ गया। उसने महावीर भगवान से निवेदन किया कि " हमारे देश में एक बात प्रसिद्ध है कि "हम पर देवताओं की कृपा है तब फिर उनके हाथ से राज्य कैसे निकल गया"।[2] इसका उत्तर महावीर के प्रमुख शिष्य(गणधर) गौतम स्वामी ने दिया। उन्होंने कहा कि उनके पूर्वजों ने जैनधर्म छोड़ दिया था इसलिए यह सब कुछ हुआ। यदि फिर वे जैनधर्म स्वीकार करलें तो उनके संकट दूर हो सकते हैं। गौतम गणधर की वाणी सुनकर वहाँ उपस्थित सभी चार हजार स्त्री पुरुषों ने जैन धर्म स्वीकार कर लिया। सबने मिलकर नियम किया कि वे भविष्य में जैनधर्म का

---

१. महावीर प्रभु प्रकट्यौ ज्ञान, रची सभा सब अमरनि आन ॥७॥
सकल सुरासुर पून्य प्रचंड, ताहि लें फिरें आरज खंड
खंड सकल परस्यौं चौ फेर, चलि आये जहाँ जैसलमेर ॥८॥

२. सुनि राजा चल्यौ वंदन हेत, मान रहित पुरलोक समेत।
प्रथम नमें श्री जिनवर राइ, फुनि नर कोठें बैठे जाइ ॥१०॥
पूछत श्री प्रभु कौ बात, जो ए बात वंश विख्यात।
रहों कृपा करि सुर महाराज, छूट्यों क्यों हमतें भुवराज ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का आदर करेंगे[1]। उन्हीं व्यक्तियों से अपना व्यवहार, खान पान एवं विवाह सम्बन्ध रखा जायेगा। इनको छोड़कर जो अन्यत्र जावेंगे वे सब दोष के भागी होंगे। इस प्रकार वे सभी पुनः अपने धर्म को ग्रहण करके जैसलमेर नगर में आ गये और भगवान महावीर का समवसरण भी मगध देश के राजगृही स्थित पंच पहाड़ी पर चला गया।

उसी समय से वे सब जैसवाल कहलाने लगे। उनके मन से मिथ्यात्व दूर हो गया। नगर में मन्दिरों का निर्माण कराया गया और वे उत्साह पूर्वक जिन पूजन आदि करने लगे। चतुर्विध संघ को दान आदि दिया जाने लगा। प्रतिदिन पुराणों की स्वाध्याय होने लगी। जो लोग पहिले दरिद्रता से पीड़ित थे वे सब धन सम्पत्तिवान बन गये। सब के घरों में लक्ष्मी ने वास कर लिया। और वे सब भी अन्य कार्य छोड़कर व्यापार करने लगे।

कुछ समय पश्चात् एक श्रावक की कन्या विवाह योग्य हो गयी। वह अत्यधिक रुपवती थी इसलिय सारे नगर में उसकी चर्चा होने लगी। सभी उसके साथ विवाह करने के लिये प्रस्ताव भेजने लगे। वहां के राजा ने भी उसके साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेज दिया। राजा के प्रस्ताव से सभी को आश्चर्य हुआ। जैसवाल जैन समाज के पंचों की सभा हुई। सभा में यह निर्णय लिया गया कि वे जैनधर्मावलम्वी हैं इसलिये विवाह सम्बन्ध भी उसी जाति में होना चाहिये।[2]

पंचों का निर्णय राजा के पास भेज दिया गया। इस पर राजा ने उन सबसे जैसलमेर छोड़ने एवं राज्य की सीमा से बाहर निकल जाने का आदेश निकाल दिया। उन्होंने भी राजा का आदेश मान लिया और बाध्य होकर जैसलमेर

---

१. तब बोलें गौतम बलराइ, जैनधर्म त्यागे रे भाइ।
जो वह फेरि आदरौ धर्म, विहुर जाइ तुम तें दुषकर्म ।।१२।।१५३।।

२. सुनत सवनि के विसमय भई, कौन बुद्धि राजा यह ठई।
पंच सकल जुरि..........अब हम जैनधर्म व्रत लियौ ।।२०।।
अवर जाति सौ रह्यौ न काज, खांन पान अरु सगपन साज।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नगर को छोड़ दिया इतने बड़े समूह को देख कर अन्य ग्राम एवं नगर वाले आश्चर्य करते और प्रश्न करने लगते कि यह विशाल संघ कहां से आया है तथा किस कारण से अपना देश छोड़ कर आगे जा रहा है। वे सभी कट्टर थे लेकिन अहिंसक प्रवृत्ति के थे इसलिये शान्तिपूर्वक निम्न उत्तर दिया करते थे—

कौन देश तें आयौ संघ, कौन जाति कही कारण चंग।
उत्तर देई सर्वें गुणमाल, वंश इक्ष्वाक और जेसवाल ॥२४॥१५३॥
जेसवाल तही ते जांनि, जेसवाल कहित परवान।

जैसलमेर से चलते चलते अन्त में वे त्रिभुवनगिरि-तिहुगिरी-नगरी आये। चतुर्मास आ गया था इसलिये उन सबको वहाँ नगरी के बाहर वन में ही ठहरना पड़ा।[1]

कुछ समय पश्चात् वहाँ का राजा जब वन क्रीड़ा के लिये आया और उसने इतने बड़े संघ को देखा तो उसने अपने मंत्री को पूछने के लिये भेजा तथा वापिस आकर मंत्री ने राजा को पूरा विवरण सुना दिया। राजा ने अपने ही मंत्री से फिर कहा कि ये लोग उससे आकर क्यों नहीं मिलते। इस पर मंत्री ने फिर निवेदन किया कि इनको अपनी जाति पर बड़ा गर्व है और यही जैसलमेर से निकलने का कारण है। पूरा वृतांत जान कर राजा को भी क्रोध आगया तथा उसने अपनी मूछों पर हाथ फेरा और वापिस नगर में चला गया।[2]

राजा की यह सब क्रिया वहाँ एक बालक देख रहा था जो अपने साथियों के साथ वहीं थां। वह बुद्धिमान था इसलिये वह राजा के मनोगत भावों को पहिचान कर तत्काल अपने घर आया और राजा की बात सबको कह दी तथा कहा

---

१. चले चले आए सब जहां, हुती तिहुगिरी नगरी जहां।
ता पुर निकट हुतो वन चंग, उतर्यौ तहां जाइ वह संग।
पाये यह जहां चातुर मास, सकल संघ उहां कियौ निवास ॥२६॥१५४॥

२. सचिव कहें इनें गर्व अपार, याही तें नृप दिए निकार।
सुनि राजा कर मूछनि धर्यौ, मन में रोस संघ परिकर्यौ ॥३१॥
मुखतें कछन कर्यौ उचार, आए महिपति नगर मझार ॥३२॥१५४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कि उनको राजा से मिलना चाहिये नहीं तो मान भंग हो जावेगा जो अनिष्ट कारक होगा।[1]

बालक की बात पर विश्वास करके वे तत्काल भेंट आदि लेकर चले और जाकर राजा से भेंट की और निम्न प्रकार निवेदन करने लगे—

पहुंचे जाइ नृपति के द्वार, भेंट धरि अरु कर्‌यौ जुहार।
राजा पूछै एको हेत, जिन में प्रीत तनौ उदेत ॥३६॥
सचिव कहें ए सब सुनौं भूपाल, हम चित नहीं सर्व को साल।
नृप अनीति त्यागो निज देश, चलि आये तुव शरण नरेश ॥३७॥
करी हुती जहां जिय में चित्त, बीतें भादव वरत पुनीत।
देखें जाइ चरण प्रभू तनौं, और मनोरथ चित के भनौ ॥३८॥

सबने उसी नगर में रहने के लिये राजा से एक भूमि खंड मांग लिया जिसमें सभी जैसवाल बन्धु रह सके। उन्होंने यह भी कहा कि राजा के क्रोध के कारण ही उन्होंने उनसे निवेदन किया है। राजा को आश्चर्य हुआ कि उसके मनोगत भावों को किसने ताड लिया क्योंकि उसने किसी से भी अपने मन की बात नहीं कही थी। तब सबने मिलकर इस प्रकार निवेदन किया—

तब सब मिलि नृप सों विनए, जा दिन तुम प्रभू क्रीडा वन गए।
पूछी सकल हमारी बात, सचि वही जैसी इह तात ॥४२।
तहां एक बालक हमरो हुतौ, बुधिवांन क्रीडा संजुतौ।
तिनि सब बात कही समझाय, वेगि मिलौ तुम नृप कौ जाई ॥४३॥
क्रोध कियें हम उपरि चित्त, मैं भाषी सबसौ सब सत्ति।
या पर हम जिय मैं बहु सके, आए मिलिन महा भय थके ॥४४॥

राजा ने जब उक्त कथन सुना तो बालक को शीघ्र बुला का आदेश दिया गया। बालक जब आया तो उसकी सुन्दरता देखकर राजा बहुत प्रसन्न हो गया। राजा द्वारा मनोगत भावों की कहानी जानने पर बालक ने दोनों हाथ जोड़ कर निम्न प्रकार उत्तर दिया—

---

१. बालक सबसों भाषी बात, नृप कौ बेगि मिलौ तुम तात।
नहीं तौ मानभंग तुम होइ, सत्यवचन मांनौ सब कोइ ॥३४॥१५४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बालक कहै उभय करि जोरि, जब प्रभू निज कर मूंछ मरोरि।
क्रोध विना मूंछ नहीं हाथि, यासें हम सकें नरनाथ ।।४७।।

बालक का उत्तर सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर उसे गले लगा लिया। इसके पश्चात् राजा ने सबको सम्मान सहित विदा किया। सबको रहने के लिये नगर में स्थान दिया गया। सभी लोग सुख पूर्वक रहने लगे।

कुछ समय पश्चात् राजा ने सभी जैसवाल जैनों से कहा कि वह अपनी लड़की उस बालक को देना चाहता है। वह उसकी बरावर सेवा करती रहेगी। लेकिन राजा के प्रस्ताव का सभी ने विरोध किया और ऐसी ही बात पर जैसलमेर छोड़ने की बात का स्मरण किया। राजा ने क्रोधित होकर बालक को पकड़ कर बुला लिया तथा उसके सांथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया। इसमें किसी की कुछ नहीं चली। लेकिन उस बालक ने राजा को अनीति के मार्ग पर जाते हुए देख कर अन्न जल का त्याग कर दिया तथा कह दिया कि जब तक वह अपने माता पिता को नहीं देख लेगा तब तक उसके हृदय में शान्ति नहीं आवेगी। यही नहीं वह प्राण तज देगा। राजा उसका क्या विगाड़ लेगा। राजा ने बालक के साथ किये गये कपट तथा बालक द्वारा किये जाने वाली अपयश पर भी विचार किया। राजा ने बालक के पूरे परिवार को गढ में बुला लिया। साथ ही उसके अन्य हितैषियों को भी उसी के साथ बुला कर गढ में बसा दिया। इस प्रकार दो हजार परिवार नीचे रह गये जो जिन वचनों के अनुसार चलते रहे। उन सबने मिल कर यह निर्णय लिया कि दोनों का (गढ में रहने वालों का एवं शहर में रहने वालों का) परस्पर में मिलना कठिन है। न तो उनका कोई व्यक्ति हमारे पास आता है और न कोई हमारा व्यक्ति उनके पास जाता है।[1] उन्होंने गुरु की शिक्षाओं का

१. तिन सब मिल यह ठहराव, मेंइनिसौं अब परम अभाव।
कोऊ हमरौ उनिके नहीं जाइ, उनिकौ ह्यां कोऊ घरें न पाइ ।।५७।।१५५।।

२. तब नृप सहित सकल परिवार, आए गढ नीचें सागार
बैठे जिन मन्दिर नृप आहि, सकल पंच तहां लए बुलाए ।।६१।।
बिनती करी जोरि के हाथ, सोई करौ जो होइ एक साथ।
बगसौं चूक जु हम मैं परी, बड़ो सोइ जो चित्त न धरी ।।६२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उलंघन किया है। बालक के जाने से क्या हुआ। धर्म के बिना धन सम्पदा एवं जीवन सब व्यर्थ है। इस प्रकार बहुत सा समय व्यतीत हो गया। उस अवसर पर सब मंत्रियों ने मिल कर उसे राज्य भार सौंप दिया। जब वह राजा बन गया तो अपने अपने सभी सम्बन्धियों का का बुला लिया। तथा सबको गांव दे दिये तथा स्वयं त्रिभुवन नगर का राजा बन गया। ब्राह्मण कुल में से पुरोहित की स्थापना की गयी तथा उन्हें लिख कर दे दिया कि जिस घर में पुत्र का विवाह होगा तो वह पांच रुपया ब्राह्मण को देगा तथा इसमें कमी अथवा अधिकता नही होगी।

इसके पश्चात् सबके मन में यह बात आयी की वे सब बिछुड़ गये हैं। यदि वे सब मिल जाते हैं तो अत्यधिक आनन्द होगा। तब राजा सहित सभी परिवार वालें गढ़ से नीचे आये और जिन मन्दिर में आकर एकत्रित हो गये। सब पंचों को बुला लिया गया। सभी ने हाथ जोड़ कर यही प्रार्थना कि ऐसा काम करो जिससे दोनों एक हो जावें।। जो कुछ गल्ती हो गयी उसे भूल जाना चाहिये। अब पहिले की परम्परा को अपनाना चाहिये। सभी ने यह भी निर्णय लिया कि राजा का मान भंग नहीं करना चाहिये। सभी ने मिलकर राजासे आदेश देने की प्रार्थना की लेकिन परस्पर में विवाह करने की आज्ञा देने पर वे सब देश को ही छोड़ देंगे यह भी निवेदन किया। राजा नेभी मन में सोचा कि हठ करने से प्रसन्नता नहीं होगी। इस प्रकार समाज की बात मान कर राजा महल में चले गये।[1]

इसके पश्चात जैसवाल जैन समाज दो शाखाओं में विभक्त हो गया। जो समाज गढ़ में रहता था वह उपरोतिया कहलाने लगा तथा जो नीचे रहता था वह तिरोतिया नाम से प्रसिद्ध हो गया। उस समय ये दोनों नाम प्रसिद्ध हो गये और इसी नाम से वे परस्पर में व्यवहार करने लगे। उपरोतिया शाखा वाले जैसवाल

---

१. विनती करी राय सौं सबै, आग्या देहु अब हम तबै
व्याहु काज नहीं नरेश, हठ करो तौ तज है देश ॥६४॥
तब मन में सौचियों नरिंद, हठ के कीए नहीं आनन्द।
मानि बात नृप गढ पै गये, जैसवाल दुविधि तब भए ॥६५॥१५५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काष्ठा संघी गुरुओं की सेवा करने लगे तथा तिरोतिया जैसवाल मूलसंघी बने रहे। इस प्रकार समय व्यतीत होता गया और दोनों शाखा वाला जैसवाल जैन समाज आनन्द सहित रहने लगा।

लेकिन कुछ समय पश्चात् राजा का स्वर्गवास हो गया और उसके मरने के पश्चात् दूसरा ही राजा वहां का स्वामी बन गया। उसका नाम तिहिनपाल प्रसिद्ध था। वहां से जैसवाल चारों ओर निकल गये। इसी बीच अन्तिम केवली जम्बूस्वामी को मथुरा नगर के समीप स्थित उद्यान में कैवल्य प्राप्त हुआ भगवान के कैवल्य को देखने के लिए सभी मथुरा के उद्यान में एकत्रित हो गये। त्रिभुवन गिरि को छोड़कर सभी जैसवाल वहां आ गए। भगवान के दर्शन कर के अत्यधिक प्रसन्नता हुई। उसी स्थान से जम्बू स्वामी ने निर्वाण प्राप्त कर पंचम गति प्राप्त की। उसी स्थान पर जैसवाल रहने लगे तथा अपना २ कार्य करने लगे। अपने २ गोत्रों में विवाह आदि कार्य करने लगे। इस प्रकार कवि ने जैसवाल जाति की उत्पति कथा का अत्यधिक महत्त्वपूर्ण वर्णन किया हैं। उपरोतिया शाखा में ३६गोत्र एवं तिरोतिया शाखा में ४६गोत्र माने जाने लगे।[1]

कवि प्रशस्ति—

वचनकोश के अन्तिम ११ पद्यों में कवि ने अपना परिचय दिया है जिसका वर्णन प्रारम्भ में किया जा चुका है। कोश के अन्तिम पद्य में कवि ने लघुता प्रगट की है—

गुनी पढै जो प्रीतिसों, चूकहि लेइ सम्हारि।
लघु दरिध तुक छंद कौं, क्षमियौ चतुर विचारि।।८५।।

इस प्रकार वचन कोश की रचना करके कविवर बुलाखीचन्द ने साहित्यिक

---

१. जम्बूस्वामि भयौ निरवान, पाई पंचम गति भगवान।
जैसवाल रहे तिहि ठाम, मन मान्यो जु करइ कांम।।७३।।
कारज गाम गोत परनए, इहि विधि जेसवाल वरनए।
उपरोतिया गोत छत्तीस, तिरंतिया गनि छह चालीस।।७४।।१५६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जगत् को एक महत्त्वपूर्ण कृति भेंट की है। जिसमें सिद्धान्त, इतिहास, समाज एवं काव्य गरिमा के दर्शन होते हैं। कोश नामान्तक इस प्रकार की वहुत कम कृतियां उपलब्ध होती हैं।

छन्द एवं अलकांर—

वचनकोश का मुख्य छन्द चौपाई छन्द है लेकिन दोहरा एवं सोरठा छन्दों का भी प्रयोग किया गया है। १८वीं शताब्दि में दोहा एवं चौपई छन्द अधिकांश काव्यों का छन्द था तथा पाठक गण भी इन्हीं छन्दों के काव्यों को रुचि से पढ़ते थे।

गद्य का उपयोग—

कवि ने कोश में कुछ स्थानों पर पद्य के स्थान पर गद्य का प्रयोग किया है। व्रतों के वर्णन में गद्य का प्रयोगप्रमुख रुप से हुआ है। इसे हम व्रज भाषा का गद्य कह सकते हैं। गद्य भाग के कुछ उदाहरण निम्न प्रकार है—

(१) जिनमुखावलोकन व्रत आसोज सुदी ४, भादवा वदि १ तें प्रारम्भ वर्ष १ ता यो करै ताकी रीति श्री परमेश्वर जी की प्रतिमा देख्यां विना पारणों न करे जो उदय वसि काहू दिन पहिले और कछू दिष्ट परें ता दिन उपवास करै ॥

इति जिनावलोकन मुख व्रत। पृष्ठ संख्या ३६।

(२) यह प्रकार जव आत्मा वाहिर चिह्ननि करि और अंतरंग चिह्ननि करि जथा जात रुप का धारतु हो हैं। तातें कुटुम्ब लोक पूछन आदि क्रिया तें ले करि आगें मुनि पद के भंग के कारण पर द्रव्यनि के संवंध है तातें पर के सम्बन्ध निषेध हैं इह कथन करै है।

पृष्ठ संख्या ४४।

अन्य ग्रन्थों का उद्धरण—

कवि ने व्रत पालन के प्रसंग में नाटक समयसार, प्रवचनसार के अतिरिक्त जैनेतर ग्रन्थों से भी श्लोक उद्धत किये हैं। इससे कवि की शिक्षा, दीक्षा एवं ज्ञान गम्भीरता के बारे में प्रकाश पड़ता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समीक्षात्मक अध्ययन—

बुलाखीचन्द महाकवि वनारसीदास के उत्तरकालीन कवि थे। आगरा से उनका विशेष सम्बन्ध थ। लेकिन काव्य के अध्ययन के पश्चात् ऐसे लगने लगता है कि कवि पर वनारसीदास का कोई प्रभाव नहीं रहा। वचनकोश संग्रह ग्रंथ है। इसमें पुराण, इतिहास, कथा तथा सिद्धान्तों का अच्छा वर्णन हुआ है । कवि सीधे सादे शब्दों में अपनी बात पाठको तक पहुंचाना चाहता है इसमें उसे वहुतकुछ सफलता भी मिली है। लेकिन यह भी सही है कि वर्तमान शताब्दि में भी विद्वानों का ध्यान उसकी ओर नहीं गया। यद्यपि वचनकोश की चार पाण्डुलिपियों की खोज की जा चुकी है इसलिए यह तो नहीं कहा जा सकता कि ३०० वर्षों में किसी ने उसे मान्यता नहीं दी आखिर चार पाण्डुलिपियां भी श्रावकों के ही आग्रह से लिखी गयी होंगी फिर भी कवि समाज द्वारा उपेक्षित ही बना रहा इस कथन में पर्याप्त सत्यता है।

कवि स्वयं मनोवैज्ञानिक था। वह पाठकों की रुचि एवं अरुचि को समझता था इसलिये उसने अपने कोश में कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन बडी ही चतुरता से प्रस्तुत किया है। उसने वचनकोश का प्रारम्भ २४ तीर्थंकरों के स्तवन से किया है यह स्तवन एक दो पद्यों का नहीं है किन्तु प्रत्येक तीर्थंकर का उसने संक्षिप्त एवं मधुर परिचय दिया है। जो पौराणिक के साथ २ कहीं २ ऐतिहासिक बन गया है। प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पांचों कल्याणकों के वर्णन के अंतर्गत उसने चारों ही अनुयोगों का वर्णन कर डाला है जिसको पढ़ने से पाठक ऊबता नहीं है किन्तु रुचि पूर्वक आगे बढता चला जाता है। कभी वह अपने विषय को गद्य में प्रस्तुत करता है तो कभी पद्य में जिससे पाठक रुचिपूर्वक ग्रंथ को पढ़ता चला जावे। वास्तव में बुलाखीचन्द अपने समय का अच्छा कवि था।

वचनकोश में जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास, उसी के अन्तर्गत भगवान महावीर का समवरण सहित जैसलमेर आना, जम्बू स्वामी का मथुरा के उद्यान में कैवल्य एवं निर्वाण होना, काष्ठासंघ की उत्पत्ति, अग्रवाल जाति की उत्पत्ति के साथ अग्रवाल जैन जाति का इतिहास आदि कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का भी कवि ने वर्णन किया है। जिससे ज्ञात होता है कि स्वयं बुलाखी-चन्द इतिहास प्रेमी था। वह जैसवाल जैन था इसलिये जैसवाल जाति का जो इतिहास लिखा है वह उस समय की मान्यता के आधार पर लिखा गया है। महावीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

के समवसरण का जैसलमेर में आने का उल्लेख करने वाला संभवतः बुलाखीचन्द प्रथम विद्वान है। उसने लिखा है कि महावीर जैसलमेर आये और जैसवालों को दिगम्बर जैन धर्म में दीक्षित करने के पश्चात् पुनः राजगृही चले गये। मार्ग में कहीं विहार नहीं किया। इस घटना की सत्यता को सिद्ध करने वाले दूसरे प्रमाण नहीं मिलते और न किसी दूसरे विद्वान ने भगवान महावीर के समवसरण सहित जैसलमेर आने का उल्लेख किया है फिर भी कवि के जो विवरण प्रस्तुत किया है उस पर गम्भीरता पूर्वक विचार की आवश्यकता है। इतना तो इस वर्णन में सत्य प्रतीत होता है कि जैसवाल जैन जाति की उत्पत्ति जैसलमेर से हुई थी।

अन्तिम केवली जम्बू स्वामी का कैवल्य एवं निर्वाण दोनों का मथुरा नगर के उद्यान में होना तो ऐतिहासिक सत्य है। यद्यपि कुछ विद्वान जम्बूस्वामी के निर्वाण स्थल में मतभेद रखते हैं लेकिन निर्वाणकांड गाथा में अतिशय क्षेत्रों के सम्बन्ध में जो महत्म्य लिखा है उनमें मथुरा से ही जम्बूस्वामी का निर्वाण होना माना है। संवत् १७३७ में रचित प्रस्तुत वचनकोश में इसी मत का समर्थन किया है यही नहीं मथुरा कंकाली टीले से जो जैन पुरातत्व की विपुल सामग्री उपलब्ध हुई है वह भी इसी बात का द्योत्तक है कि मथुरा कभी जैन संस्कृति का महान् केन्द्र था। जम्बूस्वामी के पूर्व ही यह क्षेत्र जैन संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। अहिंसक वातावरण एवं श्रमण धर्म का केन्द्र होने के कारण जम्बूस्वामी भी स्वयं राजगृही से विहार कर मथुरा पधारे थे और यहीं उन्हें कैवल्य हुआ था। यही नहीं उस समय विहार से राजस्थान तक का यह मार्ग जैन साधुओं के लिए सुरक्षित बन चुका था इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान महावीर का धर्म उस समय तक यहां लोकप्रिय बन चुका था और उनके अनुयायी पर्याप्त संख्या में मिलने लगे थे।

कोश में जैसवाल जैन जाति के समान ही अग्रवाल जैन जाति की उत्पत्ति का इतिहास भी दिया हुआ है। लोहाचार्य ने अग्रोहा के निवासियों को जैनधर्म में दीक्षित किया जो वाद में अग्रवाल जैन कहलाने लगे। कवि ने इसे सवंत् ७६० (सन् ७०३) की घटना माना है। अग्रवाल जैन जाति का दिगम्बर जैन जातियों में अपना विशेष स्थान है। इसलिए उसका इतिहास जानना आवश्यक है। अग्रवाल जैन जाति के इतिहास के साथ ही काष्ठा संघ की उत्पत्ति का जो रोचक इतिहास प्रस्तुत किया है वह भी कवि की ऐतिहासिक मनोवृति का ही परिणाम है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समाज में काष्ठ की मूर्त्तियां बनाने का एक समय बहुत जोर हो गया था। काष्ठासंघी भट्टारक इस दिशा में बहुत प्रयत्नशील रहते थे लेकिन भट्टारक उमास्वामी को काष्ठ प्रतिमा का निर्माण अच्छा नहीं लगा इसलिये उन्होंने इसका विरोध किया और लोहाचार्य से जब भेंट हुई तब उन्होंने निम्न शब्दों में अपना मत व्यक्त किया—

वही सीख हमरें करि धरो, काठ तनी प्रतिमा मति करो ।।
अग्नि जरावे धन जिह दहें, अंग भंग नहिं जिन गुन लहें ।।
जल डारें चंचल तसु जांन, लेप किये सदोष यह जानि ।।३५।।

उमास्वामी की बात तो मान ली गयी लेकिन काष्ठा संघ ने मूल संघ से से अपना पृथक अस्तित्व बना लिया । इस प्रकार कवि ने काष्ठासंघ की उत्पत्ति का ऐतिहासिक वर्णन दिया है लेकिन काष्ठासंघ के भट्टारक आचार्य सोमकीर्त्ति ने ने जो काष्ठासंघ की पट्टावली दी है उससे इसका मेल नहीं खाता । सोमकीर्ति ने तो प्रथम आचार्य का नाम अर्हंदवल्लभसूरि दिया है जब बुलाखीचन्द ने लोहाचार्य को काष्ठासंघ का संस्थापक माना है।[1] लेकिन वचनकोश में मूलसंघ एवं काष्ठासंघ को एक चने की दो दाल के समान माना है।[2]

वचन कोश में भारत में यवनोत्पत्ति का वर्णन किया है उसके अनुसार वे सब हिंसा में विश्वास करने वाले तथा शोच एवं शील के विपरीत आचरण करने वाले थे।[3]

मंत्र शास्त्र

बुलाखीचन्द ने कितने ही मंत्रों की साधना का भी अच्छा वर्णन दिया है। कवि के युग में अथवा आगरा, आदि स्थानों में मंत्रों पर अधिक विश्वास था । स्वयं कवि कभी मंत्र शास्त्र अच्छे ज्ञाता रहे होंगे ऐसा भी आभास होता है नहीं तो अधिकांश काव्यों में मंत्रों का उल्लेख तक नहीं होता । इसके अतिरिक्त सभी मंत्र विद्या, आदि के प्रदाता एवं कल्याणकारक मन्त्र हैं ।

देखिये—

आचार्य सोमकिर्त्ति एवं ब्रह्म यशोधर—डा० कासलीवाल—पृष्ठ संख्या २४ ।
२. एक चना कीज्ये द्वै दारि, त्यौ ए दोऊ संघ विचार ।
३. हिंसा तनो तहां अधिकार, सौच शील नहीं दीखें सार ।।७।।१४३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मारण ताडन आदि क्रियाओं से कवि दूर रहा है। अधिकांश मंत्र छोटे हैं एवं नमस्कार मंत्र पर आधारित है। कवि ने मन्त्रों का पद्यों में महात्म्य लिखकर उनके महत्व में वृद्धि की है तथा उन्हें लोकप्रियता प्रदान की है। कवि ने मंत्रों का वर्णन पदस्थ ध्यान के अन्तर्गत किया है तथा मंत्रों को मन निरोध का उपाय बताया है।

अष्ट सिद्धि नौ निधि सदन, मन निरोध कोगेह।
वरन्यो ध्यान पदस्थ यह, घटि चित्त परण नेह ॥९८॥८२॥

इस प्रकार बुलाखीचन्द द्वारा निबद्ध बचनकोश हिन्दी की एक महत्त्वपूर्ण कृति है जो अभी तक साहित्यिक क्षेत्र में पूर्ण अज्ञात थी। राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों में इसकी निम्न पाण्डुलिपियां सुरक्षित हैं—

(१) क प्रति—पत्र संख्या १५७। लेखनकाल संवत् १८५३ चैत्र वदि ११ भृगुवार। प्राप्ति स्थान—शास्त्र भण्डार दि० जैन तेरहपंथ मन्दिर (बडा) जयपुर ग्रन्थ समाप्ति के पश्चात् निम्न पंक्ति और लिखी हुई है—"ग्रन्थ प्रतापगढ तेरापंथी आमनाय रो"। वेष्टन संख्या।१६७०।

(२) ख प्रति—पत्र संख्या २५२। आ० १५½×४½ इञ्च। लेखनकाल ×। प्राप्ति स्थान—दि० जैन मन्दिर श्री महावीर स्वामी बून्दी (राज०) वेष्टन संख्या १

(३) ग प्रति—पत्र संख्या २८२। आ० ९+४½ इञ्च। लेखनकाल—संवत् १८५६। प्राप्ति स्थान—दि० जैन मन्दिर कोटडियों का डूंगरपुर।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वचन-कोश

(बुलाखीचन्द कृत)

अथ वचन कोश लिख्यते

दूहा

मंगलाचरण

समयसार के पय नमूं, एकदेव गुरुच्यारि ।
परमेष्टि तिनिस्यौं कहें, पंच ध्यान गुणधार ।।१।।
वरण गंध काया नहीं, अविनाशी अविकार ।
गुरु लघु गुण विनु देव यह, नमों सिद्ध अवतार ।।२।।
श्री जिनराज अनंतगुण, जगत परम गुरु एव ।
अध ऊरध मधिलोक के, इन्द्र करें शत सेव ।।३।।
पंचाचारि तपधनि, सहत परीसह घोर ।
श्री आचार्य धर्मगुरु, नमो नमो करिजोर ।।४।।
ध्यायक जिनवानी विमल, जगि अध्यायक नाम ।
ज्ञान दिवाकर परम गुरु, ताके पद परणाम ।।५।।
बीस आठ जे मूलगुण, सावें मन वच काय ।
सर्व साध हें कर्म ठाणु, वंदों शीस नवाय ।।६।।

१. आदिनाथ स्तवन

चौपई

पंच परम पद मुक्ति महेश । ज्ञायक शुभग परम योगेश ।।
तासु चरण नमि अशुर्वहि वमौं । जिन चौवीस तवें पद नमुं ।।७।।
बंदों प्रथम श्री आदि जिनंद । नाभिराय मरुदेव्यानंद ।।
धनुष पांचसे ऊंची काय । जन्म कल्याणक बिनता थाय ।।८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लांछन वृषभ तणो सोभंत । कंचन वरण शरीर दीपंत ।।
वंश इक्ष्वाक आव परिमाण । लख चोरासी पूरब जान ।।९।।
ग्यारह भव तें ज्ञान उद्योत । तब तें वंध्यो उत्तम गोत
एक वरष पीछें आहार । प्रासुक इक्षुदंड रस सार ।।१०।।
नृप श्रेयांस दियो प्रभु दान । हस्तनागपुर जाकी थान ।।
वट तरु लोंच कियो है सार । गणधर हे असी अरु चार ।।११।।
समोसरण धनपति ने कर्‌यो । बारह योजन को विस्तर्‌यो ।।
तप करि उपज्यो केवल ज्ञान । राजरिद्धि मुमतें अवदात ।।१२।।

दोहरा

पद्मासन आरुढ़ ह्वै, जिनवर धर्यो जु ध्यान ।
गिरि कइलास आकाश वत, तहां भयो निर्वाण ।।१३।।

चौपई

बदि अषाढ़ की दुतीया जोई । प्रभु को गर्भ कल्याणक होई ।।
चैत बदि नौमी के दिनां । तप और जनम महोछव घनां ।।१४।।
फागुण बदि ग्यारसि तिथि जान । श्री जिनवर भयो केवलज्ञान ।।
ताको कवि कहा बरननि करैं । रसना एक कितकर उच्चरैं ।।१५।।
कृष्ण चतुर्दशी माघ जु मास । भयो निर्वाण मुक्तिपद वास ।।
चिदानंद परमातम भए । तीनि लोक जाके पद नए ।।१६।।

दोहरा

नर नारी जे भक्ति जुत, तिन दिन करे उपवास ।।
फिरि पावैं भव मनुष्य को, मुक्ति होइ भव नास ।।१७।।

इति वृषभदेव वर्णनं

२. अजितनाथ स्तवन

सागर लाख करोरि पचास । बीते अजितनाथ परगास ।।
जित रिपु राजा विजया मात । गज लांछण हाटक सम गात ।।१।।
पुरी अजोध्या जन्म कल्याण । तीनि भवांतर तें भयो ज्ञान ।।
धनक चारिसे साढ़े काय । लाख बहत्तरि पूरब आय ।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वंश इषाक नवेगिनि धार । तीन दिवस अंतर आहार ।।
धेनु षीर पीयौ मुनि देह । ब्रह्मदत्त नृप विनिता गेह ।।३।।
जंबूवृक्ष तलें तपु लियौ रत्नत्रय व्रत निर्म्मल कियौ ।।
समोसरण श्रीजिनवर तनें । जौजन साढे ग्यारह भणों ।।४।।
चरननि सकों अल्प मोहि ज्ञान । सांझ समें भयौ केवलग्यांन ।।
बहुविधि राज विभूति विलास । ताहि त्यागि पाई सुख रासि ।।५।।

सोरठा

ठाढे जोगाभ्यास, कियो सिद्ध सम्मेद पर ।
पहुंचे अविचल वास, सकल करम वन दहन के ।।६।।

दोहरा

जेष्ट वदि मावस गरभ, जनम माघ सुदि नौमि ।
चैत्र सुदि पांचै जु तप, ध्यांन अयनि कर्म होमि ।।७।।
माघ महीना शुकल पक्ष, दशमी तिथि को ज्ञान ।
पूस उज्यारि प्रतिपदा, ता दिन प्रभु निर्वाण ।।८।।

इति अजितनाथ वर्णनं

३. संभवनाथ स्तवन

चौपई

तीस करोरि लाष निधिवार । बीतें प्रभु संभव अवतार ।।
पिता जितारथ सेन्या माइ । सावित्री नगरी के राइ ।।१।।
तुरंग पवन गति ध्वज आकार । वर्ण शरीर हेम उनिहार ।।
साढि लाष पूरव तिथि जांन । धनुष चारिसे काय प्रमाण ।।२।।
कुल इक्षाक में पूरणचंद । पंचोत्तरसो गणधर वृंद
तीनि भवांतर तै सुधि भई । भावरि दिवस दोइ में लई ।।३।।
सूरदत्त सावित्री धनी । ता घर गोपय की विधि बनी ।।
तरवर शुभग शालि जिहि नाम । तातर तपु लीयो अभिरांम ।।४।।
अप्राह्णक केवल रिद्धि बनी । ठाडे जोग मुक्ति के धनी ।।
राजरिद्ध त्यागें लहयो पार । भयों सम्मेद गिरि जय जयकार ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहरा

समवसरण जिनवर तणों, रच्यो देवतनि आइ ।
ग्यारह जोजन को ठयो, अघभंजन सुषदाइ ।।६।।
फागुण सुदि नौमी गरभ, जनम पूर्णिमा पूस ।
छठि उच्यारि चैत की, लीयौ तप प्रभु तूस ।।७।।

सोरठा

कातिग पूर्ण्यो ज्ञान, केवलरिद्धि जिनेश कौं ।
काती वदि निर्वाण, हुती चौथि ता दिन प्रगट ।।८।।

इति संभवनाथ वर्णनं

४. अभिनन्दन नाथ स्तवन

सोरठा

उदधकोरि विश लाख, वीतें जग उद्दित भये ।
श्रुत सिद्धांत है साषि, अभिनंदन जिन भान वत ।।१।।

चौपई

समर राय ग्रह तिमिर नसाइ । प्राची दिसा सिधारथ माइ ।।
अवधिपुरी कपि लछण जांनि । कुल इक्ष्वाक महा बलवांन ।।२।।
सुवर्णवत देही की कांति । षोडश और शत गणधर पांति ।।
पूरब लाष पचास अरोग । काय अहूठ सत धनक मनोग ।।३।।
इन्द्रदत्त विनिता पुर राइ । दूजें दिन गोक्षीर घटाइ ।।
लालरि वृक्ष सघन सोभंत । ता तर जोग धर्‌यो अरहंत ।।४।।
तीन जनम आगें सुधिवांन । सांझ समें भयो केवलज्ञान ।।
छोडत राज न कीनों मोह । दहा एहैं राग अरु दोह ।।५।।
समोसरण जोजन दश अर्द्ध । रच्यो देव वनि सहित समर्द्ध ।।
ठाढे जोग मोक्ष कौं गए । गिरि सम्मेद तीर्थंकर भए ।।६।।

दोहा

बैशाख उजेरी छठि प्रकट, तप अरु गर्भ कल्याण ।
माघ उजेरी द्वादशी, ता दिन जनम अरु ज्ञान ।। ७ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूस शुदि चौदशि विमल, शुकल ध्यांन धरि ईस।
भयौ कल्याणक पंचमौ, सिद्ध भए जगदीश ॥ ८ ॥

इति अभिनन्दन वर्णनं

५. सुमतिनाथ स्तवन

दोहरा

वारधि लाख करोर नो, तासु घटे परंजत।
सुमतिनाथ आवन भयो, प्रतिबोधन जिन संत ॥ १ ॥

चौपई

मेघराय कौशल्या धनी। श्रीजिन माइ मंगला गणी ॥
चकवाकार ध्वजा फरहरैं। राजनीति त्रिभुवन की धरैं ॥ २ ॥
निर्मलकुल इक्षाक विचार। तीनि जनम थैं करी सम्हारि ॥
वर्ण देह सौवर्ण भणंत। भोजन दोइ दिवस परजंत ॥ ३ ॥
पद्मदत्त विजयापुर ईश। घट्यौ क्षीर आहार जगदीश ॥
प्रियंगु वृक्ष उत्तम अवलोय। प्रभु को तहां तपोधन होइ ॥ ४ ॥
आव वधी पूरब लख चाल। सत्तोत्तर शत गणधर जाल ॥
धनक तीन सै जिन बलबीर। दिन के अस्त ज्ञान की भीर ॥ ५ ॥
समोसरण जोजन दश जानि। द्वादश कोठे मध्य वषांन ॥
कायोत्सर्ग जोग धरि ध्यान। भयौ सम्मेदगिरि पर निर्वाण ॥ ६ ॥

दोहरा

द्वंज अरु नौमी श्रावण दिवस, शुकल पक्ष वैशाष।
गर्भ जन्म प्रभु तप कह्यौ, श्रीजिन आगम भाष ॥ ७ ॥
चैत्र शुदी एकादशी, ता दिन तप निर्वान।
भवि चैत बदि एकादशी, उपज्यौ केवल ज्ञान ॥ ८ ॥

इति सुमतिनाथ वर्णनं

६. पद्मप्रभु स्तवन

दोहरा

नव करोरि सागर गए, उपजे पद्म जिनंद :
भविजन सब सुकृत भए, कटे कर्म के फंद ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौपई

धुर राजा कौशंवी तनों। जिन जननी सुसीमां भणौं ॥
कमलाक्षत लांछरण ध्वज चंग। गिरिहोत्तर सो गणधर संग ॥ २ ॥
तीन लाष पूरब की ग्राव। ग्ररुण वरण दीसे तनु भाव ॥
धनक ग्रठाईसो परवांन। काय तुरंगता शुभग वषांन ॥ ३ ॥
तीनि जन्म थैं पहिलैं जाचि। इक्षाक वंश उपजैं प्रभु सांच ॥
सोमदत्त मंगलपुर राय। दूजैं दिन गोक्षीर घटाइ ॥ ४ ॥
वृक्ष प्रियंगुतरु तपव्रत लीयो। कर्मनास कौ उदिम ठयौ ॥
गोधूलक को समयो जानि। केवलरिद्धि भई भगवान ॥ ५ ॥
समोसरण जोजन नव ग्राध। ग्रमरनि रच्यौ भक्ति हित साधि ॥
गिरिसम्मेद पंचम कल्याण। ठाढे जोगजु कृपानिधान ॥ ६ ॥

दोहा

माघ बदि छठि गर्भ जिन, तप फागुण बदि चौथि।
कातिग बदि तेरसि सुनौं, जनम ग्यान गुण गोथि ॥ ७ ॥
पूरणमासी चैत्र शुदि, कर्म सकल परिजारि।
मुक्तिस्थल ग्रविचल लह्यौ, जिन स्वामी भवतारि ॥ ८ ॥

इति पद्मप्रभु वर्णनं

७. सुपार्श्वनाथ स्तवन

दोहा

नौ करोरि सागर गए, प्रभु सुपार्श्व ग्रवतारि।
जो जन ध्यांवै भाव धरि, ते पावैं भव पारि ॥ १ ॥

चौपई

सुप्रतिष्ठित नृप वानारसी। मात महिसेनां पुत ससी ॥
लाछ्रण स्वस्तिक कै ग्राकार। नील वर्ण तन झलक ग्रपार ॥ २ ॥
बीस लाख पूरब की ग्राव। द्वै सै धनुक काय को भाव ॥
गणधर नवैं पांच सुग्यान। इक्ष्वाक बंश मैं पर परधांन ॥ ३ ॥
तीन जनम थैं स्वपर विचार। जुग बासर गोक्षीर ग्राहार ॥
महेन्द्रदत्त राजा दियो दान। पाटनपुर नगरी शुभथान ॥ ४ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृक्ष अनूप अति श्रीखंड। तहां तपु ले दियौ इन्द्रिन दंड॥
दिन समस्त गत समयौ भयौ। राजनीति तजि केवल ठयो॥ ५॥
समोसरण तब देवनि रच्यौ। नो जोजन कौ रत्ननि खच्यौ॥
गिरिसम्मेद चढि शिवपुर गए। ठाढे जोग जिनेश्वर लये॥ ६॥

दोहा

भादौं सुदि छठि गर्भ दिन, जनम जेठ शुदि बार।
तप फागुण बदि सप्तमी, कह्यौ ग्रंथ निरधार॥ ७॥
ज्ञान जेठ बदि द्वैज कौ, समासरण मंडान।
फागुण बदि षष्ठी कह्यौ, श्री जिनवर निर्वाण॥ ८॥

इति सुपार्श्वजिन वर्णनं

८. चन्द्रप्रभ स्तवन

सोरठा

सागर नौसै कोटि, जब संपूरण ह्वै गए।
शशिवत आभा कोटि, चन्द्रप्रभ जिन जनमियौ॥ १॥

चौपई

चन्द्रपुरी राजा महासेनि। लक्षमा राणी ता ग्रह चैंनि॥
चन्द्र चिह्न दुतीया की भांति। हिमकर बरत देही की शांति॥ २॥
दश लाख पूरब आव गनंत। धनक देढसैं काय दिपन्त॥
तिमिर नसायौ कुल इक्ष्वाक। सात भवांतरस्यौं वैराग॥ ३॥
नवै तीनि संग गणधार। दूजै दिन लियौ दूध आहार॥
पद्मखंड नगरी को ईश। चन्द्रदत्त दियौ दान अधीश॥ ४॥
तरवर नाग नाम सोभंत। तालर तप लियौ अरहंत॥
तीन लोक कौ साध्यौ राज। कियौ निज आतम काज॥ ५॥
दिन की आदि पंचमौंग्यांन। गिरिसमेद थांनक निर्वाण॥
समोसरण जोजन वसु आध। कायोत्सर्ग जोग प्रभु साध॥ ६॥

दोहा

गर्भ चैत्र बदि पंचमी, जनम पोष बदि ग्यारसि।
फागुण बदि तिथि सप्तमी, तप निर्वाण हुलास॥ ७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूस वदी एकादशी, केवल ज्ञान उद्योत।
सुरगी सब मिलि पद नमैं, विमल आतमा ज्योति ॥ ८ ॥

इतिचन्द्रप्रभ वर्णनं

९. पुष्पदन्त स्तवन

सोरठा

सलितापति सब कोरि, अनुकर्म्मे जब खिरि गए।
भए प्रतापी जोर, पुष्पदन्त पुहमी प्रकट ॥ १ ॥

चौपई

काकंदी जनम जिनराय। सुग्रीव पिता श्री रामा माइ ॥
लांछण मगर करैं पदसेव। चन्द्राकृत निर्म्मल वपु देव ॥ २ ॥
द्वै लख पूरब वरणी आव। धनक एक सो पुदगल भाव ॥
बड़ो वंश मुमि पर इक्षाक। तीन भवांतरितैं प्रभु ताकि ॥ ३ ॥
सूरमित्र चित्र हर राइ। प्रभुकौं गोरस चर्गी आहार ॥
द्वै दिन बीतैं आयौ आहार। तप लीयौ जहाँ मल्लिका भार ॥ ४ ॥
षड असी गणधर मंडली। झेलें दिव्व धुनि उछली ॥
नृप पदवी को साधि विचारि। केवल प्रगट्यौ सांझी बार ॥ ५ ॥
समोसरण वसु जोजन जानि। रत्नजटित अरु कंचन खांनि ॥
पुरुषाकार जोग अभ्यास। गिरि सम्मेदपर मोक्ष अवास ॥ ६ ॥

दोहा

फागुण बदि नौमी गरभ, जनम पूस सुदि एक।
तप भादौं सुदी अष्टमी, इह जिन वचन विवेक ॥ ७ ॥
आघहन सुदि परिवा दिवस, भई ज्ञान की रिद्धि।
कातिग सुदि तिथि द्वैज कौं, भए जिनेश्वर सिद्ध ॥ ८ ॥

इति पुष्पदन्त वर्णनं

१०. शीतलनाथ स्तवन

दोहा

नो करोरि सागर गए, मिटे दुरति आताप।
शीतल पदवी को धरैं, शीतलनाथ प्रताप ॥ १ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौपई

भागलपुर दृढ़रथ नृप तात। नंदाराणी श्रीजिनमात।
लांछण श्रीवृष्य हिमवंत देह। कुल इक्षाक सों कीनो नेह ।। २ ।।
आव एक लाख पूरब की गणी। नवै धनुक काय प्रभु तनी।
इक्कासी गणधर गुण कहे। तीनि जनम थैं प्रभु शुधि लहे ।। ३ ।।
बीतैं जब निस वासर होइ। कर्यो आहार दूध है सोइ।।
पुन्न वसु राजा सिवपुरी ग्राम। दान अधीश भयो अभिरांम ।। ४ ।।
वृष्य पलास शुभता शुचि देषि। तातर धर्यौ दिगम्बर भेष।।
राज करत समकित उद्दोत। शशि रिपु अंत ज्ञान की ज्योति ।। ५ ।।
समोसरण देवनि करि बन्यौ। जोजन सप्त अर्द्ध को गन्यौ।
योग धर्यो प्रभु कायोत्सर्ग। गिरि सम्मेदि तें गए शिवमग्ग ।। ६ ।।

दोहा

चैत वदी तिथि अष्टमी, गर्भ महोत्सव माघ।
माघ वदि तिथि द्वादशी, जनम ज्ञान कल्याण ।। ७ ।।
क्वार शुदि की अष्टमी, धर्यौ दिगम्बर भेष।
पूस वदि चौदशि दिनां, मुक्ति शिला पर देषि ।। ८ ।।
एक लाष घट लाष शत, सागर अंतर जानि।
या मैं कछुक घटाइयैं तब पूरो परमान ।। ९ ।।

इति शीतलनाथ वर्णनं

११. श्रेयान्सनाथ स्तवन

चौपई

लष निनाँनवें छबीस हजार। इतने वरष दीजिये डारि ।।
इतनो काल उल्लिघि जब भयो। तब श्रेयांस को आवन भयो ।।१।।
सिंघपुरी राजा विमल। विमला राणी बहु गुण अमल ।।
लांछन गैंडो कंचन वरण। गणधर सत्तोत्तर सो सरण ।।२।।
लाष पूरब की ………। आव श्री जिनवर की जानि ।।
असी धनुक की ऊँची काइ। तीनि जनमथैं धरम सुहाइ ।।३।।
इक्षाक वंश कुल दीपक भयो। पो दूध द्वे दिन परि लयो ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरिठपुरी नर नाह नरिंब । ता घर लयो आहार जिनंद ।।४।।
तेंदू वृक्ष सघन बडभाग । तप धरि तहा भए वैराग ।।
अरुण उदय बेला निर्मली । तहां भए प्रभुजी केवली ।।५।।
छिणक छंडि बसुधा कौं राज । गिरि सम्मेद पर मोक्ष समाज ।।
समोसरण जोजन गणि सात । ठाढे जोग कियो कर्मघात ।।६।।

दोहा

षष्टी स्याम जु जेठ की, भए गर्भ कल्याण ।
फागुण बदि एकादशी, जनम ज्ञान गुण षांनि ।।७।।
पून्यौ सावन सुदि तनी, तज्यो गेह जगदीस ।
माघ बदि मावस दिना, मुक्ति रमनि के ईश ।।८।।
इति श्रेयांस वर्णनं

१२. वासुपूज्य स्तवन

दोहा

एक पौन सागर गएं, चंपापुरी मझारि ।
वासुपूज्य प्रभु औतरे, त्रिभुवन तारण हार ।।१।।

चौपई

वसुपूज्य है तात को नाम । जयदेवी माता अभिराम ।।
महिष जु लांछण चरननि दिये । सत्तरि धनक काय जिनमये ।।२।।
बरष बहत्तरि लाष प्रमान । आव श्री जिनवर की जानि ।।
अरुन वरुण दीसैं तनुसार । इक्षाक वंश छाछठि गणधार ।।३।।
तीनि भवांतरि तें प्रभु जानि । धर्‌यो कुमार काल वैराग ।।
सुंदर नृपति सिद्धारथ पुरी । ताके घर कीनि प्रभु चरी ।।४।।
दूजै दीनां गो क्षीर आहार । पाटलतर भए मगन शरीर ।।
निस प्रवेश को समयो जानि । प्रभुजू को भयो केवलज्ञान ।।५।।
समोसरण को सुनि विस्तार । साढे छह जोजन को सार ।।
आसन पद्म धर्‌यो शुभ ध्यांन । चंपापुर तैं मुक्ति मिलान ।।६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

आषाढ वदि छठि के दिन, गर्भ धरयो जिनमान।
फागुण वदि चौदशि गनौ, जनम और अवदात ॥७॥
भादव चौदशि ऊजरि, लोंच लियो जिनराज।
माघ उजेरि द्वैज कौं, पंचमगति ठहराइ ॥८॥
इति वासुपूज्य वर्णनं

१३. विमलनाथ स्तवन

सोरठा

सागर नौ तीस परजंत, कंपिलापुर नयरीं जनम।
विमलनाथ अरहंत, स्यामा राणी जाइयो ॥१॥

चौपई

पिता जिनेश जानि कृत वर्म्म। शूवर लांछण देषत सम्मं ॥
साठि धनक दीर्घंता जानि। उतनें लाष वरषति तिथि आनि ॥२॥
कनकवर्ण अरु इक्ष्वाकुल। पोषतीन जनमथैं भयो संतोल ॥
राजरिद्धि साधी सब देव। छप्पन गणधर करत जु सेव ॥३॥
जंबू वृष्य सघन सुविसाल। लीनो तपु तहां दीनदयाल ॥
दूजैं दूधु लीयो गोक्षीर। नंदराव दाता वरवीर ॥४॥
महापुरुष पाटन नृप जांनि। सांझ समैं भयो केवलज्ञान ॥
राजनीति सब तजी निदान। समोसरण छह जोजन जानि ॥५॥
उभे जोग शिषर सम्मेद। जानैं मोक्षपुरी के भेद ॥
जेठ वदि दशमी के दिना। माता गर्भ धर्यो जिन तना ॥६॥
इति विमलनाथ वर्णनं

१४. अनन्तनाथ स्तवन

दोहरा

सागर नौ पूर भए, ता पीछैं जु अनंतु।
जिनतैं जग उद्दित भयौ, चौदशि व्रत सु महंतु ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौपई

अवधपुरी राजा श्रीसेन । सुरजा देवी माता जैन ।।
सेही लाछण है पद चंग । धनुक पचास शरीर उतंग ।।१।।
आव धरी लाष तीस बरष । कुल इक्ष्वाक जनमते हरष ।।
कनकवर्ण चौवन गणधार । तीन जन्म तैं भई सम्हारि ।।२।।
राज विभूति तजैं तप धर्यो । लोंच विरष पींपर तरु कियो ।।
विशाषभूति धर्म्मपुर राय । दूध तीन दिन आहार धटाइ ।।३।।
केवलज्ञान सांझ अनुसर्यो । समोसरण धनपति विस्तर्यो ।।
पंचअर्द्ध जोजन के मान । अंतरीक्ष गति ताकी जान ।।४।।
उभैं जोग महावल वीर । गिरिसम्मेद तैं शिवपद धीर ।।
कार्त्तिक बदि परिवा के दिनां । माता गर्भ धरयो प्रभु तनां ।।५।।

दोहरा

जेठ स्याम चौदशि जनम, अरु बारमि कौं ग्यांन ।
चैत्र बदि मावस विमल, ता दिन तप निर्वान ।।६।।
इत्यनन्त वर्णनं

१५. धर्मनाथ स्तवन

सोरठा

च्यारि उदधि ता मांहि, पौन पल्लि घट जानियें ।
जब इतनें बीताहि, धर्मनाथ जिन अवतरे ।।१।।

चौपई

रतनपुरी श्री भानु नरंद । राणी सुव्रतति जिनचंद ।।
वरष लाष दश हीरा रेष । कुरुवंशी कंचन सम देष ।।२।।
पैंतालीस धनुक वपुसार । द्वै चालीस संग गणधार ।।
भव तीसरे कर्म छय भए । राजत्यागि तपकौ परणये ।।३।।
दधि परनी को रूप अनूप । तातर प्रभु जु नगन सरूप ।।
गह्यो क्षीर दूजै दिन जानि । वद्धमानपुर नगर बषांन ।।४।।
दानपति राजा धरसेंन । सांझ समैं भयो केवलग्नेंन ।।
समोसरण जिनको जानिये । जोजन पांच तनौं मानिये ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठाढे जोग जिनेश्वर भए । गिरि सम्मेद पंचम गति गए ।।
शुदि पांचैं बैशाष जुमास । श्री जिनवर जू गर्भ निवास ।।६।
माघ सुदि तेरसि जब ठई । जनम अनंद ज्ञान रिद्धि भई ।।
जेठ उज्यारी चौथि बषांन । भए तपोधन श्रीभगवान ।।७।।
पूस सुदि पून्यम के दिना । मुक्ति महोछव आनंद घनां ।।
अंतर पावपल्लि उनमानि । सहस करोरि वरष घटि जांनि ।।८।।

इति धर्मनाथ वर्णनं

१६. शांतिनाथ स्तवन

दोहरा

इतनौ काल गएं भयौ, पुन्यतनौ बलसार ।
षोडशमों जिनराज गणि, शांतिनाथ अवतार ।।

चापई

गजपुर विश्वसेन महिईश । ऐरादेवी माता जगदीस ।।
मृग लांछण लष वरष प्रमान । कनकवर्ण कुरुबंशी जान ।।२।।
काय धनक चालीस उत्तंग । षट और तीस जु गणधर संग ।।
द्वादश भवतैं समिकत वांन । राज विभूति तजी छिणमांन ।।१३।।
नंदिक रूक्षतरें तप जोइ । षीर गह्यौ वीतें दिन दोइ ।।
सुमनस पुर राजा प्रिय मित्र । भयौ दानपति परम पवित्र ।।१४।।
केवल भयो सांझ के समें । गिर सम्मेद ठाढे शिव रमें ।।
समोसरण ले आये देव । जोजन चारि अर्द्ध करि सेव ।।१५।।

दोहा

भादव बदि जु सप्तमी, लयौ गर्भ अवतार ।।
कारी चौदशि जेठ की, जनम तपोधन धार ।।६।।
जेठ बदि तेरसि दिवश, केवल ज्ञान कल्याण ।।
पूस उजेरी दशमि कौ, पायो पद निर्वाण ।।७।।

इंति शान्तिनाथ वर्णनं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१७. कुंथनाथ स्तवन

सोरठा

सहस कोरि गए वर्ष, रत्नवृष्टि गजपुर भई ।
कुंथुनाथ परतष्य, सूरराय के ग्रहभए ।।१।।

चौपई

श्री राणी माता जिन जानि । अजारुप लांछण पहिचानि ।।
सहस पच्यानवै वर्ष की आव । धनक तीस करि काय उचाव ।।२।।
हेमवरण कुरुवंश प्रधान । गणधर पांच तीस जुत जान ।।
तीनि भवांतर तैं हिय चेत । राज त्याग कियो तप सों हेत ।।३।।
उत्तम तरूवर तिलक बषांन । तातर प्रभु कियो लौंच विधान ।।
मंदिरपुर वरदत्त नरेश । ताके क्षीर घट्यौ जु जिनेश ।।४।।
केवल लह्यौ समें दिन अंत । ठाढे जोग भए अरहंत ।।
समोसरण है जोजन च्यारि । गिरि सम्मेद तें मुक्ति पधार ।।५।।

दोहा

सावन वदि दशमी प्रकट, गर्भवास प्रभुलीन ।
बैशाष सुदि दसमी जनम, जानो भव्य प्रवीन ।।६।।
सुदि वैशाख की प्रतिपदा, तप अरू ज्ञान समाज ।
तीज उजेरि चैत की, शिव पहुँचे जिनराय ।।७।।

इति कुंथनाथ वर्णनं

१८. अरनाथ स्तवन

सोरठा

वरष हजार करोरि, अनुकर्म्में जब षिर गए ।
अर जु नाथ अवतारि, गजपुर नयर सनाथ किए ।।१।।

चौपई

पिता सुदर्शन देवी माय । लांछण नंदावर्त्ती दिवाइ ।।
सहस चउरासी वृष जीवंत । कुरूवंषी हाउ सब कंत ।।२।।
धनक तीस उत्तंग शरीर । तीनि तीस गणधर बलवीर ।।
तीन जनम तैं आपा लष्यौ । राज समाज सकल तहां नष्यो ।।३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृच्छ आंव को उत्तम जोइ । तातर तपु लीयौ चम षोइ ॥
अपराजित गजपुर भूपाल । ता घर घट्यौ क्षीर किरपाल ॥४॥
केवल उपज्यौ सांहु प्रवीन । समोसरण जोजन अर्द्ध तीन ॥
गिरि सम्मेद तैं उभै जोग । मुक्ति बधू स्यौ भयो संजोग ॥५॥
तीज उजेरी फागुण मास । ता दिन कियौ गर्भ निवास ॥
अघहन सुदि परिवा शुभ कर्म्म । इंद्रनि कियौ महोछव जन्म ॥६॥

दोहा

चैत उज्यारी पूर्णिमा, तप लीनौ भगवान ।
आघहन सुदि चतुर्दशी, पंचम ज्ञान विधांन ॥७॥

इत्यरनाथ वर्णनं

१९. मल्लिनाथ स्तवन—

सोरठा

अंतर कह्यौ विचार, चौवन लाष जु वरष कौं ।
मल्लिनाथ अवतार, मिथिला नयरी जानियै ॥१॥

चौपई

पिता कुंभ हरिवंशी गोत । प्रभावती का कौंष उदोत ॥
लांछण कलस वर्ण तनु हेम । बीस आठ गणधर सौं प्रेम ॥२॥
पचवन सहस्र वर्ष की आव । धनक पचीस सराहै काय ॥
जाती समरण तीनि भव तनौ । कुमार काल दीष्या पद गनौं ॥३॥
अशोक वृष्य तल कीनौ क्षोर । दूजै दिन पीयौ क्षीर न ओर ॥
नंदिसेन नैं दीनों दान । चहकहर पुर कौ राजा जान ॥४॥
केवल रिद्धि निसाकी आदि । जोजन तीस सभा मरजाद ॥
पुरुषाकार जोग की रीति । गिरि सम्मेद थैं कर्म वितीत ॥५॥

दोहा

चैत उज्यारि प्रतिपदा, गर्भवास आनंद ।
आघहन एकादशी, जनमरु तप जिनचंद ॥६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान पूस बदि द्वैज कौं, प्रकट भयो संसार ।।
फागुण सुदि की पंचमी, लह्यौ मुक्ति पद सार ।।७।।

इति मल्लिनाथ वर्णनं

२०. मुनि सुव्रतनाथ स्तवन

दोहा

बरष लाष षठ बीत तैं, मुनिसुव्रत परगास ।
सुमतिराय पदमावती, राजग्रही में बास ।।१।।

चौपई

कूरम चिह्न दीपै निसांन । तीस हजार वरष लौं जान ।।
बीस धनक दीरघ जिनदेव । स्याम वरण हरिवंश कहेव ।।२।।
तीन जनम तें संसय गई । चंपक तरुवर दीष्या लई ।।
विश्वसेन मिथिलापुर धनी । दान दियौ करि विनती घनी ।।३।।
दूजै दिन स्वामी बलवीर । सब तजि लीनौं उत्तम षीर ।।
राजरिद्धि तजि रवि के अंत । भए केवली श्री अरहंत ।।४।।
अष्टादश गणधर मंडली । द्वादश सभा मधि कर रली ।।
समोसरण धनपति तब रच्यौ । अर्द्ध जुगम जोजन कौ षचौ ।।५।।
विनु वैठें कियौ आतमकाज । गिरि सम्मेद पर मुक्ति समाज ।।
सावन बदि दुतिया गुण सनी । गर्भ कल्यानक रचना बनी ।।६।।

दोहा

वैशाख बदि दशमी विमल, जनमरु तप परधान ।।
वैशाख बदि नोमी कही; उपज्यौ केवलज्ञान ।।७।।
फागुण बदि की द्वादशी पंचम गति के ईश ।
करैं महोछव भगति वर, नर तिरयंच सुरीस ।।८।।

इति मुनिसुव्रत वर्णनं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२१. नमिनाथ स्तवन

सोरठा

वरष पंचलाष जानइनिहूं को जब होइ गये ॥।
उपजे नमि भगवान, मिथिलानयरी विजय घर ॥१॥

चौपई

वीरा राणी जननी जैंन । नीलोपल लांछण पद ग्रैंन ॥
पंद्रह धनुक ग्ररु कंचन रंग । दश हजार बरष लौं संग ॥२॥
तीनि जनम थैं छाडचौ कोह । कीनौ हरिवंशनि स्यौं मोह ।
परिग्रह त्याग योग को भार । बकुल नंदिसेनि नैं कीनो दांन ॥३॥
नेमिदत्त संयोगी राय । दूजै दिन गोक्षीर घटाइ ॥
केवल उपज्यो निस की ग्रादि । समोसरण द्वै की मरजाद ॥४॥
वांनी मलें दश ग्ररु तीनि । गणधर सभा चतुर परवीन ॥
जिन जू ठाडे शिवपुर गए । गिरि सम्मेद कल्याणक ठए ॥५॥

दोहा

क्वार ग्रंधेरि द्वैज को, गर्भ कल्याणक होइ ।
बदि ग्राषाढ़ दशमी दिना, जनम महोछव सोइ ॥६॥
परिवा स्याम ग्राषाढ की, दीक्षा लई जिनेश ।
ग्राघहन सुदि एकादशी, उपज्यो ज्ञान महेश ॥७॥
बदि चौदश बैशाष की, गमण कियौ शिव ग्रोर ।
कर्म रूप ग्ररिमर्दि कैं, भए प्रतापी जोर ॥८॥

इति नमि वर्णनं

२२. नेमिनाथ स्तवन

सोरठा

ग्रसी तीन हजार, ग्रर्द्ध सात वरष में ॥
जदुकुल तारणहार, नेमिनाथ द्वारावती ॥१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौपई

सिवा देवी राणी जिनमात । समुद विजय राजा गणितात ॥
लांछण संष सहस वर्ष आव । स्याम वरण दश धनुक उच्चाव ॥२॥
ग्यारह गणधर सेवा रहैं । समकित जनम दशक तैं कहैं ॥
विवाह समय छोड़्यो संसार । मीडासिंगी तरु ढलैं तप धार ॥३॥
वीरपुरी राजा नरदत्त । दई चरी गोक्षीर पवित्त ॥
केवल अरुन उदैं संचर्यौ । जोजन देढ़ सभा थल कह्यौ ॥४॥
पद्मासन प्रभु जोग विचार । मुक्ति स्थल प्रभु को गिरनार ॥
छठि उज्यारी कातिग मास । जिनवर भयो गर्भ निवास ॥५॥

दोहा

सुकल पक्ष सावनी, तिथि षष्ठी शुभवार ।
जन्म कल्याणक और तप, इन्द्रनि कीयो विचार ॥६॥
काती सुदि एकादशी, प्रगटयौ ज्ञान महंत ।
सुदि आषाढ़ की अष्टमी मुक्ति गए अरहंत ॥७॥

इति नेमिनाथ वर्णनं

२३. पार्श्वनाथ स्तवन

दोहा

वरष पांचसैं गत गये, जगमें कियो प्रकाश ।
नागराय आसन दियें, पापहरण जिनपासि ॥१॥

चौपई

अश्वसेन वानारसी गांम । वामा जिनमाता को नाम ॥
नौ हाथैं करि काय विशेष । एक शत वरष आवको लेश ॥२॥
उग्रवंश तनु दुति है नील । ग्यारह भवतैं साध्यो शील ॥
धरयौ कुमारैं दीक्षा रुप । तरवर तरु परम अनूप ॥३॥
दाषपुर धनदत्त नरेश । षीर चरी दीन्ही परमेश ॥
निश के समैं पंचमौं ग्यान । समोसरण सवा जोजन मांन ॥४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दश गणधर ज्ञानी राजंत । जिन प्रतिवोधें जीव महंत ॥
ठाढे जोग भयो निर्वाण । गिरि सम्मेद शिखर शुभ थांन ॥५॥

दोहा

कृष्ण द्वैज वैशाख की, गर्भवास अवतार ।
पूस वदि एकादशी, जनमरु तप अधिकार ॥६॥
चौथि जु कारी चैत की, प्रगटचौ पंचम ज्ञान ।
सावन सुदि साते दिना, जिनजू कौ निर्वान ॥७॥

इति पार्श्वनाथ वर्णनं

१७. महावीर स्तवन

दोहा

वर्ष अठासी के गए, महावीर जिनराय ।
कुंडलपुर नदरी जनम, धन्य जु त्रिशला माय ॥१॥

चौपई

पिता सिधारथ लांछण सिंघ । साथ हाथ की काय उतंग ॥
प्रभु की आव बहत्तरि वर्ष । गणधर ग्यारै हैं परतष्य ॥२॥
उग्रवंश देही दुति हेम । तेतीस जनम थें वांध्यो येम ॥
योग धरचौ तब राजकुमार । सघन वृष्य शालिर कौ सार ॥३॥
कुमार सें कुंडलपुर धनी । दूधचरी ताके घर बनी ॥
केवल उपज्यो सांझी बेर । समोसरण जोजन के फेर ॥४॥
पावापुरी धरचौ दिढ ध्यान । ठाढे जोग भए निर्वान ॥
आषाढ सुदि छठि गर्भ निवास । जनम चैत सुदि तेरस तास ॥५॥
अगहन बदि ग्यारसि तप जांनि । वैशाख बदि दशमी को ज्ञान ॥
कातिग बदि मावस पुनीत । सिद्ध भए सब कर्म्म वितीत ॥६॥

इति श्री वर्द्धमान वर्णनं

सरस्वती वन्दना

चौपई

तिनैं सुमिर आगें पग धरों । सारद तनी भगति अनुसरों ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्वेत वस्त्र करि वीना लसैं । सुमिरत जाह कुमति सब नसैं ।।१।।
मुष जिन उद्भव मंगल रुप । कवि जननी और परम अनूप ।।
करि अंजुली कर शीशु नवाइ । करों बुद्धि कौं मोहि पसाइ ।।२।।
जनम जरा मरण विहंड । सोभित छह दर्शन तुंड ।।
रुनु झुण पग नेवर झणकार । अविरल शब्द तनी दातार ।।३।।

इति मंगलाचरणं

मानुषोत्तर बर्णन

नमिता चरण सकल दुष दहौं । जेमवाल उतपति सब कहौं ।
अधो मधि है लोकाकाश । पुरुषाकार बषानैं तास ।।१।।
लोकमध्य हैं उभी त्रश नालि । चौदह राजू उचित विसाल ।।
चरण स्थल जुग वर्नें निगोद । नित्य इतर जिन वचन विनोद ।।२।।
अनंतानंत जीव की षांनि । कबहूं ताकी होइ न हानि ।।
तहां आवतनी न मरजाद । पंच जीव यह रीति अनादि ।।३।।
जितने जीव मुक्ति नित जांहि । तितनें इह्यांतें निषरांहि ।।
घटै नहीं निगोद की राशि । बढ़ै न सिद्ध अनंत विलास ।।४।।
अधोलोक तनौं परमांन । कटि प्रदेश तें नीचो जांनि ।।
ऊपर ऊदर लिलाट परजंत । ऊर्द्ध लोक की हद्द गणंत ।।५।।
मध्यलोक उद-स्थल गनौं । द्वीप समुद्र संख्या विनु भणों ।
पडयो षेत्र नाभि के ठाम । मानुषोत्र हैं ताको नाम ।।६।।
मानुषोत्र मरजादा जानि । द्वीप अढाई सागर मानि ।।
पहिलैं जंबूदीप बिचार । जोजन लाख एक विस्तार ।।७।।
तीनि लाष हैं बलयाकार । मध्य सुदर्शण मेरु पहार ।।
जोजन लाख तुंग है सोइ । जोजन सहस भूमि में होइ ।।८।।
ताके पूरब पश्चिम भागणों । क्षेत्र तीस द्वै अविचल भणों ।।
भरत ऐरावत द्वै ए जानि । उत्तर दक्षिण परे बखांन ।।९।।
ए सब मिलि भए तीस रु चारि । तहां द्वै शशि द्वै रवि को उजियार ।।
द्वीप समुद्र पर आगें जांनि । दुगुण दुगुण इनको परमान ।।१०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तामैं और जु परबत पडे । पदम द्रह ऊपरि तिनि षडे ।
श्री घृत आदि जुदे ब्यारारि । तिनकौं तहां सदैव निवास ।।११।।
तिनतैं नदी चतुर्द्दश चली । अविचल तहा समुद्र हे मिली ।।
गंगा सिंधु रोहिता नाम । द्रोहित औ हरिता अभिरांम ।।१२।।
हरिकांता सीता ए दोइ । सीतोदा नारी अवलोइ ।।
नरकांता औ सुवर्ण नागनी । रुप्यकुला रक्ता फुनि सुनि ।।१३।।
रक्तोदा चौदह ए नाम । स्वच्छोदक तिनमें अभिरांम ।।
मतापावलि लवनोदधि धीर । जोजन लख द्वै गहन गंभीर ।।१४।।
वारी जलनिधि वहु जंतुनि भर्‍यो । ठोर ठोर वडवानल धर्‍यौ ।।
मिष्टोदक पीवैं सब सोइ । उदधि मधि नहिं रंच समोइ ।।१५।।
द्वीप धातुकी ताचोफेरि । जोजन लाख चारि में मेर ।।
विजयाचल जानौं गिरि नाम । गिरि प्रति भई ऐरावत ठाम ।।१६।।
सलिता गिरि प्रति दस अरु चारि । पूर्व रीति हैं लेहु विचारि ।।
ता चा फेर समुद्र कौ नाम । कालोदधि मींठो जल ठाम ।।१६।।
आठ लाष जोजन विस्तार । वेढ्यौ वज्र वेदि अपार ।।
ता पाषल पुष्कर वर दीप । जोजन सोलह लाख समीप ।।१८।।
जोजन आठ लाख विस्तार । पुष्करार्द्ध ता माहि विचार ।।
पूरव पश्चिम गिरि अभिराम । मंदर विद्युत माली नाम ।।१९।।
मेरु संबंध द्वै जे गणों । भरथ ऐरावत चारिजु भर्णौं ।।
पूर्व विदेह साठि अरु च्यारि । तिनकौं प्रलय न कहूं लगार ।।२०।।
नदी चतुर्द्दश गिरि प्रति जांनि । सत्तरि और एक सो मांनि ।।
इहां लौं मानुषोत्तर पिहचानि । देव विनां कोऊ आगें न जानि ।।२१।।

यह अनादि की तिथि कहवाइ .... ।।

अब सब क्षेत्रनि कौं परमांन । सत्तरि और एक सौ जांनि ।।
तामें दश ऐरावत भरथ । सौ औरु साठि विदेह समर्थ ।।२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विरहमान वरतैं जिन बीस । सदा साश्वते प्रभु जगदीस ॥
एक तनो जब होइ निर्वान । दूजे को होइ गर्भ कल्यान ॥२३॥
क्षेत्र सदा अविनाशी जोइ । सदाकाल चौथई तहां होइ ॥
विनाशांक तिनि मैं अब लहौं । भरत ऐरावत दश जे कहौं ॥२४॥
कछु न अविचल दीसें तहां । छहों काल वरतें हैं जहां ॥
सुनि सो साठ क्षेत्र को हाल । तहां सदा चतुर्थम काल ॥२५॥
मुक्तिपंथ सम्यक् परिकार । तहां तें चलतु रुकन लगार ॥
जब दशमें पंचम परवरें । कोऊण मुक्ति पंथु पगु धरें ॥२६॥
जो कोई जीव सम्यक्ती होइ । बारह अनुव्रत पालें सोइ ॥
ताके फल विदेह अवतार । चेतनि ह्वै जु करें सम्हालि ॥२७॥
सुख सों मुक्ति रमणि कों वरें । कर्म उपद्रव सो निर्ज्जरैं ॥
अल्प बुद्धि सूक्षम मम ज्ञान , अढाई दीप तनों बखांन ॥२८॥
कर्यौ संक्षेप पनैं विस्तार । ब्यौरो कहत ग्रन्थ अधिकार ॥
जा कौं सब ब्योरे की चाह । बड़े ग्रन्थ देखों अवगाह ॥२९॥

इति मानुषोत्तर वर्णनं

असंख्यात अनंत गणित भेद वर्णन

या तैं द्वीप समुद्र जे और । दुगुण दुगुण गणि तिनि कौं दोर ॥
ऐसें करि भाषैं असंख्यात । स्वयंभू रमन अंत विष्यात ॥१॥
लेषो असंख्यात को गुणौं । जिनवाणी जैसो कछु सुनौं ॥२॥
तब पहीले में सरसौं भरें । सो सरसों सुर निज करि धरें ॥
द्वीप एक प्रति समुद्र जु एक । डारतु जाईय है जु विवेक ॥३॥
जांसु द्वीप मैं खूटै सोइ । फिरि गरता वाही सम जोइ ॥
पूरे होत एक हर करैं । सो पहिलैं गरता में ले भरैं ॥४॥
अवगरता जो द्वीप समान । जहां सरसौं षूटी ही जांन ॥
ताकी सरसो लेइ उवाइ । एक एक फिरि डारतु जाय ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक रहैं जब पाछैं फिरैं । ताहि प्रथम गरताले भरैं ।।
फिरि षूटैं ता द्वीप समान । गरता एक घनैं धरि ग्यांन ।।६।।
ता घर सरसौं फिरि उचकाय । द्वीप समुद्र एक डारतु जाय ।।
एक रहैं फिर ताहू लाइ । पहिले गरता मध्य भराइ ।।७।।
जब वह भरे करत इह रीति । लै उगइ सुनो रे मीत ।।
एक दुतीय गरता कर सोइ । पहिले कल्पित गरत समोइ ।।८।।
करि एकत्र जु डारतु जाइ । नाषत नाषत एक रहाइ ।।
करि गरता गिरि ताहि समान । एक बचे पहिले धरि आन ।।९।।
अनुक्रम फिरि गरता वह भरे । सब ले एक दूजे में करैं ।।
सो सब ले कल्पित सों भेल । द्वीप समुद्र प्रति ठानें खेल ।।१०।।
फिरि पहिले के भरतो जाइ । पूरण भए तो उचकाय ।।
एक एक दूजे में चलें । तब वह रीति दूसरो सले ।।११।।
एक तीसरे सर्व जु गोद । कल्पित ले फिरि करैं विनोद ।।
वह सब घटि जब एक रहंत । फिरि दूजो गरता मेलंत ।।१२।।
पूर्व रीति जब जब वह भरैं । तब तब एक तीसरौ करैं ।।
बह विधि भरैं तीसरो जबै । चोथो एक जु डारै तबैं ।।१३।।
और सकल कर ले उचकाय । कल्पित गर तासौं जुर लाइ ।।
करतु चलैं पहिली की रीति । एक रहैं तीजैं भरि मीत ।।१४।।
जब जब तीजो भरतौ जाइ । एक एक चोथो जु भराइ ।।
ऐसी रीति चतुर्थम भरे । पूरौ भए सकल उद्धरे ।।१५।।
जब जब जहां छेहली सरसौ जाइ । स्वयंभू रमण समुद्र कहाइ ।।
असंख्यात याही को नाम । मेरु तैं अर्द्ध रजू सो ठाम ।।१६।।
मध्य लोक को अंतर जोइ । बात वलय वेढयो अब सोय ।।
घात असंख्या और असंख्यात । नाम अनंत ही विख्यात ।।१७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहरा

जिनवर मुष उदभव प्रगट, श्रुत अगाध सिद्धांत ।।
तिनमैं सुनिमैं वरनई, गए संत असंख्य अनंत ।।१८।।

इति असंख्यात अनंत गणित भेद वर्णनं

योजन गणित भेद वर्णन

चौपई

अब सुनि आवपलिका कथा । जिनवानी भाषी है जथा ।।
राई आठ तनौं तिल एक । एक जव वसु तिल यह विवेक ।।१।।
जव वसु उदरे उदर मिलाइ । सो तो आंगुल एक कहाइ ।।
द्वादश आंगुल मामें कोइ । एक विलादि कहावें सोइ ।।२।।
जग्म विलादि जहां लौं दोर । कहियें हाथ एक सा ठोर ।।
लीजें हाथ चारि कौं दंड । ताको नाम कहायैं दंड ।।
द्वं हजार जब गनता जाइ । सो तो एक कोश ठहराइ ।।३।।
चारि कोश जब एकतकरैं । ताकों लघु जोजन उच्चरैं ।।
जब गणियें जोजन सो पंच । जोजन महा एक गणि संच ।।४।।

इति जोजन गणित भेद

पल्यायु भेद वर्णन

चौपई

पलि आवकी गणियैं जदा । षनि गरता लघु जोजन तदा ।
आडो ठाडो जोजन एक गहरो तितनों यहै विवेक ।।१।।
भोग भूमि मेंढा के बाल । जो दिन सात तना हौइ बाल ।
ताइ षंडु अनभागी करैं । रौंदि दावि ता कूपहि भरैं ।।२।।
चक्रीरथ सुर गंगापूर । करि पासकैं ताकौं चकचूर ।।
एक सप्त वर्ष वीति जब जाइ । तहां तें एक षंड निसराइ ।।३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुक्रम कूप रिक्त वह होइ । आव पलि कहावै सोइ ।।
जोतिस भीतर आव प्रमाण । इनहीं पलि नस्यौ तु जानि ।।४।।

इति पल्पायु भेद

पल्यसागर भेद वर्णन

चौपई

अब सुनि सागर आव प्रमान । ज्यौं श्री जिनवर करयौ बखांन ।।
कूप महा जोजन को मंड । तब अनभागी आवै षंड ।।१।।
ज्ञान शक्ति सौ सत षंड करै । तांसु वा गरताले भरै ।।
बीतें एक शत वर्ष विकार । एक केश करि षंड निर्द्धार ।।२।।
खाली होइ कूप वह जबै । सागर पल्य कहावै तबै ।।
पलि जहां दश कोराकोरि । तब इक सागर संष्या जोरि ।।३।।

इति पल्यसागर भेद वर्णनं

राजु गणित भेद वर्णन

चौपई

अब सुनि रज्जू गणित को भेद । जैसो जिनवर भाष्यो वेद ।।
महालाष जोजन को कूप । पहिलौ ऊंडौ पूरव कूप ।।१।।
सागर पल्य कुवा को चार । एक षंड है लीया विचार ।।
ताको षंड तब एक सौ करै । ज्ञान शक्ति सौं कूपै भरैं ।।२।।
एक षंड तब व्हां ते कढे । मेरु सुदर्शन माथै चढे ।।
जोजन लाख तनौ परिमान । एक षंड धरि औ फिरि आंनि ।।३।।
इह विधि धरतु जिनि कटे सोइ । रज्जू पल्य तब ही अवलोइ ।।
कोराकोरी दश पल्य जवैं । सागर एक कहावै तबै ।।४।।
जब सागर दश कोराकोरि । सूचि एक तहां तू जोरि ।।
सूचि जाइ दश कोराकोरि । धनरो वचन सुनि मोरि ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दश कोराकोरि घनरोय । ताकी होइ एक पदरोय ।।
वै दश कोराकोरी जब वहैं । तब जग सेठि नोम जिन कहैं ।।६।।
ता जग सिद्ध कौ सतम भाग । गणत एक रज्जू यह लाग ।।
अैसे चौदह रज्जु प्रमान । उंचे तीनि लोक को जांन ।।७।।
रज्जू तीन सें तेतालीस । घनाकार वरण्यों जगदीस ।।
अब सुनि पूरव की मरजाद । जामैं लहियैं अंतरु आदि ।।८।।

इति रज्जू गणित

दोहा

सत्तरि लाख करोरि मित, छप्पन सहस करोरि ।।
इतनें वरष मिलाइये, पूरव संख्या जोरि ।।१।।

इति पूरव गणित

षट्काल वर्णन

चौपई

मध्यलोक सब रज्जु प्रमान । श्रुत सिद्धान्त करैं वषांन ।।
अब सुनि छहौं काल व्यौहार । कितक जीव कैंसो विस्तार ।।१।।
अंतकाल नासैं दश षेत । भरत ऐरावत भूमि समेत ।।
छहौं काय प्राणी नहीं दीस । तब एक जुक्ति करैं जसईस ।।२।।
जुगल बहत्तरि ले उछंग । विजयारध धर लेउ अभंग ।।
तब फिर दशौं षेत्र निमये । जैसे के तैसे वेदिये ।।३।।

सुषमा सुषमा काल वर्णन

चौपई

सुषमा सुषमा प्रथम जो काल । आयु प्रवर्तते तहां विसाल ।।
जब उनि जुगलनि इन्द्र विचार । दश षेत्रनि मैं करे संचार ।।४।।
अब सुनि काल रीति क कछु कह्यौ । जितिक प्रमाण व्यवस्थिति लह्यौं ।।
सागर कोराकोरी चारि । प्रथम काल मर्याद विचार ।।५।।
जुगल जीव वरतैं तहि काल । सुंदर कोमल अति सुकमाल ।।
मति श्रुति अवधि जु तीनों ज्ञान । उपज तहां थैं साथ बखांन ।।५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तीन पल्य की पूरी आय । छह हजार धनक की काय ।।
बेर प्रमाण आहार जु करैं । सोऊ तीनि दिवस में लहैं ।।७।।
पूरै दश विधि उत्तम दान । कल्पवृष्य सब के ग्रह जान ।।
सो तरु दश प्रकार बरनये । तिनि के नाम सुनो गुण जये ।।८।।

कल्प वृक्षों के नाम

चौपई

तूरज मद्य विभूषा जानि । स्रग अरु ज्योति द्वीप गुण खांनिं ।।
ग्रह भोजन भाजन अरु भास । सुनि अब इनको दान प्रकास ।।९।।
मद्य वृष्यमादिक दातार । तूर्य्यं देय वाजित्र विचार ।।
आभरण देइ विभूषा रुप । स्रग तरु देइ पुण्य विनु दूष ।।१०।।
सूर्यं समान हरैं तम जाल । ज्योति वृष्य असो गुणमाल ।।
दीपदान दीप तैं जानि । ग्रह दाता ग्रह रुप बषांन ।।११।।
भोजन तरुवर भोजन त्यागि । भाजन पातर वृष्य सौलागि ।।
वसन सकल देइ वस्त्र उदार । कल्पद्रुम ए दश परकार ।।१२।।
इहिं विधि सुष सौं काल बिताइ । आव जहां नौ मास रहाइ ।।
नारी गर्भ होइ तिहिं समै । पूरौ होइ जुगल तहं जमैं ।।१३।।
माता छींक पिता जंभाइ । ततषिणवे बदलैं परजाइ ।।
सकल शरीर जाइ षिरि ऐसें । पडमैं तैं कपूर उड जैसें ।।
कर्म वेदनी की नहीं पीर । अगनी दाह नहीं करै शरीर ।।१४।।
वे दोऊ मरि स्वर्ग अवतरे । जिनवाणी प्रकाश यों करै
दोऊ शिशु अंगुठा रस पीय । दिन उंचास तरुण वपु कीय ।।१५।।
जनमतैं भया वह नव षांन । तरुण भये पति नारी जांन ।।
सनै सनै बहु बीतै काल । परिवर्त्तौं दूजो गुणमाल ।।१६।।

सुषमा काल वर्णन

चौपई

सुषमा नाम ताकौ स्तुत कहैं । जुगल जीव तामें हू रहैं ।।
कोराकोरी सागर तीनि । काल मर्यादा कही नवीन ।।१७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोइ पल्य आयु उतकिष्ट । धनसहसद्वै काय वरिष्ठ ।।
लेइ आहार गणे दिन दोइ । परमित तसु वहेरा जोइ ।।१८।।
कल्पवृष्य करैं मध्यम दांन । महिमा काल तनि यह जांनि ।
इह विधि काल दूसरौ जाइ । काल तीसरौ तब सरसाइ ।।१९।।

सुषमा दुषमा काल वर्णन

सुषम दुषम है ताको नाम । जीव जुगल ताके अभिराम ।।
कोरा कोरी सागर दोइ । काल तनी मर्यादा होइ ।।२०।।
धनक सहस दोइ की काय । एक पल्य की आव विहाय ।।
लेइ आहार एकांतरै जीव । कह्यौ आवले भरि जु सदीव ।।२१।।
दान जघन्य कल्प तरु देहिं । जीव सकल आरति से लेहिं ।।
अष्टम अंस पल्लि कौ कह्यौ । तृतीय काल में बाकी रह्यौ ।।२२।।
गुप्त भए कल्पद्रुम घोर । जुगल धर्म तव लइ मरोर ।।

चौदह कुलकर

भया चतुर्द्दश मनु औतार । चंद्र सूर उगे निरधार । २३।।
पहलो कुलकर प्रतिश्रुत जान । दूजो सनमति सुभग वषांनि ।।
क्षेमंकर तीजे को नाम । क्षेमंधर चौथो अभिराम ।।
सीमंकर पंचम मनुराय । सींमंधर षष्टम वरनाय ।।
विमलवान सप्तम बर्नयो चक्षुष्मान तहां अष्टम भयौ ।।२५।।
प्रसेनजित नोमौं जानियैं । अभिचन्द्र दशमौं मानिये ।।
चन्द्रप्रभ ग्यारहौं वषांन । हेमदेव द्वादशमों जान ।।२६।।
प्रश्नजीत तेरमौं मनुचन्द । चोंदहों कुलकर नाभिनंद ।।
परम विशुद्ध सकल गुणलीन । सब जीवन में महाप्रवीन ।।२७।।
लोप होंइ कल्पद्रुप ज्यों ज्यौं । कुलकर भाणैं आगैं त्यों त्यों ।।
भावी काल बखानै यथा । कहैं सकल जीवन सौं कथा ।।२८।।

दोहा

इह विधि चौदह ए भए, कछु कछु अन्तरकाल ।
तीन ज्ञान संजुगत सब, मति श्रुती अवधि विसाल ।।२९।।
अब सुनि चौथे काल की, महिमा अधिक अनूप ।
प्रगटैं चउबीसी जहां, भवहर मुक्ति स्वरुप ।।३०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चोपइ

तहाँ मुक्ति को मारग खुले । तजि मिथ्या सब उद्दिम रुलें ।।
सागर कोराकोरी जानि । सहस बयालीस घटती मानि ।।३१।।
इह मर्यादा चतुर्थम काल । श्रायु कोडि पूरव विसाल ।
धनुक पांचसैं काय जु कही । अनुक्रम घटत जाइ जो सही ।।३२।।
जुगल धर्म्म मिट्यो तिहिकाल । प्रकटे सकल जीव गुणमाल ।
असि मसि कृषि वाणिज्य उपजाइ । गये कल्पतरु यह अधिकाइ ।।३३।।
मेघ पटल जुरि वर्षा करैं । तिनकी वृष्टि कृषि वहु करैं ।
बादल भुवि तैं जोजन चारि । ऊँचे रहैं श्रवैं जलधारि ।।३४।।
सबको बेल प्रमाण आहार । निति प्रति भुंक्तं होइ करार ।
हैं सुकाल सदा तिहि काल । परैं न कबहूं नहीं अकाल ।।३५।।
अब सुनि पंचम दुष विचार । रहैं वर्ष इकईस हजार ।।
मुक्ति पंथ को भयो निरोध । रहै न तत्त्व पदारथ बोध ।।३६।।
सो औरु बीस वर्ष की आयु । भली त्रिभंगी होइ बधायु ।।
अशुभ त्रिभंगी साधन हार । अल्प आव धरि दुषी अपार ।।३७।।
कहौं त्रिभंगी को सुनि भेद । जैसो जिनवर भाष्यो वेद ।।
बाल तरुण बिरधा पे चार । त्रिभंगी प्रथम याहि विचार ।।३८।।
तिनि के उदै मध्य अरु अस्तु । दुतीय त्रिभंगी भेद प्रशस्त ।।
निर्धन धन बालरहि तसु जांन । तृतीय त्रिभंगी ताहि बखांन ।।३९।।
बीज सबनि कौं मन बचकाय । इनि त्रिभंगनि को परम सहाय ।।
इनि समयनि मेभाव जु होइ । शुभ अरु अशुभ बंधता होइ ।।४०।।
तासु प्रताप आवको बंध । पाप पुण्य ते घटि बधि बंध ।।
जितक आयु धारी जाइ षरो । ताको लेहु भाग तीसरो ।।४१।।
वांमें बंधे आगिली आयु । श्री जिनमार्ग यह ठहराय ।।
तहां न होइ जो बंध विचार । भाग करो यह बिधि नव बार ।।४२।।
नवम भाग तीजो वर जानि । आयु समो अन्तमों सो जान ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होइ अब संबंध तहां जो सही । ऐसी जिनवानी तैं लही ।।
एक समें गति बांधें जीव । चार्यौं गति मैं फिरै सदीव ।।४३।।
जीव देह को त्यागे जबै । आंनपूरवी आवै तबै ।।
बंधी होइ जोग तिहकाल । ले पहुंचावै तहाँ सम्हालि ।।४४।।
तासौं मूढ कहैं जमराज । जीव निकासैं करि दुख काज ।।
साढ़े तीन हाथ की काय । जीव अनेक कहैं मुनिराय ।।४५।।
कृषि तैं पोषें जीव शरीर । अलप सुकाल काल बलवीर ।।
सबकी भूष तनौं सुनिमान । फल कुषमांड जानि परमान ।।४६।।
तृप्ति नहीं भक्षें एक वेर । जेंवें दुपहर सांझ सवेर ।।
मध्यम वृष्टि मेघ सब करैं । धर्म विक्षिप्ति तहीं पर धरैं ।।४७।।
ता पीछैं होइ छठम काल । दुषमा दुषम महा विकराल ।।
मिथ्यादृष्टि सब जीवनि तनी । धर्म्म वासना रंच न गनी ।।४८।।
बेटी बहिन न मानें कोइ । सवैं कुशील नारी नर जोइ ।।
काल मर्यादा कही श्रुत ज्ञान । बरस हजार बीस एक जानि ।।४९।।
हाथ जुगल देही उत्तंग । बीस वरष लों आव प्रसंग ।
जबकें सहस वर्ष गत होइ । षोडश वरष आव अवलोइ ।।५०।।
कृषि विनाष होइ सब ठोर । जीवें जीव आहार अवलोइ ।।
जलचर नभचर जीवन षाइ । तृप्ति बिना सव क्षुधित फिराइं ।।५१।।
संजम तप नहीं दींसे रंच । पाप अधर्म्म तनों तहां संच ।।
अनुक्रम होइ काल को अन्त । रवि शशि निकट उदैत करंत ।।५२।।
तिहि के तेज सकल को नाम । वृष्यादिक जे सुष निवास ।
प्रलय समीर बहै परचंड । विनासीक सब कहैं विहंड ।।५३।।
जीव सकल तिथि ऐसी करैं । जाइ चतुर्गति में अवतरैं ।।
अवसर्प्पिणि यह काल कहावे । फिरि उतसर्पिणी काल प्रभावे ।।५४।।
ज्यों ज्यों अनुक्रम ओरैं गिलैं । त्यों त्यो उतसर्पिणी उगिलैं ।।
छठो पांचमों पहिलो जोइ चौथो तीजे कैं सम होइ ।।५५।।
तीजे में चउवीसी कही । पाप निवार जग निवारण सही ।।
ऐसैं फिरित रहैं छहकाल । है अनादि कौं ऐसौ ख्याल ।।५६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनन्तानन्त चोवीसी जानि । या लेणें परतक्ष प्रमाण ।।
केवल विना न जानी जाइ । यातैं अनंतानंत कहाइ ।।५०।।

दोहा

जव जव होइ चतुर्थमे, सतजुग अठतालीस ।
गए चोवीसी सु होइ, तहां हुंडासर्प्पिनि इस ।।५८।।
ऊण शलाका पुरुष, जहां दर्प रूप पांखड ।
होई उपसर्ग जिनंद को; चक्री मान विहंड ।।५९।।
छहौं काल फिरिते रहें, ज्यौं अरहठ की हार ।
भरथ ऐरावत क्षेत्र में, जे वरनैं दश सार ।।६०।।

इति षट्काल वर्णनं

ऋषभदेव गर्भ कल्याणक वर्णन

चौपई

अब सुनि तू फिरि उतपत्ति सिष्ट । जथा जुक्ति जो कही वरिष्ट ।।
तीजें काल अन्त मनु वृन्द । चौदहौं कुलकर नाभि नरिंद ।।१।।
मरुदेव्या राणी कौ नाम । शीलवंत सव गुण अभिराम ।।
आयु कोडी पूरव की दीस । काय धनक शत पंच पचीस ।।२।।
आयुभूमि कौ साधैं राज । सुख साता के सवें समाज ।
तीन ग्यांन संयुक्त नरिंद । सब जीव कौं मेटैं दंद ।।३।।
निसि दिन धर्म नीति सों काम । दुखी न दीसें काउ तिहि ठांम ।।
ऐसी भांति काल वहु गयो । अवधि सुरपति चिंतितु भयो ।।४।।
धनपति कौं लियौ तब बुलाइ । जिन आगमन कह्यो समझाइ ।।
सो आयौ चल आर्य मझार । नगरी रचना रची सवार ।।५।।
नव जोजन चतुरी निरमई । बारह जोजन लांबी ठई ।।
सब कें कनक मई आवास । रत्नजड़ित बहु विधि परकाश ।।६।।
वन उपवन तहाँ रचे अनूप । घर घर कामिनि परम स्वरुप ।।
बापी कूप तड़ाग अनंत । निर्म्मल अंब कमल विकसंत ।।७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब धन पनि आगैं नवमास । घर घर बरषाई नग रासि ।।
आई आठ जु देवी तबैं । प्राषुक उसध लाई सबैं ।।८।।
जननी की सेवा आचरैं । देऊषध गर्भ षोधना करैं ।।
देह जनित के जिते विकार । दूरी किय नहीं रहे अहार ।।९।।
जिन माता सोवत सुख चैन । सुपने देखें पश्चिम रैनि ।।
गज देष्यौ सुर गज सम तोलि । धवल धुरधंर रूप अमोल ।।१०।।
केशरी सिंध महा बलवान । कमला रूप मनोहर जांन ।।
सुन्दर रवि शशि मंडल चंग । मीन सुभग चंचल अति रंग ।।११।।
पूरण सजल द्वै हाटक रूप । कमल कुलित सर सुभग अनूप ।।
सिंहासन अमुपम अविकार । देखें जननी स्वपन विचार ।।
अमर विमान महा रमनीक । फणिपति सुभग रु सुन्दर नीक ।।
विमल प्रचुर रत्न की रासि । जरत अग्नि उत्तम परगास ।।
ए षोडश सुपनें अवलोइ । दर वेदन भव जाग्रत दोइ ।।१४।।
जिनमाता षोडष देषई । चक्री की द्वादश पेषई ।।
नारायण की देखें आठ । वेदराम की इह श्रुत पाठ ।।१५।।
उत्तम जलसैं मुख प्रछाल । पहिरे नौतन वसन रसाल ।।
नव सत साज सिंगार अनूप । चलि आई जहां बैठे भूप ।।१६।।
भक्ति जुक्ति सौं सीसु नवाई । राजा की ढिंग बैठी जाइ ।।
स्वपन वृत्तांत सकल उच्चर्‌यौ । फल सुनवे कौ चित्त अनुसर्‌यौ ।।१७।।
सुनत नृप हिय अधिक हुलास । अवधि ग्यांन बल फल परगास ।।
नाभिराय फल कह्यौ विचारि ।तुम सुत ह्वैं हों त्रिभुवन तार ।।१८।।
प्रथम तीर्थंकर जनम मही । तुम्हरी कूंष जानियो सही ।।
प्रथक प्रथक स्वपनें गुणमाल । वरनि सुनाऊं सुनी उहो नारि ।।१९।।
पहलो देष्यौ गज मय मंत । तुम सुत ह्वैं हैं श्री अरहंत ।।
वीर्य बलादिक ग्यांन अनंत । वंदे देवी देव अन्नत ।।२०।।
धवल रूप को सुनि फल सार । जग जेष्टी जग गुरु सिरदार ।।
इन्द्र नरेन्द्र खगेसर देव । ज्योतिक व्यंतर करैं पद सेव ।।२१।।
सिंह प्रताप महा बलवीर । भयो न ह्वैं हैं कोऊ न धीर ।।
अनन्त मर्यादा कह्यौ बल तास । अनन्त ज्ञान में करैं विलास ।।२२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सुनि लक्ष्मी दरशन को भावं । वहुतैं लक्ष्मी करें सहाव ।।
जनमतें इन्द्र मेरु ले जात । करैं कल्याणक घन विपराय ।।२३।।
पुहप दाम को फल जु अनूप । कीरति उज्वल काम सरूप ।।
जस वल्ली पसरी त्रियलोक । हरैं सकल प्राणी का शोक ।।२४।।
हिमकर देषण को परताप । तू सब मेटैं जग आताप ।।
सूरज फल प्रतापी जोर । मेटैं पाप तिमिर को सोर ।।२५।।
क्रीड़ा करत जु देखें मीन । तू बसतु सुघगर परवीन ।।
पूरण घट को यहैं विचार । विना पढैं विद्या सु भण्डार ।।२६।।
सरवर कुलित तनों फल एह । शुभ लक्षण सब सुत की देह ।।
संख्या सहस आठ की सुनों । तिनें सुमिरें सब पापनि हनों ।।२७।।
देष्यौ सागर उठत तरंग । केवलज्ञानी पुत्र अभंग ।।
लोकालोक तनों विस्तार । यथा जुगति प्रकटे संसार ।।२८।।
सिंघासन फल एसो जानि । लछिन अनेक मुक्तें निर्वान ।।
सुर विमान तें राज समाज । रूप सोभाग वहुत गजराज ।।२९।।
नागरूप जनमत त्रिय ज्ञान । तीन लोक के नाथ बखांन ।।
रत्नरासि फल उत्तम जोइ । सुत श्रुत गुण के सागर होइ ।।३०।।
प्रभु जित अग्नितनें परभाव । ध्यांन अगनि बसु कर्म अभाव ।
कलुष दुष्ट संपूरण जारि । तू वसै मुक्ति रमणी भरतार ।।३१।।
फल सुनि परम अनंदित भई । धर्म्म बुद्धि अधिक ईसई ।।
सवार्थसिद्धि तें चले जगदीस । मुक्ति आव सागर तेतीस ।।३२।।
कारी द्वैज आषाढ को मास । मरुदे गर्भ कियौ जु निवास ।।
गर्भ कल्याण पूजो देव । इन्द्रादिक सब करइ सेव ।।३३।।
करें कुमारी छप्पन सेव । सकल दुहिले पूरहैं हेव ।।
है अनादि की ऐसी रीति । सेवा करें सबें धर प्रीति ।।३४।।
निसवासर सब सुख सों जाइ । नव महीनें जब पूरे थाय ।।
जननी हृदय परम आनन्द । कब ह्वै हैं सुत त्रिभुवन चन्द । ३५।।

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहरा

महिमा गर्भ कल्याणक की, सुनो भव्य धरि हेत ।
अघहारी सुख करणहें , पहु'चावें शिवखेत ।।३६।।

इति श्री गर्भकल्याणक वर्णनं

जन्म कल्याणक वर्णन

चौपई

अब सुनि जनम कल्याणक रीति । करें इन्द्र सब मन धरि प्रीति ।।
चैत्र सुदी नौमी के दिना । उत्तराषाढ़ जनम भागिना ।।१।।
भुवि अवतरे जगत के नाथ । मति श्रुति अवधि विराजैं साथ ।।
कछू कष्ट नहि मातें होइ । सुष साता सौं प्रसवै सोइ ।।२।।
तव इन्द्रनि जान्यौ बल ज्ञान । पुहुमि औतरे श्री भगवान ।।
हर्षित लोक तिनि सुनिए लोक । दूरि वहाये संसय सोक ।।३।।
कल्पवासी घंटा ध्वनि करैं । और अनाहद रव ऊचरैं ।।
ज्योतिकी संषनाद पूरियौ । करि उछाह अशुभ चूरियौ ।।४।।
भवनवासि ग्रह भयौ आनंद । सिंघ रूप गर्जैं सुर वृन्द ।।
पटह बजायौ व्यंतर देव । पहुलास करि हैं प्रभु सेव ।।५।।
भवनवासि चालीस अनूप । व्यंतर दोइतीस शुचि रूप ।।
कल्पवासी चौबीस महंत । आवें पूजन श्री भगवंत ।।६।।
रवि शशि नर तिरयंच जु चारि । ए सब मिलें शत इन्द्र विचार ।।
जान्यौ जनम लीयौ जिनराज । गज ऐरावत लाए साज ।।७।।
अब वरणौं वा गज श्रृंगार । जो गुरु कही जिनागम सार ।।
एक लाख जोजन गज सोइ । ताके मुख इकशत अवलोय ।।८।।
बदन बदन पर आठ जु दंत्त । रदन रदन इकसर ठाठ ।।
सर प्रति कमलनि सो पच्चीस । एक लाख कमलनि सब दीस ।।९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजहि कमलनि प्रति पनवीस । कमल भए सब लाख पचीस ॥
कमल कमल प्रति दल सो आठ । दल दल एक अपछरा ठाठ ॥१०॥
नर्त्त करैं बहु आनंद भरी । हाव भाव नेंनवि भावरी ॥
सब मिलि कोढि सताईस नारि । करैं नर्त्त गज मुष पर सार ॥११॥
कनककिंकिणी औ घनघंट । ऐसे ऐरापति के कंठ ॥
चमर पताका धुजा विशाल । त्रिभुवन को मनमोहन जाल ॥१२॥
ता हाथी पर ह्वैं असवार । आयौ इन्द्र सहित परिवार ॥
सब मिलि पुर प्रदक्षण करें । मुष तें जय जय रव उच्चरें ॥१३॥
गई गुप्त इन्द्र की सची । जिन जननी को निद्रा रची ॥
माया मई राष्यौ शिशु अंग । श्री जिनबिंब लयौ उछंग ॥१४॥
निरषत रूप त्रिपत नहि होइ । परम हुलास हृदय नहिं सोइ ॥
अैसो जंपे वारंवार । मेरें लोचन होहु हजार ॥१५॥
निरखौं नयननि रूप अथाह । होहू पुनीत परम पद पाइ ॥
आनंद भरि ले आइ तहां । हरषत बदन इंद्र सब जहां ॥१६॥
प्रथम इंद्र करि लेइ उठाइ । प्रभु चरननि कौ शीसु नवाइ ॥
गज आरूढ भए भगवान । छत्र लियें सौधर्म ईशान ॥१७॥
सनतकुमार देव जो दोइ । ढारें चमर अनुपम सोई ॥
शेष शक्र जय जय उच्चरैं । देव चतुर्विध हर्षित फिरैं ॥१८॥
ले गए गगन उलंध्य अपार जोजन नन्यानवें हजार ॥
मेरु शिखर राजैं वन चारि । सघन सजल कवहून पतझार ॥१९॥
सुमन पांडुक नंदन वन्न । भद्रशालि लखि चित्त प्रसन्न ॥
कल्पांत वात नही परसें कदा । फूलें फलें छहों ऋतु सदा ॥२०॥
चारचौ दिसा मेरु की लसें । पहिलैं भद्रशाल वन बसें ॥
ता ऊपर नंदन वन संच । उंचो है जोजन सत पंच ॥२१॥
तितनो ही जानो विस्तार । नंदनवन को गिरदाकार ॥
ता ऊंचे सुमनस वन होइ । मेरु पाषली सोमें सोइ ॥२२॥
तासु फेर की गणती कहों । सहस्त्र साठि द्वै लषौं लहों ॥
अधिक पांचसें जोजन जांनि । तापर पांडुक वन शुभथांन ॥२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जोजन सहश्र छत्तीस उत्तंग। सुमनस वन तें दीसें चंग ।।
चौराणवैं अधिक सो चारि । वन विराजत वलयकार ।।२४।।
चारि सिला पांडुक हैं जहां । जनम कल्याणक महोछव तहां ।।
वन वन प्रति चैत्यालय देव । पूरब दिसा आदि दे भेव ।।२५।।
ऊंचे चोरे को परवान । और ग्रन्थ तें सुनियौ जांन ।।
मंदिर प्रति प्रतिमा जिन तनी । अट्ठोत्तर सो संख्या गनी ।।२६।।
सत्रहसें अठविंशति सदा । वनें अकृत्रिम नास न कदा ।
धनक पांच सै बिंब उत्तंग । तीन काल बंदौं मनरंग ।।२७।।
सकल पुरंदर हरषित भए । पांडुक वन विचित्र ले गये ।।
तहां विराजैं पांडुक शिला । जानौं अर्द्धचन्द्र की कला ।।२८।।
चौरी हैं जोजन पंचास । सो जोजन लांबी परगास ।।
वसु जोजन की ऊंची गनी । ललित मनोहर सोभा सनी ।।२९।।
तहाँ रच्यौ मंडप मणि मई । ता मध्य सिंघासन छवि दई ।।
भरी ताल कसाल जु छत्र । दप्पणं चमर कलस ध्वज पत्र ।।३०।।
प्रथम धरैं हैं मंगल अष्ट । रचे कलस तहां महा वरिष्ट ।।
वदन उदर औ गहि परिणाम । एक च्यारि वसु जोजन जांन ।।३१।।
तापर पधराए जिनईश । पूरबमुष कमलासन ईस ।।
पूजा पाठ पढैं सब इन्द्र । द्रव्य आठ साजें प्रति इन्द्र ।।३२।।
जलगंधाक्षत पुष्प अनूप । नेवज प्रचुर दीप अरु धूप ।।
फल जुत आठ द्रव्य परकार । पूजा करें भक्ति उरधार ।।३३।।
करें आरती पढइ जयमाल । गावें मंगल विविध रसाल ।।
बाजैं ताल मृदंग जु बीन । दुंदुभि प्रमुख धुरि ध्वति छीन ।।३४।।
नर्त्तित सुर गंधर्व की नारि । हावभाव विभ्रम रस भारि ।।
सची सकल मनोहर नैंन । चन्द्रवदन विहसत सुख दैंन ।।३५।।
अंग मोरि भंवरी जब लेहि । देसी विषैं परम सुष देहि ।।
धिगदि धिगदि तत थेई ताल । झिमक झिमक झालरी कमाल ।।३६।।
थिगदि थिगदि मुष की थथकार । दिगदि दिगदि संगीत सुतार ।।
द्रुमकि द्रुमकि बाजें दुरमुरी । घुमिकि घुमिकि करि किंकन करी ।।३७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ठनन ठनन घंटा टनराय । मनन मनन भेरं मन नाइ ।।
ताताथैं ताताथैं ताताथैं ताल । तल पशु लय गावे सुर ताल ।।३८।।
वीना वंश मुरज झनकार । तंत वितंत घने सुषकार ।।
नूपुर ध्वनि थकित सुवंश । जिन गुण कढत मनो कलहंस ।।३९।।
मंगल नाद करें सव कोइ । सुर नर सब यह कौतिक जोइ ।।
सुरभरि कलस लेहि एक साथि । क्षीर समुद्र तें हाथि हि हाथि ।।४०।।
तव सुरेश सौधर्म ईशान । प्रभु कौं करैं अभिषेक विधान ।।
दही घीव मिष्टादिक जानि । अवढोरत रस संकल्पित मान ।।४१।।
ज्यौं पंचामृत परमत कहैं । ताही समेंलो गनिए गहैं ।।
इंद्रनि कीनी इनकी धार । बिना क्षीर प्रभु कें सिरमाल ।।४२।।
जो मम बचन न मानें कोइ । देषो आदि पुराण में जोइ ।।
सहस अष्टोत्तर कलस विचित्र । ढाले जिनवर सीस पवित्र ।।४३।।
और प्रमुख शृंगार आचार । इन्द्रनि कियौ सकल निर्द्धार ।।
भए जग ज्येठ वरिष्ठ अभिराम । ऋषवदेव राष्यौ प्रभुनांम ।।४४।।
फिरि उत्साह सहित वें फिरे । आय अजोध्या में अनुसरे ।।
तहां कियौ बहु विधि आनंद । माता कौ सौंप्यौ जिनचन्द ।।४५।।
धनपति कौं प्रभु सेवा राषि । इन्द्र सकल निज ग्रह आए भाषि ।।
याही तें धनपति धनराय । प्रभु की सेव करैं चितु लाइ ।।४६।।

दोहरा

इह महिमा जिन जनम की, पढंत सुनत अघ नास ।
निज स्वरूप अनुभव करैं, बहु विन गर्भ निवास ।।४७।।

इति श्री जन्म कल्याणक वर्णनं

ऋषभदेव जीवन

चौपई

नाभिराय मरुदेव्या माइ । आनंद बढ्यौ न अंग समाइ ।।
गुरुजन पुरुजन सब ग्रह धाम । मंगल करें सकल नर वाम ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पंच शब्द बाजे अनवार । मोतिन झूलैं बंदनबार ।।
रत्नचूरि सों चोक पुराइ । फिरि जिनको अभिषेक कराइ ।।२।।
जग व्यौहार करण विस्तार । फेरि किए सब प्रमुखाचार ।।
बंदी जन बहु दीनैं दांन । तिनही कौ नहीं सकौं बखांन ।।३।।
जुग की आदि भयौ अवतार । आदिनाथ धर्‌यौ नांम विचार ।।
श्रमजल सब मल रहित सदीव । रुधिर वरण जैसौ गोक्षीर ।।४।।
प्रथमसार संघनन स्वरूप । सहज सुगंध सुलक्ष अनूप ।।
मधुर वचन बल अतुल न मान । भाव विचित्री सब सौं जाँनि ।।५।।
ए दश अतिशय सहजोत्पन्न । तीर्थंकर बिन होइ न अन्न ।।
अमर आइ वैक्रिय बल फोर । कोऊ मराल ह्वैं कोकिल मोर ।।६।।
विविध रूप ह्वैं प्रभु सों रमैं । बाल विनोद करत दिन गमैं ।।
देव पुनीत सकल सिंगार । सुर दिनें मल्यावैं त्रिय वार ।।७।।
पहिरावैं प्रभु को धरि हेत । निरषत तात मात सुष लेत ।।
और अनूपम भोग विलास । भोगैं प्रभु जूनैं सुखरासि ।।८।।
बीस लाष पूरब लौं जानि । कुमार काल भुक्त्यो भगवानि ।।
पाछैं दीयो नृप पद भार । नाभि नरेन्द्र परम उदार ।।९।।
बैठें सिंघासन श्रीजगदीस । युगल धर्म्मं निवारयौ ईस ।।
खेती बिनज लिखन चाकरी । परजा पालन कौ बिस्तरी ।।१०।।
पुत्री कांहूं की आनियैं । सुत काहू कौ तहा जानियै ।।
करैं विवाह लगन शुभ वार । इहि विधि बढ़त चल्यौ संसार ।।११।।
सो मोपें वरण्यौ क्यों जाइ । हौं मतिहीन वियनके माइ ।।
भए प्रच्छन्न कल्पतरु भूमि । क्षुधा तृषा की बाढ़ी घूम ।।१२।।
परजा सब दुख पीडित भई । नाभिराय के आगें गई ।।
जो कुछ कहो सु कीजे नाथ । क्षुधा तृषा करि भए अनाथ ।।१३।।
पुद्‌गल जर्जरी भूत प्रतक्ष । बिनु आहार न कोइ रक्ष ।।
नाभि नरेश सुनि यह बात । चिंता उपजी उर न समात ।।१४।।
चलि आए जहां त्रिभुवन राय । दुख परजा को कह्यो सुनाय ।।
श्री भगवंत विचारयौ ग्यांन । भूत भविष्यति औ व्रितमान ।।१५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अैसी ही अनादि की रीति । सबकों समझाई धरि प्रीति ।।
पुहमि करष उपजाउ जाइ । ता फल भषि पोषों निज काय ।।१६।।
जो लों कृषि फल उपजें मही । त्तोलों एक करो तुम सही ।।
ए अनादि के इक्षुपु दंड । ले आवौ इनि करो जु षंड ।।१७।।
पेलि पेलि रस काढतु जाव । काया पोषोया कर भाव ।।
सब परजा आनंदित भई । क्षुधा पीर तें बन महि गई ।।१८।।
लीये इक्ष दंड सब तोरि । रस काढयो तिनको करि मोरि ।।
भक्षित भागी भूख पियास । घर घर आनंद परम हुलास ।।१६।।
सब जुरि आए देन असीस । तुम इक्ष्वाकु वंश जगदीश ।।
तब तैं प्रभु को वंश इक्ष्वाकु । वरणें सुर नर किंकर नाक ।।२०।।
तब जान्यौ प्रभु यह निज बंश । थाप्यौ और तीन अवतंस ।।
कुरु अरुउग्र नाथ ए तीनि । प्रभु ने नाम प्रतिष्ठा दीन ।।२१।।
करे परसपर व्याह विधांन । तजि निजवंश सगारथ जांन ।।
प्रभु के राज दुषी नहिं कोइ । घरि घरि जैन धर्म अवलोइ ।।२२।।
तिहि पुर मद गयंद सौं रहैं । मदिरा नाम और नहिं कहैं ।।
मारु सोइ जो बल बुधि होइ । पुष्प पत्र लें बाधें सोइ ।।२३।।
दंड सोइ जो जोगी लेइ । औरए दंड न कोऊ देइ ।।
चंचल चोर कटाक्ष तिया के । जो नित चोरें चित्त पिया के ।।२४।।
चक्रवाक बिनु कोइ न आन । निशि के समें विरह दुख खांनि ।।
बिरहाकुल पिक बिना न कोइ । बिरहाकुल पिय पिय रट सोइ ।।२५।।

दोहा

दीपदु बधिक बसे तहां, ज्यौं निस बधे पतंग ।
अवधपुरी ऐसो चलन, रच्यौ ईस मन रंग ।।२६।।

चौपई

सबकें होइ चतुर्विध दांन । जिनपूज और गुण सनमान ।।
धर्म्म राज बरतें संसार । पाप न दीसे कहूं लगार ।।२७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाभिराय तब हुलस्यौ चित्त । तरुण भए प्रभु परम पवित्र ॥
कांजै ब्याह सकल सुखरासि । बंदी जन की पूजैं आस ॥२८॥
ऐसे जगत जीव यह रीत । करैं सफल हिरदे धरि प्रीत ॥
इह प्रकार विरधै संसार । होइ प्रवर्त्तै लोकाचार ॥२९॥
तब प्रभुस्यौ विनवै मनुराय । तुमतो जगत पिता जिनराय ॥
आदि अन्त विनु वरतो सदा । जनम मरण कौ दुख न कदा ॥३०॥
जो मोहि दियो पिता पद ईस । तो मम वचन सुनो जगदीस ॥
पाणिग्रहन करौ धरि प्रीति । जगमें जोइ यह बाढें रीति ॥३१॥
लोक बढत नैं धर्म अधिकार । यह प्रभु जू कौ है उपगार ॥
जो मम बचन न करि हों कांन । पिता वचन की निश्चय हानि ॥३२॥
पुत्र सपूत कहावें तबैं । पिता बचन प्रतिपालै जबै ॥
तब प्रभु होनहार सब जांन । वैं कियौ फिर बहु सनमान ॥३३॥
नाभि नरेन्द्र फूल बहु भई । सकल नृपति के घर सुधि लई ॥
कच्छ महाकच्छ ए द्वै भूप । तिनिके द्वै दुहिता जु अनूप ॥३४॥
कच्छ तनी नंदा गनि बाल । नमि कुमार बेटो गूणमाल ॥
जस्ववती महाकच्छ की सुता । विनमि पुत्र सब गुण संजुता ॥३५॥
वैं हैं प्रभु कौ ब्याही राय । आनंद मंगलाचार कराय ॥
भोग विलास करत संतोष । तब सब भिराणी को कोष ॥३६॥
भरथराय आदि सो पूत । उपजे सुन्दर सुभग सपूत ॥
ब्राह्मी सुता पवित्र अवतार । पूर्व पुन्य लीयौ जु विचार ॥३७॥
अब सुनि दुतिय रागनी बात । नंदाराणी परम विख्यात ॥
पुत्र जन्यौ वाहूबलि नाम । सुता सुन्दरी गुण अभिराम ॥३८॥
यह विधि बढ्यौ परिग्रह घोर । एक तें एक प्रतापी जोर ॥
वानारसि नगरी कौ भूप । नाम अंकपन कांम स्वरूप ॥३९॥
सेनापति बडो सब कहैं । लाम नाथ वंश वेदता बहैं ॥
प्रभु के आइ चरण सिर नई । दर्श लहैं आनंद अधिकाई ॥४०॥
विनती करी जुगल करि जोरि । असरण सरण नाथ हों मोरि ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तनुजा मम गृह भई अभिराम । सुलोचना ताको है नाम ।।४१।।
भई वर जोग सुता वह ईश । देउं काहि भाषौ जनदीश ।।
तब प्रभु भावी काल विचार । भाष्यौ चलैं जगत व्योहार ।।४२।।
निजु ईछा काहूं को देइ । चक्रीमान भंग रस लेइ ।।
जो चक्री सब परनतु जाइ । तौ कैसे संसार घटाइ ।।४३।।

स्वयम्बर वर्णन—

मात पिता इच्छा गुण और । सबल निबल परिकरि हैं दोर ।।
तातें रच्यौ स्वयम्बर जाइ । तहां सकल नृप लेहु बुलाय ।।४४।।
वरमाला कन्या को देउ । पुत्री निज इच्छा वरु लेहु ।।
ताहि बरन कोऊ मानैं बुरो । ताको मान भंग सब करो ।।४५।।
इह सुनि भरथ परम आनंद । राजनीति भाषी जिनचन्द ।।
सुनि राजा अपनें घर गयौ । प्रभु भाषी सो करतौ लयौ ।।४६।।
देश देश के चाले राय । सुता स्यम्बर कौं ठहराय ।।
अर्क्क आदि भरथ सुत चले । कंदर्प्प रूप विराजै भले ।।४७।।
और सकल आये महिपाल । जिनदेखत नासैं उरसाल ।।
रचि विभूति अपनी सब तहां । आए सकल स्वयम्बर जहां ।।४८।।
कन्या के कर माला दई । आइ स्वयम्बर ठाढ़ी भई ।।
कन्याा के संग दासी दीन । सबके गुण जानत परवीन ।।४६।।
एक और तैं बरनती चली । नाम राजजु स्तुत करि भली ।।
भावी के बस पहुँची तहाँ । गजपुर धनी विराजैं जहाँ ।।५०।।
भरथ तनौ सेनापति सार । नाम तास है जयकुमार ।।
रतिपति देषत रूप लजाइ । बल उनमान कह्यौ नहिं जाइ ।।५१।।
कुरुवंशनि को नाथ प्रवीन । जाके राज न कोऊ दीन ।।
सुलोचना देख्यौ वह रूप । कंठ करि वरमाल अनूप ।।५२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जय जयकार शब्द तब भयो। जयकुमार उत्तम वर लयो ।।
सकल नरेश चले निज गेह। उपज्यौ कोह अक्कं के देह ।।५३।।
प्रभु देषित क्यों सेवा करें। दीठ पनौं क्यौं देषी परैं ।।
दयो निसान जुद्ध कै काज। लेउ छुड़ाइ मंगे तरु आज ।।५४।।
तब मंत्रिनि मिलि यह बुधि दीन। पहले पठऊं दूत प्रवीन ।।
मांगे देइ जुद्ध मति करो। नहि तो मनवांछित आदरो ।।५५।।
पठयो दूत ततक्षिण तहां। जयकुमार बैठो जहां ।।
दूत वचन सुनि वह परजरयौ। मानो अगनि में पूलो परयौ ।।५६।।
सुन रे दूत मूढ़ मति मंद। अविवेकी भयो प्रभु को नन्द।
यह मरजाद पितामह तनी। तोरयौ चाहत धरि सिरमनी ।।५७।।
भरथ सुनैं दुउ पावें घनौं। क्यों निज प्रभुता चाहै हन्यौ।
हम सेवा तोहि लौं करैं। जों लौ नीति पंथ पग धरैं ।।५८।।
लोप्यो चाहै जो इह रीति। तो मोसों नहिं सकि है जीति ।।
वह नहिं जानत हे वलवंत। जानें भरथ राय गुणवंत ।।५६।।
पर्वत गुफा फोरि मैं दइ। भव छह खंड तनी जय भई ।।
काहे हो राणों अग्यान। क्यों मिलि हैं जु बरी बलवान ।।६०।।
दूत गयो फिर जहां कुमार। सुनि ता बचन भयो असवार ।।
आनि जुद्ध कीनौ परचंड। जयकुमार तब दीनौ दंड ।।६१।।
अर्ककुमार बांधि ले गयौ। करि विवाह निजु घर ले गयो ।।
ह्वां ते कुंवर दयो तब छोडि। आदर सों दयो लच्छ करोडि ।।६६।।
भरथ निरषि सुत कीयौ धिकार। करै सु पावैं यह निर्द्धार ।।
जयकुमार को कियौ पसाव। हय गय देश बहुत सिर पाव ।।६३।।
राजनोति तुम कीन्ही सही। नतर कुवात बिचरती मही ।।
सेवक सुत सम तजो जानि। जो प्रभु की मेटैं नहिं आंनि ।।६४।।
तब तैं यह जग बरती रीति। करें स्यम्बर नृप धरि प्रीति ।।
जाहि वरैं सोही ले जाइ। फिरि न ताहि कोउ सकै सताइ ।।६५।।

इति स्यम्बर नीति वर्णनं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूर्व लाष त्रेसठि लौं जानि । करयौ राज श्री कृपानिधान ।।
या अंतर इक दिन जिन राज । बैंठे हुते सभा सुख साज ।।१।।
नीलंजना नटी कौ नांम । नृत्ति करण आई वह ठाम ।।
वीन उपंग वांसुरी वाजैं । डांडी यंत्र अमृती राजैं ।।२।।
सुर मंडल बाजैं घन तनी । सारंगी पिनाक बहु भनी ।।
जलतरंग अमृत कुंडली । कुंभर वाव मिलैं ध्वनि भली ।।३।।
ए बाजे सब बाजन लाग । तब मिलि जु अलापहिराव ।।
प्रथम सप्त स्वर साधि जु लीन । पुनि मिलिं सकल सुर एक कीन ।।४।।
रंगभूमि पातुरि पग धरयौ । रव संगति बदन उचरयौ ।।
सुर सुर कुम कुम धमपि बोलैं । तार धार संग लागैं ठोलैं ।।५।।
तत थेई तत थेई तत करैं । ततकि ततकि मुषतें उच्चरैं ।।
अंग मोरि भंवरी जब लई । परि धरिवि मृतक ह्वैं गई ।।६।।
परमहंस दूजी गति गयौ । देखत सबनि अचंभो भयौ ।।
प्रभु वा मरण विचारयौ चित्त । उर उपज्यौ वैराग्य पवित्त ।।७।।

बारह भावना वर्णन

दोहरा

अध्रुव असरण जग भ्रमण, एक अनंत अशुद्ध ।
आश्रव संवर निर्जरा, लोक धर्म दुर्लभ ।।८।।
ध्रुव वस्तु निश्चल सदा, अध्रू भाव पज्जाव ।
स्कंध रूप जो देखियें, पुद्गल तनौं विभाव ।।९।।

चौपई

जिते पदारथ वल्लभ जांनि । गगन नगर सम गणौ समान ।।
धन जोबन जल पटल जु होत । सजन नारि सुत तडित उदोत ।।१०।।
जल बुद बुद जो वरतें सदा । विनासीक थिर नाहीं कदा । ।
इनसौं जहाँ न उपज्यो मोह । कहै भावना अथिरण सोइ ।।११।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहरा

असरण वस्तु जु परिणमन, सरण सहाई न कोइ।
अपनी अपनी सक्ति कैं, सवैं विलासी जोइ ॥१२॥

चौपई

मरण समें कायरता त्यागी। रत्नत्रय के मारग लागी॥
पुष्यनाल कुम्हलाई देव। करितु फिरैं सबही के सेव ॥१३॥
राखि सकैं नहीं कोऊ ताहिं। सरणाक जोहें वपु माहिं॥
ताके सरणात कैं मुनिराव। इह असरण भावना कहाव ॥१४॥
अरहंतो असलीमत्वो तारण लोया। इदीह संसारे मग्गइं॥
देसाइं कुसुलाइ, जे तरंति तेम मालगाई ॥१५॥

दोहा

संसार रूप कोऊ नहीं, भेद भाव अग्यान॥
ग्यांन दृष्टि करि देखिये, सब जिय सिद्ध समान ॥१६॥

चौपई

परग्रहण जहां प्रीति बहु होइ। भांति भांति के दुख सुख जोइ॥
चारचौं गति में हिंडतु फिरैं। स्वांग लाख चौरासी धरैं ॥१७॥
जो स्वछन्द वरतें त्रय काल। ता स्वभाव दीजें दृग चाल॥
डरि दई सब पुदगल रीति। तब संसार भावना प्रीति ॥१८॥

दोहा

एक दिसा मानिजु देखि कैं, आपा लेहु पिछान॥
नाना रूप विकलपना, सोतो परकी जांनि ॥१९॥
बोलत डोलत सोवता, थिर मानें जग भांति॥
आप स्वभाव आप मुनि, जित तित अनु अनभांति ॥२०॥

चौपई

फरि जन्म धरचौ मरहै कौंन। क्षिन में बिनसि जाइ ज्यौं लौन॥
स्वर्गं नरक दुख सुख कौं सहैं। मुक्ति सिला पर जाइ जु रहैं ॥२१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ए सब जीव द्रव्य के खेल । पुदगल सौं नहीं दीसै मेल ।।
वल बीरजु सुख ज्ञान महंत । सहजानंद स्वभाव अनंत ।।२२।।
धरचौ ध्यान जोऊं ता रूप । सदा अकेलो विमल स्वरूप ।।
जहां जू जाको होइ अभाव । एकतानू भावना कहाव ।।२३।।

दोहा

अन्न अन्न सत्ता धरें, अन्न अन्न पर देश ।।
अन्न अन्न तिथि मांइला, अन्न अन्न पर वेश ।।२४।।

चौपई

तू नित अन्य जीव सब काल । पुदगल अन्य परिग्रह जाल ।।
संपे पुत्र कलित्र शरीर । कोइ न तेरो सुनि बल वीर ।।२५।।
या दिन हंस पयानौ करैं । संगी ह्वै कोऊ न संग धरै ।।
जहिं सेवग साहिब नहीं मांन । अनंतातू भावना कहांन ।।२६।।

दोहा

निर्मल गति जो जीव की, विमल रूप त्रियकाल ।
अशुचि अंग जो देखियें, पुंज वरगना जाल ।।२७।।

चौपई

अशुचि खांनि कहियैं यह देह । तासौं जीव कहां तोहि नेह ।।
रक्त पीवरु मूत पुरीख । इनि सौं भरी सदाई दीख ।।२८।।
हाड चाम केशनि के झुंड । यातें नेह नर्क को कुंड ।।
या सों जीव रचे नहीं जहां । अशुचि अंग बखानैं तहां ।।२९।।

दोहा

ज्यौं सवछिद्र नौका विषैं, आवैं चउदिशि नीर ।।
त्यौं सत्तावन द्वार ह्वैं, होइ जु आश्रव भीर ।।३०।।

चौपई

जो परद्रव्य तनौ है सार । राग द्वैषरु करण स्वभाव ।।
वसु मंद औ संकल्प विकल्प । सकल कषाय ग्यांन गुण अल्प ।।३१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपजै इनके कर्म अनेक । सो सब पुदगल तनो विवेक ।।
इणें छांडि जिन आपा गनें । आश्रव भाव सकल तब वमै ।।३२।।

दोहा

छिद्र मूदिए नाव के, बहुरि न जल परवेश ।
सचो सूचो काल बल, संवर को यह भेष ।।३३।।
इह जिय संवर आपनो, आपा आप मुनेय ।
सो संवर पुदगल तनो, करम निरोध हि हेय ।। ३४।।

चौपई

आवत देखें जल ही अपार । तब जिय ऐसी बुद्धि विचार ।।
मूंदे सकल नाव के छिद्र । राग दोष जल करें न षद्र ।।३५।।
करण विषैं मद आठ प्रकार । इनि तजि अपनी करे सम्हारि ।।
ह्वै किरिया तब षेंचै नाव । संवर तनो कहावै भाव ।।३६।।

दोहा

वियोगी अपने वियोग सौं, न्यारो जानत जोग ।
याकें देख न सकति हैं, वा गुण धारण जोग ।।३७।।
इह योगी की रीति है, मिलि करें संजोग ।।
तासौं निर्जर कहत हैं, बिछुरण होइ वियोग ।।३८।।

चौपई

जनम जनम जे जोरे कर्म । अब जानौं इनको गुण मर्म ।।
ता नासन को उद्दिम रच्यो । चारित बल रीति तब पच्यो ।।३९।।
उष्ण काल गिरि पर्वत बास । सीत समें जल तट हि निवास ।।
वर्षा ऋतु तरुवर के तलैं । सहैं परीसह नेकु न हलैं ।।४०।।
मन चंचल को थांभे घोर । इन्द्री दंड देइ अति जोर ।।
पूरब कृत थिति पूरी होइ । आगें बहुरिण संचै कोइ ।।४१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह पुदगल निर्ज्जर की रीति । निश्चय नय जब आतम प्रीति ।।
तजें जीव परबुद्धि प्रसंग । यह निर्ज्जर भावना सुरंग ।।४२।।

दोहा

सकल द्रव्य तिथ लोक में, मुनि के पटतर दीन ।
जोग जुगति सौं थापना, निश्चय भाव धरीन ।।४३।।

चापई

तीन लोक सब पुरुषाकार । चौदह राजू उचित विचार ।।
जुगपद ए निगोद हैं दोइ । पिंडुरी नर्क सात अवलोइ ।।४४।।
घम्मा वंसा मेघा जांनि । अंजन अरिठा मघ्य हैं ठाम ।।
मघवा सप्तम नर्क्क विचार । आव तीनि तीस निघिवार ।।४५।।
जंघस्थान परे थल चारि ।द्वीप नाग औ असुर कुमार ।।
वसे भवनवासी तिहिं ठोर । ऊपरि मध्य लोक की दोर ।।४६।।
उदर समान कह्यो भुवि लोक । अगनित द्वीप समुद्र को थोक ।।
ज्यौं पंजरहें लंगराकार । त्यौंही सो रहैं सुरग विचार ।।४७।।
प्रथम सौधर्म्म ईशान जु दोइ । सनतकुमार माहेन्द्र है जोइ ।।
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर दो अभिराम । लांतव और कापिष्ट सु नाम ।।४८।।
शुक्र महाशुक सुर गेह । सतार महासतार गनेह ।।
आनत प्राणत ए सुरधाम । आरण अच्युत षोडस नांम ।।४९।।
वक्ष स्थान है ग्रीवक तीन । अद्यो मध्य ऊरध परवीन ।।
नवनवोत्तर कंठ स्थान । एक भवांतरी तहां जान ।।५०।।
तापर पंचानोत्तर नाम । अहिमिंद्रनि के पांच विमान ।।
सो कहियें सरवारथ सिद्धि । बदन ठौर जानियो प्रसिद्ध ।।
मुक्ति स्थल ललाट पर गनौं । लोकाकाश यहि तुम भणौं ।।५१।।
धिय घलेन बेढयौं केम । छालि लपेटयो तर वर जेम ।।
घनाकार है तासु विसाल । रज्जू तीनसें और तेताल ।।५२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छहौं द्रव्य करि यो भरि रह्यौ । ज्यौं घृत परि पूरण घट धरचौ ॥
यातैं अपर अलोकाकाश । तहा सदा ही सुन्नि निवास ॥५३॥
यह अनादि की थिति अवतार । करता तासुन को निर्द्धार ॥
निवसे सिद्धि रूपता सीस । जीव सदैव द्वै आप शरीस ॥५४॥
तजो अजोग ठौर जिय जांन । तब लोकानुभावना वखांन ॥
आयु छांडि जो चिर मैं अंत । तो न बने लोकानु संतु ॥५५॥

दोहा

धर्म करावें और करें, क्रिया धर्म्म नहीं और ।
धर्म्म जु जानु जु वस्तु हैं, ज्ञान दृष्टि धरि सोइ ॥५६॥
करन करावन ज्ञान नहिं, पढन अर्थ इह और ।
ज्ञान दृष्टि बिनु ऊपजैं, मोप तरनी जु झकोर ॥५७॥

सोरठा

धर्म न कियें स्नान, धर्म न काया तप तपैं ।
धर्म न दीये दांन, धर्म न पूजा जप जपैं ॥५८॥

दोहरा

दान करो पूजा करो, जप तप दिन करि राति ॥
जानन वस्तु न वीसरों, यह करणी बड़ बात ॥५९॥
धर्म जो वस्तु स्वभाव है, इह जानो जो कोइ ।
ताहि और क्यों बूए, सहज ही उपजै सोइ ॥६०॥

चौपई

छिमा आदि जो दश विध धर्म्म । षोडशकारण शिव पद मर्म ॥
दान विना पूजदिक भाव । नव्योहार धर्म जु कहाव ॥६१॥
जौं लौंहें सराग चारित्र । तौं लों इन गुण महा पवित्र ॥
वीतराग चरित्र जब होइ । आपुकौं आप मुनैं सब कोइ ॥६२॥
यह धर्म भावना विचार । करतें भवदधि पावै पार ॥
इह अनादि को व्यापक अंग । कोऊ तजो मति धर्म प्रसंग ॥६३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोरठा

दुर्लभ पर को भाव, जाकी प्रापति ह्वै नहीं ।
जो आपनो स्वभाव, सो क्यों दुर्लभ जानिये ॥६४॥

चौपई

जब जिय चरतें मध्य निगोद । दुर्लभ सप्तम नरक विनोद ॥
जब आवें सातों पाथरे । एकेन्द्री दुर्लभ मन धरें ॥६५॥
एकेन्द्री यह करें सदीव । पानी तेज वाय के जीव ।
सात सात लाष परजाय । बनस्पति दश लाष गनाइ ॥६६॥
प्रथ्वी काइ सात लख जानि । चौदह लाख निगोद बखांन ॥
तामें इत निगोदी सात । उनिके दुषनि की अगनित बात ॥६७॥
ज्यों लुहार कौ सडसो आहि । कबहूं अगनि कबहूं जल मांहि ॥
सेष सात लष इतर निगोद । अब सुनि उनके दुष विनोद ॥६८॥
सास उस्वास एक में सार । जामन मरण अठारह बार ॥
वायु तनी संष्या नहीं तास । एकेन्द्री शरीर दुष रासि ॥६९॥
सब मिलि एकेन्द्री की जाति । थावर पंच प्रकार विख्यात ॥
तामें भुव जल हरित जु तीन । कहैं अनंत काय परवीन ॥७०॥
मसूरी दारि तनें परमांन । रहे जीव तिनिके सुख मानि ॥
वै जो जीव होइ मरि कोक । तौ भरि उपलटैं तीनौं लोक ॥७१॥
र्सति इन्द्री दुर्लभ होइ । द्वै लख जाति तासु की जोइ ॥
यों घास खुलासा पग डारि । लाट गडोई की उनिहारि ॥७२॥
रसना दोई इन्द्री गनी । श्री जिन आगें ऐसी मनी ॥
यातें इन्द्री दुर्लभ तीनि । द्वै लख जाति ठीकतादीन ॥७३॥
जोंक मांकड बीछू आदि । देह नाक रसना को स्वाद ॥
यातें चौइन्द्री गति दूरि । द्वै लख जाति रही भरिपूर ॥७४॥
वर डांस माखी रु औरु कांग । भृंगी भवरी कीट पतंग ॥
रसना नाक आंखि औ देह । चौइन्द्री को विवरण एह ॥७५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जे सब मिलि अट्ठावन लाख । लाख छवीस पंचेंद्री भाषि ।।
त्रस चारि बिनु हाड न होइ । बेइन्द्री लौं जानें सोइ ।।७६।।
ताहू में सम्मूर्छन गनां । यौं कहि गए सकल गुनि गना ।।
तामें चौदस लख नर जाति । चारि लाख तिरयंच विख्यात ।।७७।।
ताहू में ब्यौंरें परवीन । जलचर नभचर थलचर तीन ।।
नभचर सब पंक्षि पहिचानि । जलचर मीनादीक बषांनि ।।७८।।
सर्प्य चतुष्पद पशु औतार । ए सब थलचर नाम विख्यात ।।
लांख चारि गति देवनि तनी । सोऊ चारि भेद करि सुनी ।।७९।।
भवनवासी कल्प जु दोइ । ज्योतिग व्यंतर सु होइ ।।
कल्पवासी स्वर्गनि में रहैं । सुखसों सकल आपदा दहैं ।।८०।।
दशविधि भवनवासी सुर जानि । पृथक पृथक गुण कहौं बखानि ।।
पहलें असुरकुमार हें जोइ । दंड देहैं नरकनि कों सोए ।।८१।।
नागकुमार दूसरे रहैं । तिनिसौं अष्ट कुली जग कहैं ।।
विद्युत वीजो नाम कहंत । चपला दामिनि जों चमकंत ।।८२।।
सुपरण चौथो नाम बखांन । अगनिकोल पंचम सुर जांनि ।।
षष्टम वात बखानी सही । जातें अधिक प्रवल वल मही ।।८३।।
सप्तम संतति देव बिचार । जो नभ मंडल गर्जय सार ।।
अष्टम आवध नाम जु धरयो । जासौं कहैं वज्र भुवि पर्‌यो ।।८४।।
नवमौं दिव्य ध्वनि आदेव । दशमें दश दिगपाल गनेय ।।
ज्योतिग देव तनौ परिवार । रवि शशि आदि पंच प्रकार ।।८५।।
ग्रह नक्षत्र तारांगन सुनो । ऊँचे चलें ताहि अव भणों ।।
पृथ्वी तें जोजन सें तात । और नगें ऊँची अधिकात ।।८६।।
रतन जटित ज्योतिगी विमान । तिनिकी ज्योति चमक परवान ।।
शशि विमान अंजन मनि लसैं । ताऽतिबिंब चन्द्रवपु ग्रसैं ।।८७।।
वह स्यामता निरष मति मंद । थाप्यो जगत कलंकी चंद ।।
पंथ चलित आप पर घसौं । तिनितें अगनि कोल भुव विषैं ।।८८।।
मरयो देव कुमति यों कहैं । और टरयो तारो सब कहैं ।।
राहु केतु द्वै ग्रह ए स्याम । निकट न हों रवि शशि के धाम ।।८९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वं रवि शशि इनि ऊपरि भलें । जोजन एक अधो ए चलें ॥
शशि अरु केत दोऊ एक जोट । दयो चलें छाया की ओट ॥९०॥
ज्यों ज्यों छाया छूटति जाइ । त्यों त्यों चन्द्र विमल प्रगटाइ ॥
पून्यों के दिन केतुम अंग । सोहत पूरण कहा मयंक ॥९१॥
यहां काहू जिय संशय भई । श्री गुरु सौं उन विनती ठई ॥
सूनियो जो पून्यौं को नाथ । केतु तजे हिमकर । को साथ ॥९२॥
तौ काहू तें चन्द्र अनूप । कबहूं कबहूं स्याम सरूप ॥
तब गुरु कहैं सुनो बुधिवंत । कहों प्रगट जो कही सिद्धन्त ॥९३॥
ता दिन दवैं राहू की छांह गहन कहैं अवनी सब मांहि ॥
ताको भेद कह्यो निरधार । ज्योतिग ग्रन्थनि के अनुसारि ॥९४॥
फिरि परिवा तें दावें केतु । छाया तरउ पति कौं लेत ॥
मावस के दिन सुनौं प्रवीन । दीसें हिमकरि कला विहीन ॥९५॥

दोहरा

रवि शशि सूरह सत्तमौं, होइराय एकंत ।
चन्द्रग्रहण तब होइसी, वाददहि वरीय संत ॥९६॥
जासु नक्षहि रवि बसें, तासु अमावसु होइ ॥
राहु सूर सो जब मिलें, सूर ग्रहण तब होइ ॥९७॥

चौपई

अब सुनि व्यन्तर देव विचार । कहिये सकल अष्ट परकार ॥
किंनर औ पुरुष बिरांम । गंधर्व और महोरग नांम ॥९८॥
राक्षस जक्ष पिशाच रु भूत । इहि विधि देव कहैं गुण जूत ॥
नारक गति लाख जु चारि । लाख चौरासी सब मिलि सार ॥९९॥
निकसि पाथरिनि बाहिर परे । तिर्यंग सुख दुर्लभ अनुसरे ॥
तिर्यंग कौं दुर्लभ नर देह । तिनिकौं दुर्लभ खंग सुर गेह ॥१००॥
ए दुर्लभ लहि भटक्यो सदा । श्रावक कुल उपज्यो नहिं कदा ॥
कबहूं धरयो नंपुसक रूप । तातैं दुर्लभ नारि स्वरूप ॥१०१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नारी भएं अधिक दुख खांनि । दुर्लभ पुरुष वेद प्रधान ॥
कर्म शभाशुभ उदैं प्रमाण । पायौ नर शरीर शुभथांन ॥१०२॥
सत गुरु मुख सुनियौ उपदेश । जान्यौ निज स्वरूपको भेस ॥
....रस विक्रिय क्षेत्र क्रिया सार ॥१०३॥
तामें प्रथम बुद्धि रिद्धि कहो । भेद अठारह तामें लहौं ॥
केवल अवधि जानियौ दोइ । मनपरजय तीजी अवलोय ॥१०४॥
अव दुर्लभ शिव सरवर तीर । जामें विषैं रहित शुचि नीर ॥
अव वह नीर हियौ जिय जाइ । कर्म्म आताप सकल बुझि जाइ ॥
लेन न जाउ कहूँ तुम दूरि । आतम ताल रह्यौ भरपूरि ॥१०५॥
तू जिय निर्मल हंस सुजांन । और न कोऊ ताहि समान ॥
पीवत लहै मुक्ति पद घोर । यह दुर्लभ भावना झकोर ॥१०६॥

दोहा

ए शुचि बारह भावना, जिनतें मुक्ति निवास ।
श्री जिनवर के चित्त में, तबही भयो प्रकाश ॥१०७॥

इति बारह भावना

ऋषभ देव गृह त्याग वर्णन

चौपई

तब आए लौकांतिक देव । कुसुमांजलि दे कीनी सेव ॥
पंचम सुरग है सु विशाल । यह नियोग आवैं तिहिकाल ॥१॥
जग अनित्य ताकी सब रीति । वरन सुनाऊ महा पुनीत ॥
तुम प्रभु हों त्रिभुवन के ईश । शक्र दिवाकर हो रजनीश ॥२॥
प्राणनाथ अविचल गुणवृन्द । अनभो ईडित मोल अमंद ॥
अगम अघट अध्यातम रूप । गिरातीत औ अलख अनूप ॥३॥
केवल रूपी करूणाकार । नित्यानंद रहित अविकार ॥
इहि विधि वहु स्तत परकार । श्री जिन आगैं बरनी सार ॥४॥
जो वह बुद्धि न प्रभु कौं होइ । जगत जीव निस्तरेइ न कोइ ॥
प्रभु समुझाइ गए निज धांम । तब जिनराज महाबल साम ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भरतराय को लियो बुलाइ । सौंप्यौ राज भार समुझाइ ॥
सकल देश बांटत तब भए । बाहूवलि पोदनपुर गए ॥ ६ ॥
और सुतनि जो जो चाह्यौं ठोर । बाटि दीयौ स्वामी सिरमोर ॥
इतनें अंतर और जु देश । थापें प्रभुनें अपर नरेश ॥८॥
भरथ तनी सेवा मनि धरै । अज्ञा भंगन कोऊ करै ॥
प्रथम ही चक्रवर्त्ति भरतेश । सार्वे षंड छहूंनि के देश ॥९॥
इहि विधि सबकौ करि सनमांन । जोगारूढ होत भगवांन ॥
सविकार चित्र विचित्र आनियौ । चैत बदि नौमी को जानियौं ॥१०॥
तामें बैंठा श्री जिनचंद । नाभि नरेश धरे निजु कंद ॥
सात पैंड लों वे चले । भाव सहित मन अति ऊजले ॥११॥
सुर नर देव सकल अभिराम । ले गए नंदन वन अभिराम ॥
इंद्रनि कियौ अति उछव तबैं । जय जयकार उच्चरे जबैं ॥१२॥
वट तरवर वहां परम पुनीत । तातरि रिद्धि तजि भए अतीत ॥
नमः सिद्ध मुख तें उच्चरयौ । पंचमुष्ठि लोंच तब करयौ ॥१३॥
मंडे पंच महाव्रत घोर । त्यागौ सकल परिग्रह जोर ॥
मणिमय भाजन में धरि केश । क्षीर समुद्र में डारत भयौ ॥१४॥
पुष्कराद्धं पर पहुंच्यौ जबै । न्योहर गए करतें कच सबैं ॥
भाव द्रव्य ले मघवा गयौ । षीर समुद्र में डारत भयौ ॥१५॥
नाषि चिहुरसो निज पद जाय । संजम वल प्रभु अधिकाय ॥
संजम तें मनपर्यय ज्ञान । प्रभु के हृदय भयौ सुख खांनि ॥१६॥
मौंन सहित तपु करत दयाल । तहां वीत्यौ तब किंचिन काल ॥
प्रगट भई आप वसु रिद्धि । श्री जिनवर की परम प्रसिद्धि ॥१७॥
अब सुनि पृथक पृथक गुण तास । होइ सकल मिथ्यामत नास ॥
बुद्धि औषधी बल तप चार । रस विक्रिय क्षेत्र किया सार ॥१८॥

बद्धि औषधी बल ऋद्धि—

तामें प्रथम बुद्धि ही रिद्धि । अठारह तामें लहों प्रसिद्ध ॥
केवल अवधि जानियौ दोय । मनपरजय तीजी अवलोय ॥१९॥
बीज चतुर्थम पंचम गोष्ठ । षष्टम संभिन्न श्रोष्टता सोष्ट ॥
सप्तम पादार सारिणी बुद्धि । दूरस परसन अष्टम शुद्ध ॥२०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दूरा रसन नवम बुद्धि जांन । दूरा घ्राण दशम बखांन ।।
चतुर्द्दश पूरब तेरम गनी । प्रत्येक बुद्ध चौदहीं भनी ।।
निमित्त ग्यांन पन्द्रही अनूप । बाद बुद्धि षोडशमें स्वरूप ।।२२।।
प्रग्या हैतु सत्रही विचित्र । दश पूर्वा अष्टा पद पवित्र ।।
अब वरणौं सबके गुण जुदे । जाके सुनत होइ मन मुदे ।।२३।।
केवल रिद्धि कहावै सोइ । जहाँ सर्व दृष्टि जिन होय ।।
तीन लोक प्रतिभासे जेम । जल की बूंद हस्त पर एम ।।२४।।
अवधि बुद्धि कौ कारण यहै । गत आगत भव सात जु कहै ।।
बिनि पूछैं नहीं अवदात । कहैं जब कोऊ पूछै वात । २५।।
सोइ अवधि तीन परकार । देश परम सरवावधि सार ।।
देश एक की मानें बात । सो देशावधि नाम विख्यात ।।२६।।
मानुषोत्र लौं वरने भेद । परमावधि जानैं जिषवेद ।।
तीन लोक संबंधी कहै । सर्वाविधि ऐसो गुण लहै ।।२७।।
मनपरजय जब उपजै भेद । मन विकार तजि निर्मल शुद्धि ।।
सबके मनकी जानैं जीय । जैसी जाके वरते हीय ।।२८।।
वाहू में द्वै भेद बखांन । रिजु विपुल भाखें भगवान ।।
सबके मन को सरल स्वभाव । रिजुमति बारै को जु लखाव ।।२९।।
सूधी टेढ़ी सब जानई । विपुलमति ताकौ मानई ।।
बीज बुद्धि जब उदय कराइ । पठत एक पद श्री जिनराय ।।
पद अनेक की प्रापति होइ । यह वा बुद्धि तनो फल जोइ ।।
एक श्लोक अर्थ पद सुनें । पूरण ग्रन्थ आपतें भनें ।।३१।।
रह्यौ न भेद छिप्यौ कछु तहां । कोष्ठ बुद्धि प्रगटत है जहां ।।
नव जोजन की है विस्तार । बारह जोजन लाम्रो सार ।।३२।।
चक्रवर्त्ति दल जितक प्रमाण । देश देश के नर तहां जान ।।
एक ही वेर जो बोलें सबै । पहिचानैं सब के बच तबैं ।।३३।।
संभिण श्रोष्टता बुद्धि विशेष । प्रतक्ष प्रगटैं ऐसे गुण दोषि ।।
आदि को एक अन्त की एक । पढ ग्रन्थ पद सुनौं विवेक ।।३४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होइ समस्त अर्थ को ज्ञान । कंठ पाठ सब ग्रन्थ बखान ॥
एह पादुनासारिता बुद्धि । जिनवानी तें पाई सुद्धि ॥३५॥
गुरु लघु रूक्ष उष्ण जो सीत । तिक्त कटुक चिक्कन रस रीति ॥
आठ प्रकार जिनेश्वर कहैं । सपरसन रस इन तें गुण लहैं ॥३६॥
द्वीप अढाई ते जु अभंग । परसे रिद्ध धनि के अंग ॥
इह मरजादा पर उतकिष्ट । जोजन नो तैं गणो कनिष्ट ॥३७॥
सब गुण जुदे कहन को इच्छ । दूरी परसन बुद्धि प्रतक्ष ॥
मीठो करुवौ औ चरपरो । चिकनौ और कसेलौ धरे ॥३८॥
रसन भेद ए वरणौं पांच । दीप जुगल अर्थ तेलहि सांच ॥
जो कोऊ सब खोलइ तहां । खाद वखांनैं रिद्धि वल इहां ॥३९॥
दूरा रसन बुद्धि बलवंत । जिन आगम भाषित अरहंत ॥
दुर्गंधा अरु परम सुवास । ए नासा के परम विलास ॥४०॥
पूर्व्वरीति जानें रिद्धिवांन । यह कहिये बुद्धि दूरा घ्राण ॥
रिसभ निषाद गंधार बखांन । षडज औ मध्य धैवत जान ॥४१॥
पंचम सकल मिले सुर सात । सुनि इनके प्रगटन की जात ॥
पुरुष नाभिख रिष भगवान । सुर निषाद नभ गरज प्रमान ॥४२॥
पंचम कंठ कोकिला जेम । सप्तम सुर जु उचारे एम ॥
कहां कहां प्रगटैं सुर सात । पच शब्द कहिये विख्यात ॥४३॥
प्रथम शब्द जो चर्म बजंत । दूजा फूंक तीसरी तन्त ॥
चौथी झांझि मजीरा ताल । पंचम जल तरंग को ख्याल ॥४४॥
पूर्व रीति तें दोइ लखाव । दूरा श्रवन बुद्धि परभाव ॥
श्वेत पीत अरु रक्त सुरंग । हरित कृष्ण गुरु चक्षु अंग ॥४५॥
वाहा भांति दूरतें ग्यांन । रिद्धि दुराव अवलोकन जांन ॥
दश पूरव अरु ग्यारह अंग । विनुम सकति विष्वाजा अंग ॥४६॥
रोहिणी आदि पंचसो जांनि । क्षुलक आदि सातसौं मांनि ॥
ए देवी सब ता ढिग आव । करें कटाक्ष हाव अरु भाव ॥४७॥
तिनिकौ चचंल चित्त कदा । करत आघें न होइ थिर सदा ॥
अर्थ सकल मुख कहौं विचार । दशपूर्व बुद्धि के अनुसार ॥४८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जहाँ चतुर्द्दश पूरव पढ़े । ग्यारह अंग विना श्रम बढ़े ॥
बुद्धि चतुर्द्दश पूरव एह । सोहैं रिद्धवंत की देह ॥४९॥
संजम औ चरित्र विधान । बिनु उपदेशनि दुहुनि के धांम ॥
दया दमन इन्द्री तप घोर । इह प्रत्येक बुद्धि को जोर ॥५०॥
इन्द्र आदि को विद्यावांन । आवैं वाद करण धरि मान ॥
उत्तर प्रथम रहैं सब मनी । इह बल वादि बुद्धि के धनी ॥५१॥
तत्त्व पदारथ संजम संतु । तिनिके सूक्ष्म भेद अनन्त ॥
द्वादशांग बानी विनु कहैं । प्रग्या बुद्धि होइ गुण लहैं ॥५२॥

दोहरा

अन्तरीक्ष भौंमंग सुर व्यंजन लछिन छिन्न ।
स्वपन मिलैं जब देखिये, आठ निमत्तम अन्न ॥५३॥

चौपई

सूर सोम ग्रह नक्षत्र प्रशस्त । तिनिको ग्रहन अरु न उदयस्त ॥
शुभ अरु अशुभ जानत फल तास । अतीत अनागत सकल प्रकास ॥५४॥
वर्त्तमान जैसो कछु होय । अन्तरीक्ष को वर्णन सोइ ॥
निमित्त अंग पहिलो यह भलौ । अन्तरिक्ष कहियें निर्म्मलो ॥५५॥
छिपी वस्तु जो भूमि मझार । द्रव्य आदि नाना परकार ॥
जथा जुगति सौं देय बताइ । स्वयं बुद्धि पर कौन सहाय ॥५६॥
भूमिकंप फल वरतें जेम । सब विधि वरण सुनावैं तेम ॥
भूमि भेद कछु गोप्य न रहैं । भूमि ऐसो गुण कहैं ॥५७॥
नर तिरयंच अंग प्रत्यंग । तिनिके दरसय परस अभंग ॥
दुख सुख सब कऊन जानइ । वैद्यक सामुद्रिक मानइ ॥५८॥
करुणाजुत भाषैं उपचार । सब जग पर उनिको उपगार ॥
लक्षण प्रगट कोप ग्यांन । अंग नाम ऐसो गुण जान ॥५९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३४२८

खग चौपद की भाषा जेती । प्रगटै आंनि हृदय सो तेती ।।
तिनितैं जो कछु भावी काल । प्रगट बखान्यो दीन दयाल ।।६१।।
सुख दुख को आगम यही । अब जग सगुण कहावै सही ।।
इह निमित्त को चौथो भेद । सुर कहि नाम वखांनें वेद ।।६२।।
निलम से औ लसन है आदि । सामुद्रिक तें जुदे अनादि ।।
तिनिके फल को पूरण ज्ञान । व्यंजन अंग तनौं गुण जांनि ।।६३।।
श्रीवच्छादि लांछण लीक । अष्टोत्तर सौ तिनिकौं ठीक ।।
कर पतरत शुभा शुभ जेम । लक्षण केवल भाखें तेम ।।६४।।
वस्त्र शस्त्र उमापति छत्र । आसन सेनादिक अरु वस्त्र ।।
राक्षस सुर नर अन्स मंझार । मूषक कंटक शस्त्र पहार ।।६५।।
गोमय अगनि बिनासो होइ । शुभ औ अशुभ तास फल जोइ ।।
प्रगट वखांनैं संसे नांहि । यह अधिकारी छिन के मांहि ।।६६।।
सकल पदारथ जो जग रचे । जब वे आइ स्वपन में षचे ।।
तिनिमें प्रगट सुख औ ताप । वरणि सुनावैं स्वपन प्रताप ।।६७।।
इह विधि जे अष्टांग निमित्त । बरण सुनावैं तहां पवित्त ।।
सबकी संसे खावैं घोर । बुद्धि निमित्त प्रतिग्या जोर ।।६८।।

दोपरा

इह अष्टादश अंग जुत, । बुद्धि रिद्धि गुण गेह ।
विमल रूप प्रगटैं सदा, आइ तपोधन देह ।।६९।।

इति बुद्धिऋद्धि वर्णनं

अथ औषधी रिद्धि वर्णनं

चौपई

अब सुनि रिद्धि औषधी भेद । अष्ट प्रकार बखांनी वेद ।।
विटुमल आमज्जल शूल अंग । सर्व दृष्टि विष महा अभंग ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिनिकी विष्टा लेपैं गात । सकल रोग को होई निपात ।।२।।
निर्म्मल अमल निरोग शरीर । विट प्रताप यह परम गंभीर ।।
दांत कान नासा को मैल । देखत रोग सबै गहै गैल ।।३।।
सकल धातु की होइ कल्याण । मल प्रताप यह ररम गंभीर ।।
रोग ग्रसत औदारिइ हन्यौं । भागहीन चिंता करि सुन्यौं ।।४।।
हाथ छुवत सावासव छोर । आम अंग की ह्यांलोदीर ।।
श्रमजल में रज जागे अंग । सुख साता दुखहरण अभग ।।५।।
टलें असाता लागत देह । जल्ल अंग है सब सुख गेह ।।
लार षषार थूंकि ते जानि । व्याधिहरण औ धातु कल्यान ।।६।।
पूरण करैं मनोरथ महा । थूल अंग गुण उत्तम कहा ।।
परसें अंग तो आवै ठाइ । जिनको लगै परम सुखदाइ ।।७।।
हरें अताप करें अघ नास । सर्व अंग को इह परगास ।।
काटचौ होइ सर्प नैं कोई । कैं काहू विष पीयौ होई ।।८।।
दृष्टि परैं अतापन रहै । दृष्टि अंग ऐसो गुण लहै ।।
जो कोऊ नैं विषु देइ । व्यापैं नहीं परम सुख लेइ ।।९।।
बचन योग सबको विस हरैं । अंग असन विषैं यह गुणधरै ।।
सर्प्पादिक लहि उनिकी बास । करैं नहीं मुनि निकट निवास ।।१०।।

दोहरा

यह विधि आठ प्रकार जू, रिद्धि औषधी सार ।
प्रगटैं श्री मुनिराज की, तप बल यह निरधार ।।११।।

इति औषध रिद्धि वर्णनं

बल ऋद्धि वर्णन

चौपई

अब तुम सुनो रिद्धि बल सार । मन वच काय त्रिविध परकार ।।
भिन्न भिन्न गुण तिनि के गहों । ऐसो गुण आगम में लहों ।।१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रुत आवरणी कर्म प्रधान । ताके छय उपशम तें जानि ॥
अन्तर महूरत विषै समर्थ । द्वादशांग वानी को अर्थ ॥२॥
तिनके मनमें करें विलास । यह कहिये मन बल परकास ॥
द्वादशांग वानी अध्ययन । करत महासुख उपजै चैन ॥३॥
तिनको कष्ट न होइ लगार । अंग वाक्य बल के अनुसार ॥
बानी पठत देह श्रम नाहीं । पढइ मंत्र महूरत माहीं ॥४॥
काय अखंडित बल कौं करैं । अंग काय बल यह गुण धरैं ॥
अतुल अखंड बली बलवीर । सोहै जिनको सुभग शरीर ॥५॥

दोहरा

यह बल रिद्धि गंभीर गुण, प्रगट बखांनी देव ।
उदय होइ तप जोग तें, यह जिनवानी मेव ॥६॥

इति बल ऋद्धि वर्णनं

तप ऋद्धि वर्णन

चौपई

सुनो भव्य अब तप ऋद्धि सार । तामैं सात अंग निरधार ॥
घोर महत औ उग्र बनंत । दीप्त गुण घोर भनंत ॥१॥
सप्सम ब्रह्मा घोर बखांन । अब तिनके गुण सुनो सुजांन ॥
महानसान भूति अनि होइ । जोग धरैं रुचि सौं मुनि जोइ ॥२॥
सहैं उपसर्ग धुरधंर घोर । याही सें कहिये तप घोर ॥
सिंघनि क्रीडित आदि उपवास । तिनको करैं सदा अभ्यास ॥३॥
मौन अन्तराय सौ यह पाल । इह कहिये तप महतिरमाल ॥
वेद काय बसु द्वादश मास । इत्यादिक जे औ उपवास ॥४॥
करैं निर्वाह योग आरूढ । यह तप उग्र तनो गुण गूढ ॥
करत उपवास घोर बहु भांति । घटै नही देही की कान्ति ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपजैं नहीं दुर्गन्ध शरीर । यह कहयिें तप दीप्त गंभीर ।।
तप्त लोह गोला पर नीर । परत ही सूकैं सहै नहीं पीर ।।६।।
लियैं आहार निहारन जहां । तप्त अंग तप जानौं तहां ।।
अतीचार विनु मुनि अभिराम । घोर गुण तप याको नाम ।।७।।
दुषमादिक होइ न तास । घोर ब्रह्मचर्य गुण भास ।।
व्रत शत औरु आठ निरधार । तितिके मुनिवर साधन हार ।।

दोहरा

तप ऋद्धि के सात गुण अभ्यासैं मुनिराज ।
अनुक्रम तातैं जानिये, केवल ज्ञान समाज ।।६।।

×....×....×....×....×....×....×....×....×....×....×....×....×

काष्ठा संघ उत्पत्ति वर्णन

समोसरण श्री सनमति राय, आरजखंड परचौ सुखदाइ ।
अन्ति समै पावापुर आंनि, पुन्य प्रकृति की ह्वै गई हानि ।।१।।
सुदि आषाढ़ चौदसि के दिनां । थाप्यौ जोग सकल मुनि जना ।।
पुर की सीम नखें नहिं कोइ । पार न जाइ नदी ज्यौं होइ ।।२।।
कातिग सुदि चौदशि आवई । ता दिन मुनि चौंदिसि धावई ।।
च्यारि मास पूरो भयो योग । देव ठान भाखें सब लोग ।।६।।
गौतम आदि सकल मुनि चंग । ता तल थप्यौ जोग प्रभु संग ।।
हुतो तडाग तहां शुचि रूप । एक कूट ता मध्य अनूप ।।४।।
तापर निबसे श्री भगवांन । हिरदैं तुरीय पद शुकल जु ध्यांन ।।
कातिग बदि मावस की रीति । चारि घडी जब रह्यौ प्रभात ।।५।।
श्री जिन महावीर तीर्थेश । पंचम गति कौ कियो प्रवेश ।।
मुक्ति सिलापर सिद्ध सरूप । परमातमा भए चिद्रूप ।।६।।
जो मुनि देखें नेन निहार । कूट नहीं प्रभु प्रतिमा सार ।।
उनि समान सुनि सुधि डारि । प्रभुजू नें किल कियो विहार ।।७।।
भटकत डोलें चउदिसि मुनी । गौतम ज्ञान रिद्धि तब सुनी ।।
श्री गौतन मुख वानी खिरी । सब के जिय कौ संसय हरी ।।८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आए इन्द्र सकल जुरि तहां । प्रभु निर्वान ज्ञान मुनि जहां ।।
कियौ महोछौ पूरब रीति । मुनि सों कहैं इन्द्र धरि प्रीति ।।९।।
काहे कों मुनि जन श्रम करचौ । जोग दिसा क्यौं सुधि विसरचौ ।।
सिद्ध सिला निवसें भगवान । काहे को तुम चित्त मलान ।।१०।।
तव मुनि कहैं सुनौ सुरपती । जोग दिसा तजि दो रे जती ।।
आग्या मिटी भयो व्रत भंग । करें कहा अब भाष्यो चंग ।।११।।
तव सुरपति जिय सोच अपार । आवतु है पंचम अनवार ।।
धर्म रहित परमादी जीव । बरतेंगे ता काल सदीव ।।१२।।
जो हो इनिसों कहो प्रकार । पूरो करो जाइ चौमास ।।
मति डरयो व्रत भंग जु भयौ । तुम प्रभु कें हित हो चित्त दयौ ।।१३।।
सो पंचम परमादी लोग । संख्या तोरि करेंगे जोग ।।
ता तैं आज भलौ दिन जांनि । श्री गौतम भयो केवल ज्ञांन ।।१४।।
उछव करि सब करचौ बिहार । ज्यौं अखण्ड व्रत की नहि हार ।।
तवतें आहूंठ मास कौ जोग । पंचम काल धरें मुनि लोग ।।१५।।

दोहरा

वाही निशि श्री वीर कौं पूजैं पद निर्वान ।
कथा काष्ट जु संघ की, आगें करो बखांन ।।१६।।

इति चतुर्मास भेद जोग वर्णनं

चौपई

गुप्तागुप्त आचारज रिष्य । भद्रबाहु मुनि तिनि के शिष्य ।।
तिनि के पट्ट जु माघनंदि मुनि । ज्यां चरननि में जाइ गुनी ।।१७।।
उनके पट्टाधीश बखांनि । श्री कुन्दकुन्द आचारज जांन ।।
तिनिके पट्ट जु उमास्वाति । जिनतें तत्त्वारथ विख्यात ।।१८।।
तिनिके पट्ट लोहाचारज भए । जिंन काष्ठासंघ निरमये ।।
आचारज विद्या भण्डार । साक्षात सारद अवतार ।।१९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तिनके तन क्यों उपज्यो रोग । आय बन्यो मरवाको जोग ।।
वाय पित्त कफ घेरी देह । भव श्रीगुरु धरि आए नेह ।।२०।।
ह्वै दयाल दीनौं संन्यास । जब जीवन की रही न आस ।।
पुन्य प्रभाव वेदनी घटी । व्याधी सकल मुनिवर ते हटी ।।२१।।
क्षुधा पिपासा व्यापी अंग । विनती जु गुरु सो चंग ।।
टली असाता आयु प्रताप । अब कीजें जो आज्ञा आप ।।२२।।
श्रीगुरु कहे तब आग्या आन । करि संन्यास मरण बुद्धिवांन ।।
ज्यों आगे परमादी जीव । प्रतिपालें जो व्रत जोग सदीव ।।२३।।
लोहाचारज धरी न कांन कियो आहार अन्न रु पांन ।।
गुरु सुनि गच्छ बाहिरे । पट्टाधीस और अनुसरे ।।२४।।
लोहाचारज सोच बिचार । गुरु तजि कीयो देश विहार ।।
संवत त्रेपन सात सें सात । विक्रमराय तनो विख्यात ।।२५।।
आए चले नंदीवर ग्राम । जाकों है अगरोहा नाम ।।
वा पुर अगरवाल सब बसें । धनकरि सब लोकनि कौ हंसें ।।२६।।
परमत कौ जिनकें अधिकार । और धर्म कौ गनें न सार ।।
अब उनिकि उतपत्ति सांभलैं । मत मिथ्यात सकल दल भलौ ।।२७।
अगर नाम रिष हें तप धनी । वनवासी माता वा भंन ।।
एक दिवस बैठें धरि ध्यान । नारी शब्द परयो तब कांन ।।२८।।
मधुर वचन औंर ललित अपार । मानों कोकिला कंठ उचार ।।
छूट गयो रिष ध्यांन अनूप । लागे निरिखन नारी रूप ।।२९।।
व्याप्यो काम धीर नहीं धरैं । त्रिय प्रति तब बोलन अनुसरैं ।।
तब बोली नारी वह जान । नाग तनी मोहि कन्या जान ।।३०।।
जो तुम काम सताये देव । जाच्यो मम पिता कौं करि सेव ।।
निरिखि वरन न धरि है मांन । तुरत करेंगो कन्या दान ।।३१।।
सुनत वचन उठि ठाडे भए । ततक्षिन नाग लोक को गए ।।
नाग निरिख तपस्वी अवतार . कीनो आदर भाव अपार ।।३२।।
तब ऋषिराय प्रार्थना करी । तब कन्या हमि जिय में बरी ।।
अब तुम देहु हमें करि दांन । ज्यों संतोषु लहें मम प्रांन ।।३३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नाग दई तव कन्यां बांहि । कर गहि अगर ले गए ताहि ।।
ताके सुत अष्टादश भए । गर्ग्ग आदि सुतमें वरनए ।।३४।।
तिनिकौ वंश बढचौ असराल । ते सव कहियें अगरवाल ।।
उनिके सव अष्टादश गोत । भए रिषि सुत नाम के उदोत ।।३५।।
तिनिके सुन्यौं एक आयौ मुनी । पुर कें निकट वह उतरचौ गुनी ।।
भिक्षुक जांनि सकल जन नए । भोजन हेत विनयवत भए ।।३६।।
तव मुनि कहें सुनौं धरि प्रीति । हम तपसीनि की ऐसी रीति ।।
जो कोऊ श्रावक धर्म कराइ । मिथ्यामत जाकौं न सुहाइ ।।३७।।
सो अपनें घरि आदर करें । ले करि जाइ दया तव चरें ।।
और ग्रेह नहीं आहार । यह हम रीति सुनी निर्द्धार ।।३८।।
तब पुर जन जिय विसमय भई । यह कैसो मुनि आयो दई ।।
जो न देइ हम जाहिं आहार । तौ आवै हमरे पन हार ।।३९।।
कछुक लोग तब जैनी भए । श्री मुनिराज चरन आइ नए ।।
धर्म समझि लेहि गुरु उपदेश । तव गुरु जुत कियो नगर प्रवेश ।।४०।।
दयौ भली विधि मुनि आहार । आनंद उछव करें अपार ।।
यह विधि प्रतिबोधें विख्यात । श्री मुनी अगरवाल सौ सात ।।४१।।
तव जिनभवन रच्यौ बहु चंग । रची काष्ट प्रतिमा मन रंग ।।
पूजा पाठ वनाए और । गुरु विरोधि हित कीनि दोर ।।४२।।
चली बात चलि आई तहां । उमा स्वामि भट्टारक जहां ।।
मुनि जिय चिन्ता भई अगाध । करी काठ की नई उपाधि ।।४३।।
भली भई परमत किये जैन । सुनत बात उपज्यो उर चैन ।।
चलि आये तहां श्री मुनिराइ । नंदीपुर वर जैनसमाइ ।।४४।।
आवत सुनी श्री निज गुरु भले । आगें हों न आचारज चले ।।
जीनें सकल नबर जन संग । बाजत अति बाजे मन रंग ।।४५।।
निरिखि मुनी तव पकरे पाइ । आनंद बढचो न अंग समाइ ।।
तव मुनिराज दई आसीस । लयो उठाइ चरन तें सीस ।।४६।।
तव पुरजन सब बंदन करें । उमास्वामि धर्म वृद्धि उच्चरें ।।
अगोनी करि लाए गांम । राजतु हैं जहाँ जिनवर धांम ।।४७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भोजन हित विनती सब करें। तब श्री गुरु मुख तें उचरें ।।
जो देहै हम गुरु को सीख। और आचारज मानैं सीख ।।४८।।
तौ हम लेही या पुर चरी। तब आचारज विनती करी ।।
आग्या होइ करौ सोइ नाथ। भयौ हमारौ जनम सनाथ ।।४९।।
तब मुनि कहैं सुनों गुन जूत। शिष्यन में भए तुम भए सपूत ।।
परमत भंजन पोखन जैन। धर्म बढायौ जीत्यौ मैन ।।५०।।
वही सीख हमरे करि धरचो। काठ तनी प्रतिमा मति करो ।।
अग्नि जरावे धन जिह दहें। अंग भंग नहिं जिन गुन लहें ।।५१।।
जल डारें चंचल तसु छांन। लेख किये सदोष यह जांनि ।।
तब आचारज करी प्रमान। भाखें गुरु सौं वचन निदांन ।।५२।।
पाठन फेरो दीन दयाल। कर पीछी सुरही के बाल ।।
गुरु मानी वाढचो अतिरंग। जेउ न उठें शिष्य गुरु संग ।।५३।।
तब तें काष्ठासंघ परवरचौ। मूलसंघ न्यारो विस्तरचौ ।।
एक चना कीज्यौं द्वै दारि। त्यौं ए दोऊ संघ विचार ।।५४।।
जैन बहिर्मुख कोऊ नाहिं। नाम भेद दीसें गुरु माहिं ।।
तातैं भव्य भ्रान्ति जिय तजो। मन वच तन आतम हें भजो ।।५५।।

दोहरा

कह्यौ काष्ठासंघ कौ, भेद सकल निरधार।
गुरु प्रसाद आगे कहों, पंच स्तवन विचार ।।५६।।

इति काष्ठा संघ उतपत्ति वर्णनं

जैसवाल जाति उत्पत्ति इतिहास—

चोपई

श्री जिनदेव ऋषभ महाराज। जब बांटचो सब महि को राज ।।
अवधपुरी दई भरथ नरेश। बाहूबलि पोदनपुर देश ।।१।।
और सुनत मांग्यो ठांम। श्रीप्रभु तें दीयो अभिराम ।।
कुंवर शक्तिजित वाट नरेश। चलि आए जहाँ जैसलमेर ।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वें मण्डल को साधें राज । सुख साता तें सबै समाज ।।
तिनिको वंश वढ्यो असराल । जैन धर्म पालैं महिपाल ।।३।।
उनिके वंश नृपति एक जान । तिनि कीयो परमत सों प्रांन ।।
जिनमत की छांठी सब रीति । कल्पित मत सों बाधी प्रीति ।।
शुभ कर्म घटैं घटि गयो प्रताप । अवनीमंद फले सब पाप ।।
और इकदिन चढ़ाई कीन । गयो देश या पें ते क्षीन ।।
पर जाकरि राखें........ ठौर । भ्रष्ट भए देश सिरमौर ।।
राज भृष्ट ह्वं कृषि आदरी । कोऊ वनिज कोऊ चाकरि ।।६।।
इहि विधि रहित गयो बहुकाल । छूटि गयी जिनमत की चाल ।।
महावीर प्रभु प्रकट्यो ज्ञांन । रची सभा अमरनि आंन ।।७।।
सकल सुरासुर पुन्न प्रचण्ड । ताहि ले फिरें आरजा खंड ।।
खंड सकल परस्यौं चो फेर । चलि आए जहां जैषलमेर
आयो समोसरण वन मांहि । सब ऋतु वृष्य सफलाइं ।।
वन माली राजा पैं आय । प्रभु आगमन कह्यो समुझाय ।।६।।
सुनि राजा चल्दो वन्दन हेतु मान रहित पुर लोक समेत ।।
प्रथम नमैं श्री जिनवर राय । फिर नर कोठे बैठे जाइ ।।१०।।
पूछत भए श्री प्रभु को बात । जे ए वात वंश विख्यात ।।
रहों कृपा करि सुर महाराज । चटयो क्यों हमतें मुविराज ।।
तब बोले गौतम बल राइ । जैन त्यागो रे भाइ ।।
जो वह फेरि आदरो धर्म । बिहुर जाइ तुमतें दुख कर्म ।।१२।।
तब करि जौर जथारथ सार । धर्म लयो जन चारि हजार ।।
वाचा बंध सबनि मिलि गरयो । जिनथर जैन धर्म आदरयो ।।१३।।
तिनही सों अपनो व्योहार । खांम पांन अरु सगपन सार ।।
इनि तजि औरजु कों आदरें । तजें ताहि दोष सिर धरें ।।१४।।
यह ठहराइ धर्म ले फिरि । सब आए पुर जैसलमेप ।।
समोसरण आयो पंच पहार । मगध देश राज ग्रह सार ।।
वें सब जेसवाल प्रतिपाल । खोयो उरतें मिथ्य साल ।।
रच्यो नगर जिन आलय चंग । जिन पूजन तहा करें अभंग ।।१६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देईं चतुर्विध संघहिं दान। निसि दिन रुचि सों सुनें पुरान ॥
दालिद्र गेह हुते जे लोग। तिनिके नाना विध के भोग ॥१७॥
सब कें अटल लजि घर भई। सकल त्याग बनिज बुधि ठई ॥
या अन्तर एक श्रांवक धान। कन्वा रूप भई अभिराम ॥१८॥
तास रूप की सब पुर वास नृप जिय उपजी ब्याहनि बात ॥
पठयौ दूत कह्यो हम देहु। कन्याँ दांन तनो फल एऊ ॥१९॥
सुनत सवनि के विसमय भई। कौंन बुद्धि राजा यह ठई ॥
पंच सकल जुर करि आइयो। अव हम जैन धर्म व्रत लयौ ॥२०॥
अपर जाति सों रह्यो न काज। खांन पांन अरु सगपन साज ॥
दूत कहो राजा सों जाइ। हठ किए विसमय अधिकाइ ॥
सुनि राजा कहि पठयो फेरि। तो तुम त्यागो जैसलमेर ॥
जहाँ लहों न लगी मेरी आंन। रजा ऐसी कही निदान ॥२२॥
तव वे सकल चले तजि ठांम। जैन मती जिन तें अभिरांम ॥
जिहिं पुर आइ संघ यह परैं निरिखि सबैं कोऊ पूछन करें ॥२३॥
कौन देश तें आयौ संघ। कौन जाति कही कारण चंग ॥
उत्तर देईं सबैं गुणमाल। वंश इक्ष्वाक जेसवाल ॥२४॥
जेसवाल तब ही तें जान। जेसवाल कहित परवान ॥
चले चले आये सब जहाँ। हुती तिहँ गिरी नगरी जहाँ ॥२५॥
ता पुर हुतो निकट वन चंग। उतरचो तहाँ जाइ वह संघ ॥
पायें यह जहाँ चातुरमास। सकल संघ ऊहां कियो निवास ॥२६॥
बीतें रहाइ दिन जबें। वन क्रीड़ा नृप निकस्यो तबै ॥
कटक दृष्टि नृप के जब परचो। सबनि कों पूछन अनुसर्‌यो ॥२७॥
का को कटक कौन आइयो। जा वन तूं पूछाइयो ॥
कहें मन्त्री ए जेसवाल। सबनि लियो मत जैन रसाल ॥२८॥
नृप कन्यां न दई याह। दई नहीं रूस्यो नर नाह ॥
निज पुर तें ए दये निकार। चलि आये या देश मझारि ॥२९॥
चातुर्मास आवड़ो आइयो। नाद वहि तन छाइयो ॥
राजा कहें सुनो परधांन। क्यों न मिलि हैं हम को आन ॥३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सचिव कहें इनें गर्व अपार । याही त नृप ए दीए निकार ।।
सुनि राजा कर मूर्छनि धर्यो । मन में रोस संघ पर कर्यो ।।३१।।
मुख तें कछू न करी उचार । आए महीपति नगर मझार ।।
संघ तने कछु बालक चंग । क्रीडित हुते तहां मनि रंग ।।३२।।
तिनि में हुतो एक बुधिवान । नृप चरित्र सब वह पहिचांन ।।
चलि आयो सिसु संग मझार । बैठो जहाँ सकल परिवार ।।३३।।
बालक सबसों भाषी बात । नृप को वेगि मिलो तुम तात ।।
नहीं तो मान भंग तुम होय । सत्य वचन मांनौ सब कोइ ।।३४।।
तब सब कहुकर उठें अकुलाइ । चलो जाइ देखें पुर राइ ।।
मनि मानिक मुक्ता फल भले । राजा भेट काज ले चले ।।३५।।
पहुँचे जाइ नृपति के द्वार । भेट धरी अरु कर्यो जुहार ।।
राजा पूछै ए को हेत । जिनि में प्रीत तनो उद्देत ।।३६।।
सचिव कहें ए सब सुनों भूपाल । हम चित नही सर्व को साल ।।
नृप अनीत त्यागे निज देश । चलि आए तुंव शरण नरेश ।।३७।।
करी हुती जहाँ जिय में चिंत । बीतें भादव वरत पुनीत ।।
देखें जाइ चरण प्रभु तनौं । और मनोरथ चित के भनो ।।३८।।
मांगि लेऊ कछू भूमि विसाल । तहाँ बसें हम जैसवाल ।।
अब जब सुनि राय रीस धरी । तब हम आइ भेट अब करी ।।३९।।
तब नृप जिय विसमय अधिकाइ । मैं निज रीस काहू न जताइ ।।
तुम क्यों जान्यौ मेरो क्रोध । बिनु भाषें किहि विधि भयो बोध ।।४०।।
तब सब मिलि नृप सों विनए । जा दिन तुम प्रभु क्रीडा वन गए ।।
पूछी सकल हमारी बात । सचिव कही जैसी इह तात ।।४१।।
तहां एक बालक हमरो हुतौ । बुधिवांन क्रीडा संजुतौ ।।
तिनि सब बात कही समझाय । वेगि मिलौ तुम नृप को जाइ ।।४२।।
क्रोध कियें हम ऊपरि चित्त । मैं भाषी सब सों सब सत्ति ।।
या पर हम जिय में बहु सके । आप मिलिन महा भय थके ।।४३।।
सुनि करि तब बोल्यो क्षिति पाल । वेगि बुलावो अपनो बाल ।।
जिनि मम जिय की पाई बात । पूछों बोध तनो अवदात ।।४४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तब उन बालक दयो बुलाव । रूप निरखि नृप आनन्द थाय ।।
पूछैं महिपति सुनि रे बाल । तैं क्यों जानों मम उरसाल ।।४५।।
बालक कहैं उभय करि जोरि । जब प्रभु निज कर मूंछ मरोरि ।।
क्रोध बिना मूंछ नही हाथि । यासें हम जान सके नरनाथ ।।४६।।
सुनि राजा परिफुल्लित भयो । कर गहि कंठ लागि शिशु लयो ।।
आदर सहित दिवाए खांन । बिदा दई राख्यौ बहु मान ।।४७।।
रहिबे कौं दयौ पुर में ठांम । मन्दिर तहाँ सुभग अभिराम ।।
बसे आनि जब वीत्यो जोग । करें तहां बहु विधि के भोग ।।४८।।
नृप पठयो एक दूत सुजान । जेसवाल सुनौ बुधिवान ।।
मम जिय बांत तुम ऐसी गनौ । इह बालक जो है तुम तनौ ।।४९।।
तकों देऊं सुता मम तनी सेवा करौं बहु तुम तनी ।।
सुनत बात बोले सब लोग । यह तो होइ न कोई जोग ।।५०।।
जो हम ऐसो करते काज । जैसलमेर न तजते आज ।।
बात सुनत नृप रिस होइ । पकरि मगायो बालक सोइ ।।५१।।
निज कन्या दीनी परनाइ । कछू न काहू तौ न वसाइ ।।
बालक नृप अनीति पहिचानि । छोडि दियो भोजन अरु पानी ।।५२।।
मात पिता देखौं जब नैन । तब ही मो जिय उपजैं चैन ।।
नहीं तो प्रान तजौं निसन्देह । कौंन काज मेरो नृप गेह ।।५३।।
तब नृप जिय सोच अपार । बाल करें अपजस सिर नाइ ।।
तब बालक को सब परिवार । गढ़ लाए वाही परकार ।।५४।।
और हितू जे हे उनि तने । तेऊ जाइ वसे गढ़ घने ।।
घर हजार द्वै नीचै रहें । जिन गुरु वचन प्रेम सों गहें ।।५५।।
तिनि सब मिलि यह ठहराव । मेंइ विसौं अब परम अभाव ।।
कोऊ हमरौ उनिकें नहीं जाइ । उनिकौ ह्यां कोऊ धरे ने पाइ ।।५६।।
गुरु वचननि की छांडी टेक । कहा भयो बालक गयौ एक ।।
धनु अरु जीवन सब निर्जाउ । धर्म तनौ मलि होइ अभाउ ।।५७।।
तातें अब हम सों नहि खेल । गुरु वचननि कीए सीसु खेल ।।
इह विधि स्यों गयो काल वितीत । राज काल कियौ अनचिंत ।।५८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह मन्त्रिनि मिलि कीयौ काज । थाप्पौ जन पद सिर राज ।।
जब वह भयौ पहुमि कौ राइ । निजनिंकु सब लियौ बुलाइ ।।५६।।
बकोश देश बांधि के दयो । आप तिहुन नगर राजा भयौ ।।
बाभन कुल प्रोहित थापियो । तौ में पत्र तिनें लखि दयौ ।।६०।।
जाके ब्याह पुत्र को होइ । लिखि देई बाभन को सोइ ।।
रूपे के रूपैया सो पांच । एक अधिक नहीं तामें वांच ।।६१।।
तव इह मनमें आयी बात । बिछुरि कछु हमतें जात ।।
एकाकी जिए ताहि मनाइ । जाति मिलें आनन्द अधिकाइ ।।६२।।
तव नृप सहित सकल परिवार । आए गढ़ नीचें सागार ।।
बैठें जिनमन्दिर नृप आहि । सकल पंच तहा लए बुलाइ ।।६३।।
विनती करी जोरि के हाथ । सोई करो जो हो इक साथ ।।
बगसौं चूक जु हम मैं परी । बडो सोइ जो चित्त न धरी ।।६४।।
अब सब बरतो पूरब रीति । दुविधा मनतें करौ वितीत ।।
तव सब पंचनि कियो विचार । कीजे नहिं नृप मान प्रहार ।।६५।।
विनती करी राय सों सबैं । आग्या देहु अब हम तवैं ।।
व्याहु काज नहीं नरेश । हठ करो तौ तज हैं देश ।।६६।।
तव मन में सौचियो नरेन्द्र । हठ के किये नहीं आनन्द ।।
मानि बात नृर गढ़ पें गये । जैसवाल दो विधि तव भये ।।६७।।
उपरोतिया जु गढ़ पर रहें । तिरोतिया जे नीचे कहें ।।
काज समें उपज्यों यह नाम । बोलि पठावै इहि विधि धांम ।।६८।।
उपरोंतिया थये गुरु देव । काष्ठा संघ करें तसु सेव ।।
मूल संघ गुरु परम पुनीत । तरोंतिया उर तिनिकी प्रीति ।।६९।।
इहि विधि बीत गयो कबु काल । राजा परचो जाइ जम जाल ।।
राजधनी भयो औरें आय । तिहिंनपाल नाम कहवाइ ।।७०।।
तिनि सब जैंसावाल सु वंश । तहाते काटि दिए अवतंस ।।
या अन्तर उपजी एक भली । जम्बू स्वामि अन्त केवली ।।७१।।
मथुरा नगर निकट उद्यान । तहाँ प्रगट्यो प्रभु केवल ज्ञान ।।
तावत सबकौं खग लोइ । जुरि आये मथुरा वन सोइ ।।७२।।
छांडि तिहुवन गिरि उठि धाइयौ । जेसवाल बाल आंनियो ।।
प्रभु दरसन लइए नवि हुंड । दुरमति करि मारि सत खण्ड ।।७३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जम्बू स्वामी भयो निरवान । पाई पंचमगति भगवान ।।
जेसवाल रहे तिहि ठांम । मन मांन्यौ जु करइ काम ।।७४।।
कारज गांम गोत परनए । इंह विधि जेसवाल बरनए ।।
उपरोतिया गोत छतीस । तिरोंतिया गनि छह चालीस ।।७५।।

दोहरा

जैंसवाल कुल बरनयो, जिहि विधि उतपति तास ।।
अब कवि अपने नाम को, करैं विवर परगास ।।७६।।

कवि प्रशस्ति

चौपई

तरोंतिया तिनि में एक जांति । पूरण प्रश्न प्रताप सुव जांनि ।।
राजाखेरा को चउधरी । अर्गलपुर की आनु जु बरी ।।७६।।
ताके पांच पुत्र अभिराम । अनुज लालचन्द तसु नाम ।।
ता सुत हीयं प्रीति जिनचन्द । सब कोऊ कहै बुलाखीचन्द ।।७७।।
तासु हिरदे उपजी यह आंनि । कीजे क्यों जिन कथा बखांन ।।
वृन्दावन सागरमल मित्र । जिनधर्मी अरु परम पवित्र ।।७८।।
तिनिकी की आज्ञां ले सिर धरी । वचनकोश की रचना करी ।।
भाषा ग्रन्थ भयो अति भलो । वचनकोश नाम जु उजलो ।।७६।।
विनसैं तासु पढत मिथ्यात । सांची लगै न परमत बात ।।
क्षयोपशम को कारण यही । वचन कोस प्रगटचो यह मही ।।८०।।
श्रवन करें रुचिसों नर नारि । लक्ष्मी होइ सुभग निरधार ।।
लक्ष्मी होइ न राग आकुलो । याकैं पढैं होइ अति भलो ।।८१।।
जिनवानी की कीरति घनी । कहाँ लौं वरनि सकै नहीं मुनि ।।
सुनें तासु न पावें पार । मांनि सकति जु बुधि बल सार ।।८२।।

दोहरा

संवत सत्रह सै बरस, ऊपरि सप्त रु तीस ।
बैशाख अंधेरी अष्टमी, वार वरनऊ नीस ।।८३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्द्धमानपुर नगरी सुभग, तहां बुद्धि को जोस ।
रच्यो बुलाखीचन्द ने, भाषा वचन जु कोश ।।८४।।
मुनी पढैं जो प्रीति सों, चूकहिं लेइ सम्हारि ।
लघु दीरघ तुक छन्द को, छमियो चतुर विचारि ।।८५।।

इति वचन कोष भाषा बुलाखीचन्द जेसवाल कृत विरचित
सम्पूर्णं समाप्तं ।।
सम्वत १८५३ वर्षं मास चैत्र बदी ११
भृगु वासरे ।।

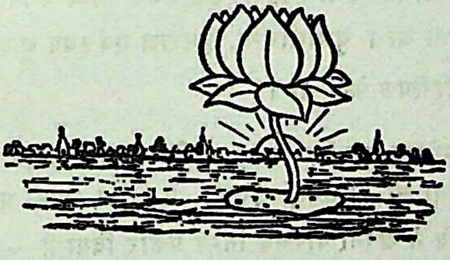

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

२

कविवर बुलाकीदास

कविवर बुलाकीदास इस भाग के दूसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। वे अपने समय के ऐसे कवि थे जिनकी कृतियां समाज में अत्यधिक लोकप्रिय बनी रही। राजस्थान के जैन ग्रन्थालयों में उनके पाण्डवपुराण की पचासों पांडुलिपियां संग्रहीत हैं।काव्य सर्जना की प्रेरणा उन्हें अपनी माता से प्राप्त हुई थी। वैसे कवि का पूरा परिवार ही साहित्यिक रुचि वाला था। बुलाकीदास के समय में आगरा नगर कवियों का केन्द्र था। समाज द्वारा उस समय काव्य रचना करने वालों का खूब सम्मान किया जाता था। बुलाखीचन्द, हेमराज एवं स्वयं बुलाकीदास सभी के लिए आगरा नगर साहित्यिक केन्द्र था।

बुलाकीदास गोयल गोत्रीय अग्रवाल जैन थे। कसावर उनका बैंक था। उनका मूल स्थान बयाना था। सवंत् १७४७ में रचित अपनी प्रथम कृति प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है—

दोहरा

अगरवाल सुभ ज्ञात है, श्रावक कुल उत्पत्ति।
पेमचन्द नामी भलौ, देहि दान बहुनित्त ।।१३।।
धारै ब्योंक कसावरौ, दया धर्म की खांनि ।।
जैन वचन हिरदै धरै, पेमचन्द सुरभांन ।।१४।।
अगंज ताकौ कंज छवि, श्रवनदास परवीन।
ताकै पुत्त सपुत्र है, नन्दलाल सुखलीन ।।१५।।
नन्दलाल सुभ ललित तन, सेवत निज गुरुदेव ।।
सकल ऋद्धि ताके निकट, आवत है स्वयमेव ।।१६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नन्दलाल गृह गेहिनी, जैनुलदे सुभनाम ।
ते दोऊ सुखस्यौ रमै, ज्यौं रुकमनि अरु स्याम ॥१७॥
धर्मपुत्र तिनके भयौ, बूलचन्द सुभ नांम ।
तिहि जैनुलदे यो चहै, ज्यो प्रानी उरप्रान ॥

लेकिन इसी परिचय को प्रश्नोत्तर श्रावकाचार के सात वर्ष पश्चात् निबद्ध पाण्डव पुराण में निम्न प्रकार दिया है—

नगर बयानो बहु बसै, मध्य देश विख्यात ।
चारु चरन जह आचरै च्यारि वर्ण बहुं भांति ॥२४॥
जहां न कोऊं दालदी, सब दीसै धनवान ।
जप तप पूजा दान विधि, मांनहिं जिनवर आन ॥२५॥
वैश्य वंश पुरुदेव नैं, जो थाप्यौ अभिराम ।
तिसही वंस तहां अवतरयौ, साहु अमरसी नाम ॥२६॥
अगरवाल सुभ जाति है, श्रावक कुल परवान ॥
गोयल गोत सिरोमनी, व्यौक कसावर जान ॥२७॥
धर्म्म रसी सो अमरसी, लछिमी कौ आवास ।
नृपगन जाकौ आदरै, श्रीजिनन्द को दास ॥२८॥
पेमचन्द ताकौ तनुज, सकल धर्म को धाँम ।
ताकौ पुत्र सपुत्र है, श्रवनदास अभिराम ॥२९॥
उतन बयानौ छोडि सो, नगर आगरै आय ।
अन्न पान संयोगतैं, निवस्यौ सदन रचाय ॥३०॥
बुधि निवास सो जानिए, श्रवन चरन कौ दास ।
सत्य वचन के जोग सौं, वरतै नो निधि तास ॥३१॥
गनिए सरिता सील की, वनिता ताके गेह ।
नाम अनन्दी तास कौ, मानौं रति की देह ॥३२॥
उपज्यौ ताके उदर तैं, नन्दलाल गुन वृन्द ।
दिन दिन तन चातुर्यता, बढै दोज ज्यौं चन्द ॥३३॥
मात पिता सो पढन कौं, भेज दियो चटसाल ।
सब विद्या तिन सीखि कै, धारी उर गुनमाल ॥३४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेमराज पंडित वसै, तिसी आगरे ठाइ ।
गरत गोत गुन आगलो, सब पूजै तिस पाइ ।।३५।।
जिन आगम अनुसार तैं, भाषा प्रवचनसार ।
पंच अस्ति काया अपर, कीनें सुगम विचार ।।३६।।
ऊपजी ताकै देहजा, जैनी नाम विख्यात ।
सील रूप गुन आगली, प्रीति नीति की पांति ।।३७।।
दीनी विद्या जनक नैं, कीनी अति वितपन्न ।
पंडित जापै सीखिलै, धरनी तल मैं धन्न ।।३८।।

सवैया

सुगुन की खानि किधौ सुकृत की वांनि,
सुभ कीरति की दांनि अपकीरति कृपान है ।
स्वारथ विधनि परमारथ की राजधानी,
रमाहु की रानी कियौ जैनि जिनवानी है ।
धरम धरनि भव भरम हरिनि किधौं,
असरनि सरनि कि जननि जहांन है ।
हेम सो उपनि सील सागर रसनि,
भनि दुरित दरनि सुर सरिता समांन है ।।३९।।

दोहरा

हेमराज ताहां जानि कै, नन्दलाल गुन खांनि ।
वय समान वर देखि ही, पांनग्रहण विधि ठानि ।। ४०।।
तब सासू नै प्रीति सो मोतिन चौक पुराय ।।
लीनी ग्रह सुभ नाम धरि, जैनुलदे इंहि भाइ ।।४१।।
नारि पुरुष सुख सो रमैं, धारै अन्तर प्रेम ।
पूरव पुण्य फल भोगवै जय सलोचनां जेम ।।४२।।
अल्पबुधि तिनकै भयो; बूलचन्द सुख खानि ।
तहि जैनुल दे यो चहै, ज्यौं प्रानी निज प्रान ।।४३।।
अन्नोदक सम्बन्ध तैं आइ इन्द्रपथ थानि ।
मात पुत्र तिष्टे सही, भनै सुनै जिनवानि ।।४४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इस प्रकार कवि ने अपना वंश परिचय बहुत ही उत्तम शब्दों में दिया है।

पाण्डव पुराण में कवि ने अपना वंश परिचय साहु अमरसी के नाम से प्रारम्भ किया है जबकि प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में साहु अमरसी के पुत्र पेमचन्द से प्रारम्भ किया है। दोनों ग्रन्थों के आधार पर कवि का निम्न प्रकार वंश वृक्ष ठहरता है—

(१) प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

पेमचन्द
|
अवनदास
|
नन्दलाल—पत्नि जैनुलदे
|
बूलचन्द अपर नाम बुलाकीदास

(२) पाण्डवपुराण

साहु अमरसी
|
पेमचन्द
|
अवनदास—अनन्दी पत्नि
|
नन्दलाल—जैनी पत्नि
|
बूलचन्द अपर नाम बुलाकीदास

इस प्रकार दोनों कृतियों में से पाण्डवपुराण में कवि ने अपने पूर्वजों में साहु अमरसी का नाम एवं बुलाकीदास के पितामह अवनदास की पत्नि का नाम का विशेष उल्लेख किया हैं। शेष नाम समान हैं।

बुलाकीदास के पूर्वज साहु अमरसी बयाना में रहते थे। उस समय बयाना मध्यदेश का अंग था। वहाँ चारों ही वर्ण वाले रहते थे सभी सम्पन्न दिखायी देते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

थे। उनमें से दरिद्री कोई नहीं था। जैन परिवार अच्छी संख्या में थे जो जप, तप पूजा एवं दान चारों ही क्रियायें करने वाले थे। इन्ही जैनों में साहु अमरसी थे जो वैश्य वंश में उत्पन्न हुए थे जिसे प्रथम तीर्थंकर पुरुदेव ने स्थापित किया था। वे अग्रवाल थे गोयल उनका गोत्र था। तथा 'कसावर' उनका व्यौंक था। अमरसी धर्मात्मा थे तथा जिनके घर में लक्ष्मी का वास था। तत्कालीन राजा महाराजा भी साहु अमरसी का सम्मान करते थे। विशाल वैभव सम्पन्न होते हुए भी जिनेन्द्र भगवान के वे दृढ़ भक्त थे।

साहु अमरसी के पुत्र का नाम पेमचन्द था। वह सुपुत्र था तथा अनेक गुणों की खान था। उसका जीवन पूर्णतः धार्मिक था। पेमचन्द के पुत्र श्रवनदास थे। श्रवनदास अपने पूर्वजों का नगर बयाना छोड़कर आगरा आकर रहने लगे। अपनी जन्मभूमि छोड़ने का मुख्य कारण आजीविका उपाजन था इसलिए बुलाकीदास ने "अन्नपान संयोग तैं" लिखा है लेकिन आगरा में बसने के साथ ही उन्होंने वहां अपना मकान (सदन) भी बना लिया था। श्रवनदास बुद्धिमान थे तथा भगवान जिनेन्द्र देव के भक्त थे। वे पूर्णतः सत्यभाषी थे इसलिए सभी ऋद्धियां उनके घर में व्याप्त थी। उनकी पत्नि जिसका नाम अनन्दी था अत्यधिक सुन्दर तो थी ही साथ में शील की खान थी। उन दोनों के पुत्र का नाम नन्दलाल था जो गुणों का मानों समूह ही था। कुछ बडा होने पर माता पिता ने उसे पढने चटसाल भेज दिया। वहां उसने सभी विद्याए पढ ली।

उसी आगरा नगर में पंडित हेमराज रहते थे। वे गर्ग गोत्रीय अग्रवाल जैन थे। सारा नगर उनके चरणों का दास था। हेमराज ने उस समय तक 'प्रवचनसार' एवं 'पंचास्तिकाय' जैसे कठिन ग्रन्थों का हिन्दी भाषानुवाद कर दिया था। उसके घर में एक पुत्री जैनी ने जन्म लिया जो रूप एवं शील की खान थी। जैनी को उसके पिता हेमराज ने खूब पढाया और अत्यधिक व्युत्पन्न कर दिया। हेमराज ने नन्दलाल को उचित वर जान कर उसके साथ अपनी पुत्री जैनी का विवाह कर दिया। दोनों समान वय के थे। फिर क्या था चारों ओर प्रसन्नता छा गयी और जब जैनी ने वधू के रूप में अपने श्वसुर श्रवनदास के घर में प्रवेश किया तो उसकी पत्नि (सास) ने मोतियों का चौक पूरा। गृहप्रवेश के अवसर पर उसका नाम जैनुलदे रखा गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नन्दलाल एवं जैनुलदे पति पत्नि के रूप में सुख से रहने लगे। दोनों में अत्यधिक प्रेम था तथा वे जयकुमार सुलोचना के रूप में सर्वथा विख्यात थे। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में इन्हें रुकमणि और श्याम के रूप में लिखा है। उन्हीं के पुत्र के रूप में बूलचन्द ने जन्म लिया जो अपनी माता के लिए प्राणों से भी प्यारा था। कविवर बुलाकीदास का वचपन में बूलचन्द ही नाम था।

बूलचन्द बडे हुए। आजीविका के लिए आगरा से इन्द्रप्रस्थ (देहली) आ गये और जहानांबाद रहने लगे। उनकी माता जैनुलदे भी अपने पुत्र के साथ ही देहली आकर रहने लगी। वहाँ माता एवं पुत्र दोनों ही रहने लगे। ऐसा लगता है कवि के पिता का जल्दी ही स्वर्गवास हो गया था। अपने पुत्र के साथ जैनी का अकेला आने का अर्थ भी यही लगता है। वहीं पं० अरुणरत्न रहते थे जो सभी शास्त्रों में प्रवीण थे। संस्कृत प्राकृत के वे अच्छे विद्वान थे। वे ग्वालियर (गोपाचल) के रहने वाले थे। बुलाकीदास ने देहली में उन्हीं के पास ग्रन्थों का विशेष ज्ञान प्राप्त किया था।[1]

बुलाकीदास संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। उन्होंने विवाह किया अथवा नहीं। इसके वारे में दोनों ही कृतियां मौन हैं। क्योंकि यदि उनका विवाह होता तो पत्नि का परिचय भी अवश्य दिया जाता। वे सम्भवतः अविवाहित ही रहे होंगे।

प्रथम रचना

बुलाकीदास ने सर्व प्रथम 'प्रश्नोत्तर श्रावकाचार' का हिन्दी में पद्यानुवाद किया। प्रश्नोत्तर श्रावकाचार मूल संस्कृत भाषा में निबद्ध है जो भट्टारक सकलकीर्त्ति की रचना है पद्यानुवाद करने के लिए कवि की माता जैनुलदे ने इच्छा व्यक्त की थी।

सब सुख देकें यौं कही, सुनो पुत्र सुभ बात।
प्रश्नोत्तर सुभ ग्रन्थ की, भाषा करहु विख्यात ॥२२॥

---

१. घहु हेत करि असन नै दयो जान को भेद।
तब सुवुद्धि घर में जगी करि कुवुद्धि तिम छेद ॥२२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जासौं श्रावक भव्य सब, लहइ अरथ तत्काल ।
धारैं ते चित भाव धरि श्रावक धर्म विसाल ॥२३॥
जननी के ए वचन सुनि, लीने सीस चढाइ ।
रचिवे कौ उद्दिम कींयौ, धरि के मन वच कांइ ॥२४॥

ग्रन्थ की रचना होने के पश्चात् जैनुलदे ने उसे पूर्ण रूप से सुना तथा अपने पुत्र को खूब आशीर्वाद दिया। उसे मानव जीवन को सार्थक करने वाला कार्य बतलाया। कवि ने यद्यपि मूलग्रन्थ का पद्यानुवाद किया है लेकिन व्रत विधान वर्णन अपनी बुद्धि के अनुसार किया है।

प्रश्नोत्तरश्रावकाचार का रचनाकाल सवंत् १७४७ वैशाख सुदी द्वितीया बुधवार है। कवि ने ग्रन्थ के तीन भाग जहांनाबाद दिल्ली में तथा एक भाग पानीपत जलपथ) में पूर्ण किया था।

सत्रहसैं सैंताल मै दूज सुदी वैशाख ।
बुधवार भैरोहिनी, भयौ समापत भाष ॥१०४॥
तीनि हिसे या ग्रन्थ के, भए जहानावाद ।
चौथाई जलपथ विषै, वीतराग परसाद ॥१०५॥

द्वितीय रचना–पाण्डवपुराण

पानीपत में कवि कितने समय तक रहे इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता लेकिन कुछ वर्षों पश्चात् वे वापिस अपनी माता के साथ इन्द्रप्रस्थ देहली आगये और वहीं रहने लगे। वहां माता एवं पुत्र का जीवन सुख एवं शान्तिपूर्वक चलता

---

१. असी विधि यह ग्रन्थ सुभ, रच्यौ बुलाकीदास ।
सौ सब जैंनुलदे सुन्यौ, धार्यौ परम उल्हास ॥८८॥
बहु असीस सुत कौ दई, बाढ्यौ धरम सनेह ।
धन्य पुत्र तुव जन्म कौ, रच्यौ ग्रन्थ सुभ एह ॥८९॥
व्रत विधान वरने विविध, अपनी मति अनुसार ।
बरनत भूलि परि जहां, कविकुल लेहु संवार ॥९०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रहा। प्रतिदिन शास्त्र स्वाध्याय एवं शास्त्र प्रवचन सुनने में समय व्यतीत होने लगा। उस समय माता ने अपने पुत्र के समक्ष पाण्डवपुराण की भाषा करने का निम्न शब्दों में प्रस्ताव रखा—

सब सुख दै तिन यौं कही, सुनो पुत्र मो बात।
सुभ कारज तैं जग विषै, सुजस होय विख्यात ॥४७॥
महापुरिष गुन गाइए, ताही तैं यह जांनि।
दोइ लोक सुख दाइ है, सुमति सुकरिति थांन ॥४८॥
सुनि सुभचन्द्र प्रतीत है, कठिन अर्थ गम्भीर।
जो पुराण पाण्डव महा, प्रगटैं पण्डित धीर ॥४९॥
ताको अरथ विचारि कै, भारथ भाषा नांम।
कथा पांडु सुत पंचमी, कीज्यौ बहु अभिराम ॥५०॥
सुगम अर्थ श्रावक सवै, भनैं भनावैं जाहि।
अैसौ रचि कै प्रथम ही, मोहि सुनावो ताहि ॥५१॥

बुलाकीदास की माता स्वयं विदुषी थी इसलिए उसने अपने पुत्र से भट्टारक शुभचन्द्र प्रणीत पाण्डवपुराण का हिन्दी में सुगम अर्थ लिखकर सर्वप्रथम उसे सुनाने के लिए कहा जिससे भविष्य में उसकी निरन्तर स्वाध्याय हो सके। बुलाकीदास की माता के प्रति अपार भक्ति थी इसलिए उसने तत्काल साहस बटोर करके लेखन कार्य प्रारम्भ कर दिया। जितने अंश की वह भाषा लिखता उतना ही अंश वह अपनी माता को सुना देता।

इहिं विधि भाषा भारती सुनीं जिनुलदे माइ।
धन्य धन्य सुत सौ कही, धर्म सनेह बढाइ ॥५॥

अन्त में ग्रन्थ समाप्ति की शुभ घड़ी आगयो और वह भी सवंत् १७५४ आषाढ सुदी द्वितीय गुरुवार को पुष्य नक्षत्र की घड़ी। इस प्रकार प्रथम ग्रन्थ के ७ वर्ष पश्चात् कवि अपनी दूसरी कृति साहित्यक जगत् को भेन्ट करने में सफल रहे। पाण्डव-पुराण को कवि ने महाभारत नाम से सम्बोधित किया है। कवि की यह कृति जैन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय बनी रही। इसकी पचासों पाण्डुलिपियां आज भी राजस्थान एवं अन्य प्रदेशों के ग्रन्थागारों में संग्रहीत है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लघु कृतियां

बुलाकीदास की दो प्रमुख कृतियो के अतिरिक्त निम्न कृतियों के नाम और मिलते हैं—

१. प्रश्नोत्तररत्नमाला

२. वार्ता

३. चौबीसी

१. प्रश्नोत्तर रत्नमाला—दो पत्रों में निबद्ध यह कृति संस्कृत भाषा की है तथा जिसकी एक मात्र पाण्डुलिपि दि० जैन पार्श्वनाथ मन्दिर बून्दी के शास्त्र भण्डार में वेष्ठन संख्या ११० में संग्रहीत है। यह प्रति सुभाषित के रूप में है।[1]

२. वार्ता—प्रश्नोत्तर श्रावकाचार में से संग्रहीत वार्ता के रूप में यह दि० जैन मन्दिर कोट्यों नेणवा के शास्त्र भण्डार के एक गुटके में उपलब्ध होती है। गुटका सम्वत् १८१४ का लिखा हुआ है।[2]

इसका उल्लेख काशी नगरी की प्रचारिणी पत्रिका में हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों के पन्द्रहवें त्रैवार्षिक विवरण में हुआ है। पत्रिका के सम्पादकों को इसकी प्रति 'मॉंगरोव गुजर' के रहने वाले श्री दुर्गासिंह राजावत के पास प्राप्त हुई थी। मांगरोव का डाकखाना रुनकता तह्सील किरावली जिला आगरा है। इसमें १९६ अनुष्टुप छन्द हैं। भगवान आदिनाथ की वन्दना में एक छन्द इस प्रकार है—

वन्दो प्रथम जिनेश को, दोष अठारह चुरी।
वेद नक्षत्र ग्रह औरष, गुन अनन्त भरी पुरी।
नमो करि फेरि सिद्धि को, अष्ट करम कीए छार।
सहत आठ गुन सो भई, करै भगत उधार।

---

१. राजस्थान ने जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पञ्चम भाग —पृष्ठ संख्या ६८८

२. वही पृष्ठ संख्या १०२२

३. देखिये भक्त काव्य और कवि,-डा० प्रेमयागा -षष्ठ संख्या २९२-९३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचारज के पद णमो दूरी अन्तर गति भाउ ।
पंच अचरजा सिद्धि ते, भारै जगत के राउ ।

कविवर बुलाकीदास ने इन रचनाओं के अतिरिक्त, अन्य कितनी रचनायें निबद्ध की थी । इस सम्बन्ध में निश्चित जानकारी देना कठिन है । लेकिन सम्भव है आगरा, मैनपुरी, राजाखेड़ा एवं इनके आसपास के नगरों में स्थित शास्त्र भण्डारों की पूरी छानबीन एवं खोज में बुलाकीदास की और भी रचनायें मिल जावें ।

वैसे मिश्रबन्धु विनोद में कवि की एक मात्र कृति पाण्डवपुराण का उल्लेख किया हुआ है ।[1] डा० नेमिचन्द्र शास्त्री ने भी "तीर्थंकर महावीर एवं उनकी आचार्य परम्परा" में बुलाकीदास के परिचय में केवल पाण्डव पुराण का ही उल्लेख किया है ।[1] पं० परमानन्द जी ने "अग्रवालों का जैन संस्कृति में योगदान" लेख में बुलाकीदास की दो प्रमुख रचनाओं प्रश्नोत्तरश्रावकाचार एवं पाण्डवपुराण का उल्लेख किया है ।[3]

शेष जीवन

बुलाकीदास की जन्म तिथि के बारे में कोई उल्लेख नहीं मिलता । लेकिन उनका बाल्यकाल आगरा में ही व्यतीत हुआ । शिक्षा भी यहीं हुई । पं० अरुण रत्न जो देहली के पण्डित थे, इनके पास बुलाकीदास ने संस्कृत भाषा का अध्ययन किया तथा साथ ही में अपनी माता जैनुलदे से विशेष शिक्षा प्राप्त की थी । जैनधर्म एवं साहित्य की शिक्षा उनको पैतृक रूप में प्राप्त हुई । संवत् १७४५ से १७५४ का दश वर्ष का जीवन उनका साहित्यक जीवन रहा जिसमें वे 'प्रश्नोत्तरश्रावकाचार' एवं 'पाण्डवपुराण' जैसे ग्रन्थों की रचना करने में सफल हुये । इसके पश्चात् वे कितने वर्षों तक जीवित रहे इस सम्बन्ध में कोई जानकारी नहीं मिलती । फिर भी बुलाकीदास का समय संवत् १७०० से १७६० तक माना जा सकता है ।

---

१. मिश्र बन्धु विनोद—पृष्ठ संख्या ३४०
२. तीर्थंकर महावीर एवं उनकी आचार्य परम्परा—चतुर्थ भाग—पृष्ठ २६३
३. देखिये अनेकान्त वर्ष २० किरण—४ पृष्ठ १८३-१८४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बुलाकीदास के दो प्रमुख ग्रन्थों का अध्ययन

१. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार

जैनधर्म में एकदेशधर्म एवं सर्वदेशधर्म नामसे धर्म पालन की दो प्रक्रियायें बतलायी गयी है। इनमें एकदेशधर्म श्रावकों के लिये एवं सर्वदेशधर्म का पालन साधुओं के लिए कहा गया है

प्रथम धर्म श्रावक करै कह्यौ जु एको देस ।
द्वितीय धर्म मुनिराज को, भाषित सर्वदेस ।।४९।।
सुगम धर्म श्रावक करै, धरै जु गृह को भार ।।
कठिन धर्म मुनिराज को, सहै परीसह सार ।।५०।।

बारह अंगो के ग्रन्थों में सातवां अंग उपासकाध्ययनांग है जो वृषभ गणधर द्वारा कहा गया है। ये आदिनाथ स्वामी के गणधर थे। अजितनाथ ने भी श्रावकक्रिया का पूर्ण रूप से बखान किया। अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर एवं उनके पश्चात् होने वाले गौतम, सुधर्मा एवं जम्बुस्वामी ने श्रावक धर्म का विस्तार से वर्णन किया। इसके पश्चात् विष्णुकमार मुनि ने द्वादशांग वाणी का कथन किया। लेकिन धीरे धीरे आयु और बुद्धि दोनों में कमी आती गयी। आचार्य कुन्दकुन्द ने श्रावकधर्म का प्रतिपादन किया। उनके पश्चात् जिस रूप में श्रावक धर्म चलता रहा तथा श्रुत ज्ञान प्राप्त किया उसी रूप में आचार्य सकलकीर्त्ति ने श्रावक धर्म का वर्णन किया। भट्टारक सकलकीर्त्ति द्वारा प्रतिपादित श्रावक धर्म का वर्णन संस्कृत में था वह सामान्य बुद्धि वालों के लिए भी कठिन रहता था इसलिये उसे ही बूलचन्द अर्थात बुलाकीदास ने हिन्दी में छन्दोवद्ध किया।[1]

---

१ घटी आयु अरु मेधा अंग, घट्यो धर्म कारन तिहि संग।
कुन्दकुन्द आचारज कह्यो. तासौं ज्ञान सरावग लह्यौ ।।६४।।
क्रम सौं चल्यौ जसोई धर्म, कछुक जान्यो श्रुत को मर्म ।
सकलकीर्त्ति आचारज कह्यो, श्रावक धर्म जु जासौं लह्यो ।।६५।।
सकलकीर्ति सुभ संस्कृत कह्यो, कठिन अर्थ पंडित ही लह्यो।
लियो जु सोई अरथ विचार, बूलचन्द मति थोरी सार ।।६६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर्व प्रथम कवि अपनी लघुता प्रकट करते हुये धर्म की महिमा का वर्णन करता है—

मेघ बिना नहि चावर हौंहि, होइ मेघ तब उपजै सोइ।
धर्म्म बिना त्यौं सुख भी नांहि, सुख निवास इक धर्म्म जु आहि ॥७४॥

दोहा

जैसे अजगर मुख विषै नांही सुधा निवास।
पाप कर्म के करन त्यौं, लहै न सुख की वास ॥५॥

प्रथम प्रभाव में ८४ पद्य हैं। दूसरा प्रभाव अजितनाथ के स्तवन से प्रारम्भ किया गया हैं। इसके पश्चात् श्रावक निम्न प्रकार प्रश्न करता है—

तहां प्रश्न श्रावक करै, कहै ज स्वामी अनूप।
कैसे दरसन पाइये, कहीयत कौन सरूप ॥५॥

इस प्रश्न का उत्तर निम्न प्रकार है—

सप्त तत्व को सर्द्दहन, कह्यो जु दरसन एहु।
भव्य जीव तातै प्रथम, तत्त्व ठीकता लेहु ॥६॥

इसके पश्चात् जीव अजीव आदि सात तत्वों में से जीव तत्व का व्यवहार एवं निश्चय की दृष्टि सें कथन किया गया है। अजीव द्रव्य के कथन में पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल द्रव्य का सामान्य लक्षण कहने के पश्चात् आस्रव द्रव्य का वर्णन किया है। पुण्य पाप का लक्षण जोड़ कर नो पदार्थों का वर्णन हो हो जाता है। पुण्य का कवि ने निम्न प्रकार कथन किया हैं—

पुन्य पदारथ सोइ, सुख दाइक संसार मैं।
अर ऊरध गति होइ, जो निर्म्मल भाव निबंधइ ॥१०४॥

बुलाकीदास ने प्रभाव (अध्याय) समाप्ति पर निम्न प्रकार अपना परिचय दिया है—इति श्रीमन्महाशीलाभरण भूषित जैंनी सुनु लाल बुलाकीदास विरचितायां प्रश्नोत्तरपासकाचार भाषायां सप्त-तत्व नव-पदार्थ प्ररुपणो नाम द्वितीयः प्रभावः।

तीसरे प्रभाव में सम्यग्दर्शन के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है जिसका एक पद्य निम्न प्रकार है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वीतराग जो देव है, धर्म अहिंसा रूप,
गुरु निग्रन्थ जु मानिए, यह सम्यक्त्व सरूप ॥३॥

अरहन्त के ४६ गुणों का विस्तृत वर्णन करने के पूर्व केवली के आहार का निषेध किया गया है। कवि ने अपने बूलचन्द के नाम का भी प्रयोग किया है।

छयालीस गुन ए कहे, पढौ भव्य सुभ लीन।
बूलचन्द यौं वीनवै, राखो कंठ सदीव ॥५६॥१२॥

इस प्रकार तीसरे प्रभाव में देव, धर्म एवं गुरु के स्वरूप पर अच्छा प्रकाश डाला है जो १०२ पद्यों में समाप्त होता है।

चतुर्थ प्रभाव में अष्टांग सम्यग्दर्शन का ५६ पद्यों में वर्णन किया है। पञ्चम प्रभाव सुमति जिन की स्तुति से प्रारम्भ होता है। इसके पश्चात् सम्यग्-दर्शन के आठ अंगो की कहानी को निम्न प्रकार विभाजित किया है—

पञ्चम प्रभाव—	निशंकित अंग—अञ्जन तस्कर कथा—	१४० पद्य
षष्टम प्रभाव—	निःकांक्षित अंग—अनन्तमतीकथा—	पद्य ६४
सप्तमप्रभाव—	निर्विचिकित्सा एवं अमूढ दृष्टि अंग —उद्दापन राजा रेवती रानी कथा—	पद्य ७३
अष्टम „—	उपगूहन एवं स्थिति करण अंग— जिनेन्द्र भक्त श्रेष्टि एवं वारिषेण मुनि—	७० पद्य
नवम „—	वात्सल्य अंग— विष्णुकुमार मुनि—	७० पद्य
दशम „—	प्रभवाना अंग— वज्रकुमार मुनि—	६४ पद्य
एकादश „—	सम्यक्त्व महात्म्य— अष्ट मदों का वर्णन —	५३ पद्य
द्वादश „—	अष्ट मूलगुण, सप्तव्यसन अहिंसा अणुव्रत वर्णन— —	१०० पद्य

अष्ट मूलगुणों को एक सवैय्या छन्द में निम्न प्रकार गिनाए हैं—

१ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८
मदिरा अमिष मधु वट फल पीपल जु ऊवर कंठूवर औ पिलुवन जानियै।
इनको खाइ नर सोइ महापाप घर सुमति कौ नास कर कुमति जु मानियै।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तेरी कोरी इन आदि नीचकुल उतपात
अथवा नरक गति तिरजंच ठानियै।
इनको जु त्यागी नर सोइ मूल गुन
वाही कौ मुकति वर आगम बखानियै।

इसी प्रभाव में यमपाल चांडाल एवं धनश्री की कथा भी दी हुई है।

त्रयोदश प्रभाव	सत्याणुव्रत एवं धनदेव सत्यघोष की कथा	— ७४
चतुर्दश प्रभाव	अदत्तादान विरतिव्रत एवं महाराज कुमार श्री वारिषेण तापस कथा	— ६१ पद्य
पञ्चदश प्रभाव	स्थूल ब्रह्मचर्याणुव्रत नील्या रक्षक कथा	— ७० पद्य
षोडशम प्रभाव	परिग्रह परिमाणव्रत जयकुमार कथा	— ७७ पद्य
सत्रहवां प्रभाव	तीन गुणव्रतों का वर्णन	— ६५ पद्य
अठारहवां प्रभाव	चार शिक्षाव्रतों में से देशावकाशिक एवं सामाइक व्रत का वर्णन	— १२० पद्य
उगनीसवां प्रभाव	प्रोषधोपवास व्रत वर्णन	— ३२ पद्य
बीसवां प्रभाव	चतुर्विधदान वर्णन (वैाय्यवृत्त)	— १४७ पद्य
इक्कीसवां प्रभाव	चतुर्विधदान कथा, जिन पूजा कथा श्री षेण, वृषभसेन आदि कथा	— ३६५ पद्य

इस प्रभाव में पूजा पाठ भी दिया हुआ है।

बाईसवां प्रभाव	सल्लेखना, ग्यारह प्रतिमा वर्णन में से सामायिक प्रतिमा तक वर्णन	— ६६ पद्य
तेईसवां प्रभाव	ब्रह्मचर्य प्रतिमा तक वर्णन	— ८४ पद्य
चौबीसवां प्रभाव	शेष दो प्रतिमाओं का वर्णन एवं ग्रन्थकार प्रशस्ति	— १०५ पद्य

ग्यारह प्रतिमाओं का वर्णन बुलाकीदास ने आचार्य समन्तभद्र के रत्नकाण्ड श्रावकाचार के अनुसार लिखा है ऐसा उसने संकेत किया है—

रतनकरंडक ग्रन्थ सौ, देखि लिखो यह वात।
वचन समन्त जु भद्र के, जानौं सत्य विख्यात ॥८१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रन्थ के अन्त में कवि ने अपने गुरु अरुणरतन, तत्कालीन बादशाह औरंगजेब तथा अपनी माता जैनुलदे के प्रति आभार व्यक्त किया है जिनके कारण वह ग्रन्थ रचना में सफल हो सका ।

नगर जहानांबाद मैं, साहिब औरंगसाहि ।
विधिनां तिस छत्तर दियौ, रहै प्रजा सुख मांहि ।।९४।।
ताके राज सुचैन मैं, वन्यौ ग्रन्थ यह सार ।
ईति भीति व्यापै नहीं, यह उनकौ उपगार ।।९५।।
धन्य जु माता जेनुलदे, जिन बनवायो ग्रन्थ ।
जाके सुभ सहाइ तैं, सुगम भयो सिव पंथ ।।९६।।
अरुन रतन गुरु धन्य है, जिनके वचन प्रभाव ।
कठिन अर्थ भाषा रच्यौ, लह्यौ सब्द अरथाव ।।९७।।

× .... × .... × .... × .... × .... × ....

गोयल गोत सिरोमनी, नन्दलाल अमलांन ।
जस प्रताप प्रगटौ सदा, जब लग ससि अरु भान ।।१०३।।

पाण्डव पुराण

बुलाकीदास की यह सबसे बडी विशालकाय कृति है । पाण्डवपुराण की मूल कृति भट्टारक शुभचन्द्र द्वारा संस्कृत में संवत् १६०८ में निबद्ध की गयी थी उसी के आधार पर पाण्डव पुराण की हिन्दी पद्य कृति बुलाकीदास द्वारा निबद्ध की गयी पाण्डवपुराण को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है इसलिये राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारों में इसकी पाण्डुलिपियां संग्रहीत है ।

पाण्डवपुराण का प्रारम्भ सर्वज्ञ नमस्कार से किया है । अंतिम श्रुत केवली भद्रबाहु का स्मरण करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द का निम्न शब्दों में गुणगान किया गया है—

---

१. प्रश्नोत्तर श्रावकाचार भाषा – पद्य संख्या ११० – आकार १० + ५ इन्च । ग्रन्थाग्रन्थश्लोक संख्या २५७२ - लेखन काल - स० १८०७ वर्ष श्रावण बदि ६ लिखंत सुधाराय ब्राह्मण । लिखायतं खुशालचन्द्र छाबड़ा पठनार्थं हेतवे । शास्त्र भण्डार दि० जैन बडा तेरापंथी मन्दिर जयपुर ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ब्राह्मी जिम पाषान की, उज्जंयन्त गिरसीस ।
या कलि में वादित करी, कुन्दकुन्द मुनि ईस ।।१६।।

इसके पश्चात् आचार्य समन्तभद्र, पूज्यपाद, अकलंक स्वामी, आचार्य जिनसेन गुणभद्र एवं अपने गुरु अरुणरतन का गुणानुवाद एवं उनके सुकृत्यों का स्मरण किया गया है । वर्णन अच्छा एवं ऐतिहासिक प्रतीत होता है इसलिए उसे अविकल रूप से यहां दिया जा रहा है—

देवागम जिन स्तवन सौं प्रगट सुरागम कीन ।
समंतभद्र भद्रार्थमय, गुन ग्याक गुन लीन ।।१७।।
जिन वारधि व्याकरन कौ, लह्यौ पार मुनिराय ।
पूज्यपाद निति पूज्य पद, पूजो मन वचकाय ।।१८।।
नि:कलंक अकलंक जस, सकल शास्त्र विद जेन ।
मायादेवी ताडिता, कुम्भथिता पादेन ।।१९।।
चिरजीव जिनसेन जति, जाकौ जस जग मांहि ।
जिन पुरान पुरदेव कौ, वरन्यौ वन्दौ ताहि ।।२०।।
पुरणाद्रि परकासकौ, सूर्यापित है जोइ ।
प्रभवंत गुणभद्र गुरु. भूतल भूषन सोइ ।।२१।।
अरुण रतन गुरु चरन जुग, सरन गहौं कर जोर ।
वरन ज्ञान के करन कौं, तरुण किरणि जिम भोर ।।२२।।

इसके पश्चात् कवि ने अपने वंश का परिचय दिया है जिसको पूर्व में उघृत किया जा चुका है । कवि की माता द्वारा पाण्डवपुराण भाषा लिखने, कवि द्वारा अपनी लघुता प्रदर्शित करके । वक्ता एवं श्रोता एवं कथा के लक्षण का वर्णन किया गया है । कथा का लक्षण निम्न प्रकार कहा गया है—

कथन रूप कहिए कथा, सो है दोइ प्रकार ।
सुकथा जो जिन कही, विकथा और असार ।।८४।।
चरम सरीरी जे महा, तिनके चरित्त विचित्र ।
पुण्यहेत जहा वर्णीये, सो है कथा पवित्र ।।८५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुन्यपाप फल वर्णिये, वरने व्रत तप दांन ।
द्रव्य क्षेत्र फुनि तीर्थं सुभ, अरु संवेग बखान ।
जो स्वतत्व कौ थापि कै, दूरि करै परतत्व ।
ग्यानकथा सो जांनिये, जहां वरनै एकत्व ।।८७।।

जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र और उसमें आर्य खण्ड, वहां के राजा सिद्धार्थ एवं रानी त्रिशला के यहां वर्धमान तीर्थंकर का जन्म हुआ। वर्धमान ने साधु दीक्षा लेने पश्चात् केवल प्राप्त किया और गौतम गणधर के साथ जब उनका समवसरण मगध की राजधानी में आया। तब राजा श्रेणिक प्रभु की शरण में गया और उनकी अमृतवर्षा युक्त दिव्य ध्वनि को सुना। वीर प्रभु वह का समवसरण देश के विभिन्न भागों में गया कवि ने उनके नाम निम्न प्रकार गिनाए हैं—

अंग बंग कुरुजंगल ठए, कोमल और कलिंगे गए ।
महाराठ सोरठ कसमीर, पराभीर कौकण गंभीर ।।१८।।
मेदपाट भोटक करनाट, कर्ण कोस मालवै वैराठ ।
इन आदिक जे आरज देश, तहां जिननाथ कीयौ परवेश ।।३६।।

भगवान महावीर का जब समसरण राजगृही नगरी के वैभारगिर पर आया महाराजा श्रेणिक ने महारानी चेलना सहित उनकी वन्दना की और अपने स्थान पर बैठने के पश्चात् भगवान से निम्न प्रकार निवेदन किया—

एकज विनती तुम सा कहुं, पाण्डव चरित सुन्यौ मैं चहुं ।
पांडव पांच जगत विख्यात, कौन वंश उपजै किह भांति ।।१२।।
कुरु अन्वय किस जुग मैं भया, के के नर तिस वंसहि ठए ।।
कौन कौन तीर्थंकर भए, कौन कौन सुभचक्री ठए ।
कुरवंसहि वरनौ इहि भाय, ज्यौं मेरो संसय सब जाय ।।१४।।

उक्त कथा जानने के अतिरिक्त श्रेणिक ने और भी अनेक प्रश्न पूछे जिनका सम्बन्ध पाण्डव कथा से ही था। कवि ने उन सबका विस्तृत वर्णन किया है।

कवि ने भोग भूमि के पश्चात् अन्तिम कुलकर नाभि से वर्णन प्रारम्भ किया है। चतुर्थकाल के पूर्व का जीवन, नाभिराजा के प्रथम पुत्र तीर्थंकर ऋषभदेव के गृहत्याग एवं जयकुमार द्वारा सम्राट भरत के सेनापति का पद ग्रहण तक वर्णन किया गया है। इस प्रभाव में १४६ पद्य हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तृतिय प्रभाव में सुलोचना उत्पत्ति, स्वयंबर रचना, जयकुमार के गले में माला डालना, सम्राट भरत के पुत्र अर्ककीर्त्ति द्वारा विरोध एवं जयकुमार के साथ युद्ध का अच्छा वर्णन किया गया है।

धनुष कांन लगि खैंचि सुधारे तीरही,
तिनके आनन तीक्षन अरि तन चीरहीं।
वार पार सर निकसै उर कौं भेदि कै,
केइक मारहिं दंड सुदंडहि छेदि कै ॥११॥
केइक खरगहिं खरग झराझर वीतहीं,
परहिं मुंड कर धरनि इहर नरीतिही।
कवच टूटि जब जांहि कचाकच ह्वै परैं,
सूरन के कर शस्त्र सु लरि लरियौं मरैं ॥१२॥

युद्ध में किसी की भी विजय नहीं होने, अर्ककीर्त्ति के समझाने पर युद्ध की समाप्ति, जयकुमार सुलोचना विवाह एवं भगवान ऋषभदेव के कैलाश से निर्वाण होने का वर्णन मिलता है।

चतुर्थ प्रभाव में कुरुवंश की उत्पत्ति एवं उस वंश में होने वाले राजाओं का संक्षिप्त वर्णन किया गया है। अनन्तवीर्य राजा के कुरु पुत्र से कुरुवंश की उत्पत्ति मानी गयी है—

अब अनंत वीरज नृपति, राज करयौ बहु काल।
तिनहीं के सुत कुरु भए, सोभित उर गुनमाल ॥३॥
भए चंद कुरु वंस नभ, फुनि उपजे कुरुचंद।
तिनके तनय सुंभकरो, नृप गन मैं अरविंद ॥४॥

इस ही वंश में १६ वें तीर्थंकर शांतिनाथ हुए। जो चक्रवर्त्ति भी थे। उन्हीं का ६ पूर्व भवों का वर्णन इस प्रभाव में किया गया है।

तिन पीछै तहां नृप भए, विश्वसेन विख्यात।
ताकैं सुत जिन सांति को, वरनो चरित सुभांति ॥१२॥

इसी वर्णन में कन्या का विवाह कैसे वर के साथ करना चाहिये इसका निम्न प्रकार कथन किया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ २ ३ ४ ५ ६
जाति अरोगी वय समांन, सील श्रुती वधु जांन ।
७ ८ ९
लछि पछय परवारए, नव गुए वरहि वखान ।।२६।।

पञ्चम प्रभाव

एक बार ईसान स्वर्ग की इन्द्र सभा में वज्रायुध राजा की प्रशंसा होने लगी । वहां कहा जाने लगा कि उसके समान इस समय कोई सम्यक्त्वी नहीं हैं । इसी बात को चित्रचूल देवता ने सुन लिया । वह वज्रायुध की प्रशंसा को सहन नहीं कर सका और उससे वाद करने लिए वहां आ गया ।

चित्रचूल एकांत नय, अनेकांत नर राइ ।
इनकौं वाद वखानिये, वातैं रूप वनाइ ।।२१।।

इसके पश्चाद् कवि ने अनेकांत एवं एकांत चर्चा को गद्य में लिखा है । इसका एक उदाहरए निम्न प्रकार हैं—

प्रथम ही सुर बोल्यौ – हे राजन् जीवादिक सप्त तत्व नव पदार्थ के विचार विषै तुम पंडित हौ । तातै तुम कहौ । पर्याय पर्याइ विषै भेद है कि नाहीं । जौ तुम कहौगे की पर्यायी तै पर्याय भिन्न है तौ वस्तु कौ अभाव होइगौ ।

राजा वज्रायुध ने एकान्तवाद कि विरोध में अपना पक्ष बहुत ही सुन्दर शब्दों में रखा । कवि ने पञ्चास्तिकाय में से कुछ गाथाओ को उद्धृत किया है राजा वज्रायुध की बातों से अन्त में वह देव अत्यधिक प्रभावित हुआ और निम्न प्रकार अपनी बात कहकर स्वर्ग चला गया —

जैंसा स्वर्ग लोक विषैं इन्द्र महाराज्य न कह्या था तै सही हैं । यामैं संदेह नांही । असैं निसंदेह सुर भया । कह्या की वज्रायुध तुम धन्य हौ शुद्ध सम्यगदृष्टी हौ । (पृष्ठ ६६)

क्षेमंकर अपने पुत्र वज्रायुध को राज्य सौंपकर स्वयं दीक्षित हो गया । वज्रायुध चक्रवर्त्ति राजा था । वज्रायुध के पश्चात् सहस्रायुध राजा बना । इसके पश्चात् एक के पीछे दूसरे राजा बनते गये । अन्त में हस्तिनापुर के राजा विश्वसेन हुए उनकी रानी ऐरावती थी । उसी के गर्भ से १६ वें तीर्थंकर शांतिनाथ का जन्म हुआ । जब वे युवा हुए तो विश्वसेन ने उनको राज्यभार सौंप कर स्वयं वैराग्य धारए कर लिया । वे चक्रवर्त्ति सम्राट् थे । दीर्घकाल तक राज्य सम्पदा भोगने के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पश्चात् अपने ही दो रूप दिखने के कारण वैराग्य हो गया और अन्त में सम्मेद-शिखर से निर्वाण प्राप्त किया।

षष्ट प्रभाव में १७ वें तीर्थंकर कुंथुनाथ एवं सप्तम प्रभाव में अरनाथ तीर्थंकर का जीवन चरित वर्णित है। दोनों ही प्रभाव छोटे छोटे हैं।

अष्टम प्रभाव में तीर्थंकर 'अरनाथ' के चार पुत्रों से कथा प्रारम्भ होती है।[1]

इसी बीच ऊज्जयिनी के राजा श्री वर्मा, उसके चार मन्त्रियों एवं अकंपनाचार्य संघ की कहानी प्रारम्भ होती है। मुनिसंघ के एक मुनि श्रुत सागर द्वारा वादविवाद में जीतकर आने के साथ कथा में मोड़ आता है।

सातसौ मुनियों पर उपसर्ग, उपसर्ग निवारण हेतु विष्णुकुमार मुनि द्वारा बलि राजा से तीन कदम भूमि मांगना, और अंकपनाचार्य आदि ७०० मुनियों पर से उपसर्ग दूर होने की कथा चलती है। जैनधर्म में रक्षावंधन पर्व का इसीलिए महत्त्व है कि इस दिन ७०० मुनियों की विष्णुकुमार मुनि द्वारा जीवन रक्षा हुई थी।

इसी प्रभाव में गंगासुत गंगेय द्वारा अपने पिता की इच्छा पूर्ति के लिए धीवर कन्या गुणवति को लाया जाता है। राजपुर के राजा व्यास के तीन पुत्र घृतराष्ट्र, पांडु, एवं विदुर होते हैं। इसके पश्चात् हरिवंश की कथा प्रारम्भ होती है। घृतराष्ट्र के भाई पांडु द्वारा कुन्ती से समागम के प्रस्ताव का कवि ने अच्छा वर्णन किया है। कुन्ती कुंवारी थी पांडु द्वारा प्रेमपाश में फंसने के कारण वह गर्भवती हो गयी। जब माता पिता को मालूम पड़ा तो वे बहुत कुपित हुए। कुन्ती के पुत्र हुआ। इसका नाम कर्ण रखा गया लेकिन लोक लज्जा से भयभीत होकर वे उस बालक को मन्जूसा में रखकर नदी में बहा दिया। वह बहता हुआ चम्पापुर के तट पर पहुँच गया जहाँ के राजा द्वारा पुत्र के रूप में पाला गया।

---

१. अर सुत श्री अरविंद नृप, ताकै पुत्र सुचार।
उपजे सूर सुचातें, ताकैं भूप सुसार ।।२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवम प्रभाव

प्रारम्भ में कवि ने कर्ण की उत्पत्ति पर एक व्यंग कहा है—

सुनि श्रेणिक संसार मैं, महामूढ हैं लोग ।
अैसे कर्णकुमार कौ, कर्णज कहत अजोग ।।२।।
कर्ण कर्ण बातैं चली, जनम समैं पुर ग्रांम ।
तातैं अन्धक वृष्टि नृप, कर्ण धरचौ तिस नाम ।।३।।
खाज उठी राधा श्रवन, बालक लेती वार ।
तातैं राजा भानु नैं, भाष्यौ कर्णकुमार ।।४।।
कर्ण भवो जो कर्ण तैं, तौ यह सारि सिष्टि ।
क्यौ नहि उपजै कर्ण तैं, तातैं झूठ अनिष्ट ।।५।।
कर्ण नासिका नर भए, देखे सुने न कोइ ।
तातैं उतपति कर्ण की, कर्ण विषै किम होइ ।।६।।

इसके पश्चात् पाण्डु एवं कुन्ती के साथ विवाह का कवि ने बहुत ही सुन्दर वर्णन किया हे। बरात का चढना, बरतियों द्वारा नाचगान, नगर की सुन्दरियों द्वारा पान्डु को देखने की इच्छा, आदि का अच्छा वर्णन किया हे। पाण्डु का कुन्ती के साथ विवाह संपन्न हो गया। पाण्डु की दूसरी पत्नि का नाम मद्री था। कुन्ती से युधिष्ठर, भीम एवं अर्जुन तथा मद्री से नकुल एवं सहदेव पुत्र हुए। धृतराष्ट्र की पत्नि का नाम गंधारी था। जब वह सर्वप्रथम गर्भवती हुई तो उसे सौ पुत्रों की माता होने का आशीर्वाद प्राप्त हुआ।

पूरन मास वितीते जबैं, सुख सौ तनुज जन्यौ तिन तबैं ।
तब वढ़वारनि नाइन धाइ, ताहि असीस दई इहि भाइ ।।२०।।
सत सुत जनियौ सुख खांनि, चिरंजीयौ गंधारि रांनि ।
जिहि मंग जुद्ध सु दुखतैं होइ, तातैं भनि दूर जेघन सोइ ।।२१।।

पांचों पांडवों एवं १०० कौरवों को द्रोणाचार्य ने धनुर्विद्या सिखलायी।

दशम प्रभाव

एक समय पांडु एवं मद्री वन भ्रमण को गये। वन की सुन्दरता, एकाकीपन एवं प्राकृतिक छटा को देखकर वह कामातुर हो गया और मद्री को लेकर झुरमुट की ओर चला। वहां उसने एक मृग एवं मृगी को काम वासना युक्त देख

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर अकारण उसे अपने ही बाण से मार गिराया। अकारण ही मारने से आकाश से आकाश वाणी हुई जिसमें उसे भला बुरा कहा और इस कार्य को निन्दनीय ठहराया। वहीं पर विहार करते हुए एक निर्ग्रन्थ मुनि आये उन्होंने भी पाण्डु एवं मद्री को संसार की असारता एवं भोगों की निस्सारता पर प्रवचन दिया।

इंहि विधि मुनि कै वचन सुनि, पांडु भयौ भयवंत।
जीवन संयम तडित सम, जांनि छिनक छय संत ॥७॥
तब चित मैं थिरता धरी, वन्दे मुनिवर पाइ।
अधिक भगति करि थुति करत, चल्यौ नगर को राइ ॥८॥

पांडु राजा नगर में गये। अपने पूरे परिवार को एकत्रित किया और सबको काम विषयों की एवं जगत की असारता तथा मृत्यु की अनिवार्यता पर प्रकाश डाला। अपने भाई धृतराष्ट्र को बुलाकर अपने पांचों पुत्रों को सौंप दिया और अपने पुत्रों के समान उनसे व्यवहार करने की। प्रार्थना की कुन्ती से पुत्रों को सम्हालने के लिए कहा। राज्य पाट त्याग कर गंगा नदी के किनारे जाकर जिन दीक्षा धारण करली और यावत् जीवन आहार न लेने की प्रतिज्ञा ले ली, मद्री रानी ने भी वैसा ही किया और दोनों ने मरकर प्रथम स्वर्ग में प्राप्त किया।

एक दिन महाराज धृतराष्ट्र राज्य करते हुए वन भ्रमण को चले। वहाँ की एक शिला पर विपुलमती मुनि ध्यानस्थ थे। राजा को मुनि ने उपदेशामृत पान कराया। इसके पश्चात् धृतराष्ट्र ने मुनि से निम्न प्रकार प्रश्न किये—

अैसी सुनि कै पूछी राइ, हे स्वामी कहीए समझाइ।
मेरे सुत अति पांडव साज, इनमैं कौन लहैगो राज ॥५७॥

× .... × .... × .... × .... ×

पांडव पंच महाबल धनी, ह्वै है कैसी थिति उन तनी ॥६१॥
ए मेरे सुत पृथिवी माहि, छत्रपति ह्वै है अकि नांहि।
मगध देस फुनि सोभित महा, राजग्रही पुरि तामैं।
जरासंध नृप तामैं महा, प्रति केशव सों अन्तिम कहा।

उक्त प्रश्नों के अतिरिक्त धृतराष्ट्र ने और भी प्रश्न पूछे। मुनिराज ने धृतराष्ट्र के प्रश्नों का निम्न प्रकार उत्तर दिया—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रैसी सुनि मुनि बोले सही, हे राजा अब सुनीये यही ।
पांडव अरु दुरजोधन आदि, इनमैं ह्वै है अति हि विवाद ।

दोहा

एक राज कै कारनै ह्वै है इनहि विरुद्ध ।
तेरे सुत कुरुखेत में, मरि हैं करि कै जुद्ध ॥६८॥
दुहूं उरके सुभट जहां, मरहि परस्पर धाइ ।
ग्रैसे रण मैं पांडवा, जीति लहैगे राइ ॥६९॥
हति कै तेरे सुतन कौ, गहिं गजपुर राज ।
पूरव पुन्य प्रताप तैं, लहि हे सव सुख साज ॥७०॥
जरासंध की बात तुम, जो पूछी यह ग्रौर ।
सो नारइन हाथ तैं, मरि हैं तांही ठोर ॥७१॥

ग्यारहवां प्रभाव

मुनि की बात सुनकर राजा धृतराष्ट्र भी जगत से उदासीन हो गये । ग्रौर युधिष्ठर को राजा बना कर स्वयं ने जिनदीक्षा धारण कर ली । द्रोणाचार्य से पांच पाण्डवों एवं कौरवों ने धनुर्विद्या सिखी । लेकिन इस विद्या में पाण्डव प्रवीण थे । पांडवों एवं कौरवों में धीरे धीरे विरोध बढ़ने लगा । इस विरोध को शान्त करने के लिए युधिष्ठर ने ग्राधा ग्राधा राज्य बांट दिया । लेकिन इसमें भी शान्ति नहीं मिली । जब भी कोई प्रसंग ग्राता कौरव उपद्रव किये बिना नहीं मानते । फिर भी वे भीम एवं ग्रर्जुन की बराबरी नहीं कर सकते थे । एक बार भीम को का जहर खिला दिया लेकिन भीम ग्रपने पुण्योदय से बच गया । एक बार धनुर्विद्या की परिक्षा में ग्रर्जुन ने पक्षी के ग्रांखों पर तीर चलाकर ग्रपनी विद्या की प्रशंसा प्राप्त की । शब्दवेधी वाण चलाने में भी ग्रर्जुन सबसे ग्रागे रहे ।

बारहवां प्रभाव

इसके पश्चात् राजा श्रेणिक द्वारा यादवों की कथा कहने की प्रार्थना करने के कारण कवि ने इस प्रभाव में यादव कथा कही है । यादव वंश में वसुदेव शिरोमणी थे । वसुदेव के बलभद्र पैदा हुए । एक बार जरासंध ने घोषणा की जो सिंहरथ को बांधकर ले ग्रावेगा उसके साथ ग्रपनी पुत्री का विवाह करेगा । वसुदेव सेना लेकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे गया और सिंघरथ को बांधकर ले आया। इससे जरासंध बहुत प्रसन्न हुआ। तीर्थंकर नेमिनाथ के आगमन को जानकर कुवेर ने इन्द्र की आज्ञा से द्वारावती नगरी को बसाया। वहां का राजा समुद्रविजय था। उसकी रानी का नाम शिवादेवी था। वह अत्यधिक सुन्दर एवं रूपवती थी। उसने सोलह स्वप्न देखे जिनके फल पूछने वह शीघ्र ही तीर्थंकर की माता बनने वाली है ऐसा बतलाया। माता की श्री ह्री धृति आदि सोलह देवियां सेवा करने लगी तथा विभिन्न प्रकार से माता को प्रसन्न रखने लगी। सावन सुदी षष्टी के दिन नेमिनाथ का जन्म हुआ। स्वर्ग से इन्द्र ने आकर तीर्थंकर का जन्माभिषेक मनाया। सारे लोक में आनन्द छा गया।

तेरहवां प्रभाव

इस प्रभाव में श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मणि हरण एवं विवाह, शिशुपाल वध, प्रद्युम्न जन्म एवं हरण आदि की संक्षिप्त कथा के पश्चात् फिर कौरव पांडवों की कथा आगे चलती है। युधिष्ठर द्वारा आधा आधा राज्य बांटने के पश्चात् कौरव सन्तुष्ट नहीं हुये और उन्होंने पूरे राज्य के १०५ टुकड़े करने पर जोर दिया। इस प्रस्ताव का पाण्डवों ने घोर विरोध किया। कौरवों ने पाण्डवों को मारने के लिए लाक्षागृह बनाया लेकिन उनको कुछ भी सफलता नहीं मिली। सभी पांडवपुत्र पूर्व निर्मित गुप्त मार्ग से निकल गये। पांचों पाण्डव नाव में बैठकर गंगा पार करने लगे। लेकिन बीच में नाव रुक गयी। धीवर ने कहा कि गंगा में रहने वाली तुंडी देवी नर बलि चाहती हे। सब फिर विपत्ति में फंस गये। युधिष्ठर ने अपना बलिदान देना चाहा लेकिन भीम गंगा में कूद पड़ा और तुंडी को मार कर उसे अपने वश में कर लिया। और अन्त में सभी सकुशल गंगा पार उतर गये। कवि द्वारा पूरा प्रभाव ही रोमाञ्चक ढंग से निबद्ध किया गया हे।

चौदहवां प्रभाव

सभी पाण्डव प्रच्छिन्न वेश में कौशिकपुर पहुंचे। वहां से त्रिशृंगपत्तन पहुंचे। वहां के राजा के १० कन्यायें थीं। तथा एक कन्या नगर सेठ के थी, एक निमित्त ज्ञानी के अनुसार सभी का विवाह पाण्डवपुत्रों के साथ होना था। इसलिए जब पांडव वहां पहुंचे तो चारों ओर प्रसन्नता छा गयी एवं सभी ग्यारह कन्याओं का विवाह युधिष्ठर के साथ हो गया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पन्द्रहवाँ प्रभाव

सभी पांचों पांडव अपनी माता कुन्ती के साथ आगे बढ़ते गये। मार्ग में जब भीम जल लेने गया तो उसे वहां खगपति मिला। इसके साथ एक कन्या थी जो हिडम्बी की पुत्री थी। एक भयानक वन में भीम ने एक राक्षस पर विजय प्राप्त की। वहीं पर एक वणिक था। संध्या होने पर वह रोने लगा। पूछने पर मालूम हुआ की बक राजा के भक्षण के लिए आज उसके बालक का नम्बरहै। यह सुन कर भीम को दया आयी और उसने बालक के स्थान पर अपने आप का बलिदान देने की तैयारी की भीम ने बक राजा को लड़ाई में हराकर उसे भविष्य में किसी जीव की हिंसा न करने की प्रतिज्ञा करवायी। पांचों पाण्डव आगे गये मार्ग में आने वाले सभी जिन चैत्यालयों की वन्दना करते गये। फिर वे चलकर चम्पापुरी पहुंचे। कर्ण वहां का राजा था। पांडव गण वहाँ काफी समय तक रहे। वहीं पर भीम ने एक मतवाले हाथी को वश में किया। फिर वे ब्राह्मण के वेश में आगे बढते गये। एक दिन जब भीम ब्राह्मण वेश में भिक्षा मांगने राजा के यहां गया तो राजा ने भिक्षा में उसे अपनी कन्या दे दी।

सोलहवाँ प्रभाव

पांचों पांडवों ने दक्षिण में भी खूब भ्रमण किया। इसके पश्चात् वे पुनः गजपुर को आगये। वे सभी विप्र वेश में घूमते थे। वहां के राजा द्रुपद थे तथा उसकी पुत्री का नाम द्रोपदी था। जिसकी सुन्दरता का वर्णन करना सहज नहीं था। उसके विवाह के लिए स्वयंबर रचा गया जिसमें राजा महाराजा सभी एकत्रित हुए। गांडीव धनुष को चढाने में सफल होने वाले राजकुमार को द्रोपदी को देने की घोषणा की गयी। चारों ओर के अनेक राजा एकत्रित हुए।

> तो लौं नृप सब आए तहीं, दुर्योधन कर्ण आदिक सही।
> जालंधर अस जादव ईस, सलपति फुनि मबधी धीस ॥५०॥
> क्रांतिवान बहु सोभित रूप, बैठे मंडप मांहि अनूप।
> पांडव पांचौ दुजि कै भेष, आप पहुंचे सोभा देखि ॥५२॥

सभी राजाओं ने धनुष को जाकर देखा। राजाओं का परिचय करवाया गया। किसी राजा ने भी धनुष चढाने में अपना बल नहीं दिखा सके। अन्त में अर्जुन ने विप्र के वेश में ही धनुष चढा दिया। द्रोपदी ने उसके गले में माल डाल

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दी। दुर्योधन आदि राजाओं ने अपना दूत भेजकर इसका विरोध किया। लेकिन राजा द्रुपद ने स्वयंवर के निर्णय को न्याय संगत बतलाया। दुर्योधन आदि राजाओं ने युद्ध की घोषणा कर दी। चारों और युद्ध की तैयारी होने लगी। द्रोपदी यह देखकर डर गयी । परस्पर में खूब युद्ध हुआ। अर्जुन एवं भीम ने अपने पराक्रम से सबको चकित कर दिया। जब द्रोण ने अर्जुन को ललकारा तो अर्जुन अपने गुरु के विरुद्ध बाण चलाने के बजाय बाण द्वारा अपना परिचय दिया। पांडवों को जीवित जानकर सभी प्रसन्न हो गये लेकिन कौरव मन ही मन जलने लगे। इसके पश्चात् पाण्डव हस्तिनापुर चले गये।

सत्रहवां प्रभाव

पाण्डवों एवं कौरवों ने अपना राज्य आधा बांट लिया। तथा सुख पूर्वक रहने लगे। युधिष्ठर ने इन्द्रप्रस्थपुर, भीम ने तिलपथ, अर्जुन ने स्वर्णप्रस्थ, नकुल ने जलपथ एवं सहदेव ने वणिकपथ नामक नगर बसाकर राज्य करने लगे। कुछ समय पश्चात् अर्जुन ने सुभद्रा का हरण कर लिया। दोनों का धूम धाम से विवाह हो गया। अर्जुन को कितने ही दैविक विद्याएं प्राप्त हुई। एक दिन दुर्योधन ने पाण्डवों को पास बुलाया तथा प्रेम से द्यूत खेलने को राजी कर लिया। द्यूत में पांडव सभी कुछ हार बैठे।

छल करि जीते कौरव कंस, धरम तनुज हारे सरवंस।
हारे हार रतन केयूर, कटक सुसीस प्रकट द्युति पूर ॥७०॥
दरबि देश हारे बहुमंत, हारे हय गय रथ संजूत।
अन्न कनक भाजन भंडार, हारी जो छेत आतासार ॥७१॥

द्यूत क्रीडा में हार के कारण पांडव सम्पूर्ण राज्य हार गये तथा बारह वर्ष तक वनवास में रहने का निर्णय लिया। वे नगर को छोड़ कर कालिंजर वन में रहने लगे।

अठारहवां प्रभाव

वन में जाने पर पांडवों को मुनि के दर्शन हुए। मुनि श्री ने अशुभ कर्मों का फल बतला कर सब को शुभ भविष्य के लिए आशान्वित किया। उसी वन में एक खेचर मिला। उसने पारथ नृप को रथनुपुर में रहने का आग्रह किया। अपने भाइयों के साथ वे पांच वर्ष तक वहां रहे। कौरव राज दुर्योधन ने पांडवों को मारने के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेक उपाय किये। पहले चित्रांगद को भेजा लेकिन वह भी बुरी तरह हार गया। फिर कनकध्वज राजा ने पांडवों को सात दिन में मारने की प्रतिज्ञा की। भिल्ल के भेष में वह वन में आया और उनसे झगड़ा करने लगा। उसने द्रोपदी का हरण कर लिया। आपस में खूब विग्रह हुआ। लेकिन भील राजा द्वारा उसे मार दिया गया। इसके पश्चात् वे गुप्त भेष में विराट राजा के यहां पहुंचे और विभिन्न नामों से काम करने लगे। कीचक जैसे राक्षस को यहां भीम ने मारा। इसके पश्चात् और भीं उपाय किये लेकिन पांडवों की जिनभक्ति, साहस एवं शौर्य के कारण कुछ भी नहीं हो सका।

उनीसवां प्रभाव

दुर्योधन पांडवों को मारने के अनेक उपाय ढूंढने लगा। उसने विराट राजा की गायों को चुरा लिया। गायों को छुड़ाने लिए अच्छा युद्ध हुआ। उसमें कौरवों के कितने ही वीर मारे गये। पांडव गायों को छुड़ाने में सफल हुए। पांडवों ने कौरवों के साथ युद्ध भी अज्ञात भेष में ही किया। जब विराट राजा को वास्तविकता का मालूम हुआ तब वह कहने लगे—

मैं नहीं जाने इ वलौ देव, धरमपुत्र तुम छमिग्रो एव।
अब तैं तुम ही स्वामी इष्ट, हम किंकर तुम पालक शिष्ट ।।५।।
यांही पुर मैं बंधव संग, कीजे राज सदा निरभंग।
वहुत विनय सौं अैसे भाषि, गोष्टी मैं सब गोधन राखि ।।६।।

विराट राजा ने अपनी पुत्री का विवाह अभिमन्यु से कर दिया। विवाह में श्रीकृष्ण, बलराम, दुर्योधन आदि सभी राजा महाराजा एकत्रित हुए। विराट राजा ने सब की खूब आवभगत की।

राजा श्रेणिक ने जव एक अक्षौहिणी सेना का संख्या बल जानना चाहा। इसका समाधान निम्न प्रकार किया गया—

सहसइकीस सतक वसु लहै,
सत्तर फुनि गज संख्या लहै ।।
ते तेहीं रथ गनीये तहीं,
हय संख्या अब सुनीयेसही ।। १७ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पैंसठि सहस सतक षट जांनि,
दस ऊपरि हय संख्या ठानि। (६५६१०)
एक लख्य नौ सहसैं मित्त,
तिनि सतक पंचासहि पत्ति ।।१०९३५०।१८।
इतनी सैना इकठी होइ,
एक अछोहिनी गनीये सोइ ।।

कुन्ती ने द्वारका में जाकर श्रीकृष्ण जी से दुर्योधन के सभी कुकृत्यों को बतलाया और पाण्डवों पर किये जाने वाले व्यवहार के बारे में बतलाया। इस पर श्रीकृष्ण जी ने दुर्योधन के पास अपना एक दूत भेजा और पाण्डवों को आधा राज्य देने की सलाह दी। लेकिन दुर्योधन कब मानने वाला था वह तो उल्टा क्रोधित हो गया।

बीसवां प्रभाव

पांडव कौरव युद्ध के वादल मंडराने लगे। दुर्योधन को वहुत समझाया गया कि वह आधा राज्य पांडवों को दे दे। ऐसा नहीं करने पर जिनेन्द्र भगवान ने जो बात कही थी वही होगी। जब श्रीकृष्ण जी के दूत ने आकर उनसे सारी बात बतलाई। श्रीकृष्ण जी युद्ध के लिए अपनी तैयारी करली। पांचजन्य शंख को पूर दिया। शंख की आवाज सुनते ही कुरुक्षेत्र मैदान में सेनायें एकत्रित होने लगी। कवि ने इस में चतुरंगिनी सेना का विस्तृत वर्णन किया है। इसके पश्चात् कुरुक्षेत्र में खड़ी सेना कहां कहां खड़ी है, कितना संख्या बल है आदि सभी का वर्णन किया है। कौरव पांडवों में घनघोर लड़ाई होने लगी। एक दूसरे को ललकार कर युद्ध के लिए आह्वान किया जाने लगा तथा एक दूसरे के पौरुष की हंसी उडायी जाने लगी। भीष्मपितामह युद्ध में जर्जरित हो गये और जब उनके कंठगत प्राण आ गये तब उन्होंने युद्ध भूमि में सन्यास ले लिया तथा सल्लेना व्रत धारण कर लिया। उनका अन्तिम सन्देश निम्न प्रकार था—

करौ परस्पर मित्रता, तजौ सत्रुता चित्त।
अब लौं क्या अैसे भये, तुम निहचै नहि कित्ति ।।६५।।
जे केई रन में मरे, गए निंद गति सोइ।
तातैं कीजै धर्म्म अब, दस लक्षण अवलोई ।।६६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुभ भाव से मरने के कारण भीष्म पितामह पांचवे स्वर्ग में जाकर देव हुए।

एक बीसवां प्रभाव

दूसरे दिन फिर युद्ध प्रारम्भ हुआ। अभिमन्यु ने भीषण युद्ध किया। इसी समय दुर्योधन का पुत्र प्रचंड गति से बाण छोड़ने लगा। लेकिन वह अभिमन्यु के द्वारा मारा गया। इससे दुर्योधन ने योद्धाओं को अभिमन्यु को मारने के प्रोत्साहित किया। द्रोण, कर्ण कलिंगराजा सभी अभिमन्यु को मारने दोड़े। लेकिन कोई उपाय नहीं चला। आखिर सबने मिलकर उसे घेर लिया। दुर्भाग्य से जयद्रथ आ गया और उसके हाथ से अभिमन्यु को प्राणघातक बाण लगा। अभिमन्यु ने उसी समय सभी कषायों से विरक्ति ले कर शान्त चित्त से भगवान को स्मरण करते हुये मृत्यु को वरण किया। अभिमन्यु के मरने से कौरवों में प्रसन्नता छा गयी जब कि पांडवों में शोक संतप्त छा गया। जयद्रथ की रक्षा के लिये द्रोण ने पूरे उपाय किये। लेकिन अर्जुन ने जयद्रथ का उसी दिन वध करने की प्रतिज्ञा की। भयानक युद्ध के मध्य अर्जुन ने जयद्रथ को मार भी डाला और उसके सिर को पिता की गोद में डाल दिया। इसके पश्चात् अश्वत्थामा मारा गया। जब कौरवों की हार पर हार होने लगी तो उन्होंने युद्ध के सारे नियमों का उल्लंघन कर रात्रि को सोते हुये पांडवों पर धावा बोल दिया। हजारों निहत्थे पांडव सेना मारी गयी फिर द्रोणाचार्य भी मारे गये। कर्ण व अर्जुन में परस्पर में घोर युद्ध हुआ और कर्ण भी अर्जुन के तीर से मारा गया। उधर भीम ने दुर्योधन के सभी भाइयों को एक एक करके मार डाला। इस पर भी दुर्योधन के हृदय की आग ठंडी नहीं हुई।

> अैसै कहि कौरव पति, चले जुद्ध को धाई।
> पांडव सेना सनमुखें, क्रोध प्रचंड बढाइ ॥८४॥

दुर्योधन और पांडवों के बीच भीषण युद्ध हुआ : लेकिन दुर्योधन बच नहीं सका और वह भी मारा गया। इसके पश्चात् शेष कौरव सेनापति भी मारे गये। अन्त में जरासन्ध भी कौरवों की ओर से लड़ने के लिए आया। जरासन्ध के साथ भीषण युद्ध हुआ। अन्त में जब जरान्सघ ने चक्र चलाया तो वह भी श्रीकृष्ण जी के हाथ में आ गया। और कृष्णजी ने चक्र चलाया तो उसने तत्काल जरासन्ध का शिर काट दिया। इस प्रकार १८ दिन तक भीषण लड़ाई होने के पश्चात् कौरव पांडव युद्ध की समाप्ति हुई और पर्याप्त समय तक पांडवों ने देश पर शासन किया।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बावीसवां प्रभाव—

बहुत सयम व्यतीत होने पर एक वार युधिष्ठर की राजसभा में नारद ऋषि का आना हुआ। महलों में द्रोपदी द्वारा नारद का उचित सम्मान नही मिलने के कारण वह कुपित होकर वह उसके हरण का उपाय सोचने लगे। अन्त में धातकीखंड के सुरपुरि के पद्मनाभ राजा के पास गये और उन्हें द्रोपदी का पट चित्राम दिखलाया। पद्मनाभ चित्र देखकर उस सुन्दरी को पाने की अभिलाषा करने लगा और नारद से उसका पूरा वृतान्त पूछ लिया। नारद द्वारा पूरा परिचय प्राप्त करने के पश्चात् वह वहाँ आया और सोती हुई द्रोपदी का हरण करके अपने यहाँ ले आया। प्रातः होने पर जब द्रोपदी की नींद खुली तब उसने चारों ओर देखा। पद्मनाभ राजा ने अपना सारा वृतान्त कहा और उसके सामने रानी बनने का प्रस्ताव रखा। द्रोपदी ने राजा पद्मनाभ को पांडवों का परिचय दिया। द्रोपदी के हरण से हस्तिनापुर में भी हाहाकार मच गया। सेना सुसज्जित कर दी गयी। चारों ओर तलाश होने लगी, इतने में वहाँ नारदमुनि आये और कहने लगे कि धातकीखंड की सुनकापुरी के राजा पद्मनाभ के यहाँ उसे अश्रुवदना द्रोपदी देखी है। इस पर पाण्डव वहां अपनी सेना सहित पहुँचे। पद्मनाभ सेना देखकर घबरा गया और द्रोपदी से क्षमा माँगने लगा। आखिर उन्हें द्रोपदी मिल गई। सबने इस उपलक्ष में जिन पूजा कीनी।

तेबीसवां प्रभाव—

सभी पांडव श्रीकृष्ण के साथ वापिस आ गये। पाण्डव अपने राज्य का समस्त भार अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को देकर मथुरा आ गये। इधर २२वें तीर्थंकर नेमिनाथ ने ग्रह त्यागकर दीक्षा ग्रहण की और घोर तपस्या के पश्चात् कैवल्य हो गया। भगवान का समवासरण रचा गया। कुछ समय पश्चात् नेमिनाथ का समावसरण ऊर्जयंत गिरि पर आया। सभी पाण्डव उनके दर्शनार्थ गये। उन्होंने हरि राज्य एवं द्वारावती कब तक रहेगी यह प्रश्न किया। इस पर नेमिनाथ ने कहा कि द्वीपायन ऋषि के शाप से द्वारिका जलेगी तथा जरतकुमार के वाण से श्रीकृष्ण जी की मृत्यु होगी। जब जरत्कुमार ने श्रीकृष्ण की मृत्यु के समाचार पाण्डवों को जा कर कहे तो सभी पाण्डवगण रोने लगे। कुन्ती बहुत रोयी। जरत्कुमार को साथ लेकर वहीं गये जहाँ बलदेव हरि के मृतक शरीर को लिए हुए थे। पाण्डवों ने जब दाह क्रिया करने के लिए कहा तो बलराम बहुत क्रोधित हुए। कुछ समय पश्चात् सर्वार्थसिद्धि से. देव ने आकर बलराम को सम्बोधित किया। अन्त में तुंगी गिरि पर पाण्डवों ने मिलकर उनका दाह संस्कार किया। पिहितास्रव मुनि के पास स्वयं बलराम ने भी जिन दीक्षा ले ली।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौबीसवां प्रभाव—

पाण्डव वहाँ से द्वारिका आये। लेकिन द्वारिका जल चुकी थी स्वर्गपुरी के समान वह नगरी अब राख का ढेर थी। कवि ने द्वारिका की दशा का अच्छा वर्णन किया है—

होते नित जिन तैं आनन्द, वे सब विनसे कूंवर वृन्द।
रुकमिनि आदिक रानी यह, तिनके सदन भए दह वह।
जे नित करती हास विलास, विनसि गई ज्यौं नीरद रासि।
अहो सुजन की संगति रमयां, छिनक छई है सरिता समां ॥८॥

जगत की असारता जान कर पांचों पाण्डव नेमिनाथ के पास पहुँचे और उनकी स्तुति करने लगे। भगवान नेमिनाथ ने पाण्डवों को उपदेशामृत का पान कराया। इस रूप में कवि ने जिन धर्म के मूल तत्वों पर अच्छी तरह प्रकाश डाला है। पाण्डवों ने तीर्थंकर नेमिनाथ से अपने २ पर्वभवों को सुना।

पच्चीसवां प्रभाव—

इस प्रभाव में भी पाण्डवों एवं द्रोपदी के पूर्वभवों का वर्णन किया हुआ है।

छब्बीसवां प्रभाव—

अपने पूर्व भवों को सुनने के पश्चात् पाण्डवों को भी जगत् से वैराग्य हो गय। और सभी पाँचों भाइयो ने जिन दीक्षा ले ली। कुन्ती द्रोपदी, सुभद्रा आदि रानियों ने भी आर्यिका राजमती के पास जाकर संयम धारण कर लिया। तथा साध्वी दीक्षा अंगीकार कर ली। वे घोर तपस्या करने लगे। एक बार उनको तपस्या करते देख दुर्योधन के भानजा को अत्यधिक क्रोध आया और उसके हृदय में प्रतिशोध की अग्नि जलने लगी। उसने सोलह भूषण अग्नि में लाल करके उनको पहिना दिये। लेकिन वे सभी बाहर भावना भाने लगे। अन्त में अपने आप पर पूर्ण विजय प्राप्त कर युधिष्ठर, भीम एवं अर्जुन ने निर्वाण प्राप्त किया तथा नकुल एवं सहदेव ने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की। वे दोनों पुनः नर भव धारण करके मोक्ष प्राप्त करेंगे। महा आर्यिका राजमती, द्रोपदी, कुन्ती एवं सुभद्रा ने सोलहवां स्वर्ग प्राप्त किया। भगवान नेमिनाथ को भी गिरिनार पर्वत से निर्वाण प्राप्त हुआ। अन्त में कवि ने बहुत ही विनय के साथ ग्रंथ समाप्त किया है।

कवि बुलाकीदास ने तत्कालीन बादशाह का निम्न सवैया छन्द में उल्लेख किया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बंस मुगलाने मांहि दिल्लीपति पातसाहि
तिमिरलिंग सुत बावर सु भयो है।
ताको है हिमांऊ सुत ताहि तै अकब्बर है
जहांगीर ताकै धीर साहिजहां ठयो है।
ताजमहल अंगना अगज उतंग महाबली
अवरंग साहि साहिन में जयो है।
ताकी छत्र छांह पाइ सुमति के उदें आइ
भारत रचाइ भाषा जैनों जस लयो है ।।९।।

पाण्डवपुराण में कौन-२ से छन्दों का किस प्रकार प्रयोग हुआ है उसका कवि ने निम्न प्रकार वर्णन किया है—

छप्पे एक करषे अठारै इकतीस से बीस चालीस
सएक सोरठेई परमानिये।
छयालीस तेईसो पाद्धडी पचीसीगनिलैहीं
भुजंग नंद छंद जैनीं जग जांनिये।
तीनसै तिरासी डिल्ल नौ सौ तीस दोहा भनि
ढाईसै सतानवैं सुचौपई बखानिए।
सारे इक ठौर करि ठानीये बुलाकीदास
एकादश पंचसै हजार चार आनिये।

कवि ने श्लोक संख्या निम्न प्रकार बतलायी है—

संख्या श्लोक अनुष्टपी, गनीये ग्रंथ लखाइ।
सप्त सहश्र षट सतक पुनि पचपन अधिक मिलाइ ।।१०।।

इस प्रकार पूरा पाण्डवपुराण ७६५५ श्लोक प्रमाण है।

पाण्डवपुराण की विशेषताए

पाण्डवपुराण यद्यपि भट्टारक शुभचन्द्र के संस्कृत पाण्डवपुराण का पद्यानुवाद है लेकिन कविवर बुलाकीदास की काव्य प्रतिभा के कारण वह एक स्वतन्त्र काव्य ग्रन्थ के समान बन गया है। पुराण २६ प्रभावों में विभक्त है जो सर्ग अथवा अध्याय के रूप में हैं। पुराण कथा प्रधान है। पाण्डवों के जीवन वृत्तको कहने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का काव्य का प्रमुख उद्देश्य है लेकिन कवि ने पुराण के प्रारम्भ एवं अन्त में जो प्रभाव जोड़े हैं उससे काव्य का रूप और भी निखर गया है। पुराण के प्रथम प्रभाव में मंगल पाठ एवं श्रेणिक द्वारा जिन वंदना का वर्णन किया गया हैं। इसके पश्चात् प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव से ही पुराण प्रारम्भ होता है और संक्षिप्त रूप से काव्य रूप में कथा प्रस्तुत की जाती है। इसके पश्चात् शांतिनाथ कुंथुनाथ एवं अरनाथ तीर्थंकरों का जीवन वृत्त दिया गया है ये तीनों ही तीर्थंकर थे साथ में चक्रवर्ती भी थे। ये सब वर्णन पाण्डावों के पूर्व भवों का सम्बन्ध जोड़ने के लिए ही किया गया है। इसी तरह कौरव पाण्डव महायुद्ध समाप्त होने के पश्चात् भी भगवान नेमिनाथ के जीवन एवं उनके उपदेशों का संक्षिप्त वर्णन, भगवान श्रीकृष्ण जी की मृत्यु, द्वारिका दहन, पाण्डवों द्वारा गृह त्याग एवं उनका अन्तिम मरण का वर्णन करके पाठकों को पाण्डवों के जीवन का पूरा वृतान्त वतलाया गया है।

पाण्डवपुराण का नाम दूसरा नाम भारत भाषा भी दिया गया है। शुभ-चन्द्र के पान्डवपुराण के अर्थ को समझकर उसके वर्णन को भारत भाषा कहा है।

मुनि शुभचन्द्र प्रनीत है कठिन अर्थं गम्भीर।
जो पुरान पांडव महा, प्रगटै पंडित धीर ।।४९।।

ताकौ अर्थं विचारि कै, भारथ भाषा नाम।
कथा पांडु सुत पंचमी, कीज्यौ बहु अभिराम ।।५०।।

इसलिए पाण्डवपुराण को जैन महाभारत भी कहा जाता है। वास्तव में यह पूरा महाभारत है जिसमें न केवल महाभारत का ही वर्णन हैं किन्तु युग के प्रारम्भ से लेकर जीवन के अन्तिम क्षण तक वर्णन किया गया है।

पाण्डव पुराण वीर रस प्रधान है जिसमें युद्धों का एक से अधिक वार वर्णन हुआ है। यद्यपि पुराण शान्त रस पर्यंवसायी है, तीर्थंकरों के उपदेशों का वर्णन हुआ है लेकिन उसमें प्रमुख पात्रों की वीरता सहज ही देखने योग्य है। वे अकारण किसी से घबराते नहीं है, लेकिन अन्याय के सामने शिर भी नहीं झुकाते। पाण्डवों का जीवन प्रारम्भ से ही अच्छा रहता है। उनका कौरवों के प्रति अच्छा व्यवहार रहता है। कौरवों की सुख शान्ति के लिए वे अपने राज्य को आधा आधा बांट कर भी सुख से रहना चाहते हैं। द्यूत क्रीड़ा में हारने के पश्चात् १२ वर्ष तक अज्ञातवास रहते हैं तथा अनेक कष्टों को भोगते हैं लेकिन अपने वचनों पर दृढ रहते है। युद्ध तब होता है जब दुर्योधन १२ वर्ष पश्चात् भी उन्हें कुछ भी देने को तैयार नहीं होता। यही नहीं युद्ध में भी वे प्राय युद्ध के नियमों का पालन करते हैं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जबकि दुर्योधन रात्रि को सोते हुए पाण्डवों पर एवं उनकी सेना पर धोखे से आक्रमण कर देता है। पाण्डवों का पूरा जीवन जैन धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार रहता है।

भाषा

पाण्डव पुराण के कवि आगरा निवासी थे इसलिये पुराण की भाषा पर ब्रज भाषा का सामान्य प्रभाव दिखलायी देता है। पुराण की भाषा सरल किन्तु ललित एवं मधुर है। कवि ने पुराण अपनी माता जैनुलदे के पठनार्थ लिखा था तथा उसे सामने बैठाकर इसकी रचना की थी इसलिये क्लिष्ट भाषा के प्रयोग का तो कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता फिर भी कवि ने अपनी पूरी कृति के कथा भाग को अत्यधिक सरस एवं मधुर बनाने का प्रयास किया है। प्रस्तुत पाण्डव पुराण हिन्दी की प्रथम कृति है इसके पूर्व सभी रचनायें अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा में निबद्ध थी। इसलिये कविवर बुलाकीदास ने अपनी माता के आग्रह पर पाण्डव पुराण की हिन्दी में रचना करके साहित्य में एक नया अध्याय जोड़ा था।

बुलाकीदास मुगल बादशाह औरंगजेब के शासन काल में हुए थे। उस समय फारसी एवं अरबी का पूरा प्रभाव था लेकिन कवि इन भाषाओं के प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त है। कवि ने सुर नृप संवाद में गद्य का भी प्रयोग किया है। यद्यपि संवाद पूरा सैद्धान्तिक है लेकिन कवि ने इसे अत्यधिक सरस बनाने का प्रयास किया है। गद्य का एक उदाहरण देखिये—

भो मित्र तुम सुनौं यह बात ऐसी नांही जैसे तुम कहो हो। तातैं तुम सुनो याको उत्तर। जिनमत के अनुस्वार तैं कहौं हौं। सो तुम सावधान होइ कै सुनौं। जो तुम क्षणिक अथवा सून्यमान हुगे। एकांत नय करि कै तौ द्रव्य सधने का नांही॥

(पृष्ठ संख्या ६३)

गद्य की भाषा पर ब्रज का स्पष्ट प्रभाव दिखलायी देता है।

छन्द

कवि का दोहा एवं चौपई छन्द अत्यधिक प्रिय छन्द हैं। उस समय येही छन्द सर्वाधिक लोकप्रिय छन्द थे। पाण्डव पुराण इन्हीं दो छन्दों में निबद्ध है। लेकिन सवैया तेईसा, इकतीसा, छप्पय, सोरठा, अडिल्ल, पाद्धडी, छन्दों में भी पुराण निबद्ध किया गया है। प्रत्येक प्रभाव का प्रथम पद्य सवैया छन्द में लिखा गया है जो क्रमशः एक-एक तीर्थंकर के स्तवन के रूप में है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसके अतिरिक्त पाण्डव पुराण में तत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन के लिये भी अच्छी सामग्री उपलब्ध होती है। पाण्डव पुराण हिन्दी भाषा में निबद्ध किया जाने वाला प्रथम पाण्डव पुराण है। इसकी लोकप्रियता इसीसे जानी जा सकती है कि राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थागारों में अब तक इसकी ३० से अधिक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हो है चुकी। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि संवत् १७८३ आसोज वदी ६ को लिपिबद्ध दि० जैन पंचायती मन्दिर भरतपुर में संग्रहीत है।

卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाण्डव पुराण

(बुलाकीदास)

रचना संवत् १७५४ (1697 A. D.)

अथ पाण्डव पुराण भाषा लिख्यते

प्रथम सर्वज्ञ नमस्कार

छप्पय छंद

सेवत सत सुर राय स्वयं सिद्ध सिव सिद्धि मय।
सिद्धारथ सरवंस नय प्रमाण संसिद्धि जय ॥
करम कदन करतार करन हरन कारन भरन्।
असरन सरन अधार मदन दहन साधन सदन ॥
इह विधि अनेक गुन गन सहित जग भूषन दूषत रहित।
तिहि नंदलाल नंदन नमत सिद्धि हेत सरवज्ञ नित ॥ १ ॥

दोहा

वृष नाइक वृष दाइ है वृष अंक वृष भेस।
सृष्टि विधाता ब्रह्ममय वंदौ आदि जिनेस ॥ २ ॥
चंद्रालंकृत चंद्र द्युति, चन्द्रप्रभू भगवान।
चारु चरन चरचौं सदा, चित चकोर सम ठान ॥ ३ ॥
शांति रूप सिव मय सही, सकल सत्व सुखदाय।
शांति सरन सुमिरौं सदा, सरव सिद्धि सहाय ॥ ४ ॥
नगन अंग अनंगहा, निहचल सम नग ईस।
नेमि धर्मरथ हेति जिन, नमो न्याय निजसीस ॥ ५ ॥
वर्द्धमान विभु वीर्य वल, वर विधान वयवंत।
विविध विधाता वोध मय, विरधो वुधि विकसंत ॥ ६ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गणनायक गणधर गनी, गणपति गोतम नाम।
अगति गहन को अगनि गनि, गाऊं तसु गुन ग्राम ॥ ७ ॥

जोग जुगति जस जननकौं, जननी जगत विख्यात।
जैंनी वांनी जिन तनी, जयौं यथावत जात ॥ ८ ॥
जोगी जती–यथारथी, जनम जरा जुधि जीति।
थिर थानक थिर है थप्यौ, सुथिर जुधि स्थिरमीत ॥ ९ ॥
भीम भयानक भव विषै, भ्रमत भयो भयवंत।
भरम भाव भारत रच्यो, भीम नांम इहि मंत ॥ १० ॥
अलख अगोचर आतमां, अनभौं इखु जु अचूकि।
अरजुन आये आप मैं, आराधी मद मूकि ॥ ११ ॥
निकुल करे कुल करम के, कलावान कविलघू।
तातैं कवि कुल कहैंत हैं, नकुल नांम निरविघू ॥ १२ ॥
सुगुन सहित सरवग्य सम, देव करैं जिस सेव।
सूर सुभट सुभ साहसी, सत्य एव सहदेव ॥ १३ ॥
पाई जिन या कालमैं, श्रुत सागर की थाह।
या पुराण मैं कीजिये, भद्रबाहु निरवाह ॥ १४ ॥
जाकी साख सुविश्व मैं, विश्रुत सूरि विसाख।
ताकौं सुमिरत उर विषैं, पुरवै मन अभिलाष ॥ १५ ॥

ब्राह्मी जिन पाषान की, उर्जयंत गिरि सीस।
या कल मैं वादिन करी, कुंदकुंद मुनि ईस ॥ १६ ॥

देवागम जिन स्तवन सौं, प्रगट सुरागम कीन।
समंतभद्र भद्रार्थं मय गुन, व्यायक गुन लीन ॥ १७ ॥

जिन वारिधि व्याकरन कौ, लह्यौ पार मुनिराय।
पूज्यपाद नित पूज्य पद, पूज्ये मनवंच काय ॥ १८ ॥

निःकलंक अकलंक जस, सकल शास्त्रविद जेन।
माया देवी ताडिवा, कुंभथिता पदेन ॥ १९ ॥

चिरंजीव जिन सेन जति, जाकौ जस जग मांहि।
जिन पुरान पुरुदेव कौं, वरन्यों चाहै ताहि ॥ २० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुराणाद्रि परकाश कौं, सूर्यावित ,है जोइ।
प्रभवंत गुणभद्र गुरु, भूतल भूषन सोइ ॥ २१ ॥

अरुन रतन गुरु चरन जुग, सरन गही कर जोर।
वरन ज्ञान के करन कौं, तरणि किरण जिम भोर ॥ २२ ॥

सोरठा

अपनौ वंस वखान, नमस्कार करि अब कहौं।
सकल सुनौ दै कान, वतन गोत कुल वर्णवै ॥ २३ ॥

अथ कवि वंस वर्णन

दोहा

नगर वयानौ बहु वसै मध्यदेस विख्यात।
चारु चरन जह आचरै, चारि वर्ण बहु भांति ॥ २४ ॥

जहाँ न कोउ दालिदी, सब दीसै धनवान।
जप तप पूजा दान विधि, मानहि जिनवर आन ॥ २५ ॥

वैश्य वंस पुरुदेव नैं, जो थाप्यो अभिराम।
तिसी ही वंस तहां अवतर्‌यो, साहु अमरसी नाम ॥ २६ ॥

अगरवाल सुभ जाति है, श्रावक कुल परवान।
गोयल गोत सिरोमनी, व्यौंक कसावर जान ॥ २७ ॥

धर्मरसी सो अमरसी, लछिमी को आवास।
नृपगन जाकौं आदरैं, श्री जिनंद कौं दास ॥ २८ ॥

पेमचन्द ताकौ तनुज, सकल धर्म को धाम।
ताकौ पुत्र सपुत्र है, श्रवनदास अभिराम ॥ २९ ॥

वतन बयानौं छोडि सो, नगर आगरै आय।
अन्न पान संजोगतै, निवस्यौ सदन रचाय ॥ ३० ॥

वुधि निवास सो जानियें, श्रवन चरन को दास।
सत्य वचन के जोग सौं वरतैं नौं निधि तास ॥ ३१ ॥

गनियें सरिता सील की, वनिता ताके गेह।
नाम अनंदी तास को, मानौं रति की देह ॥ ३२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपज्यो ताके उदर तैं, नंदलाल गुन वृंद।
दिन दिन तन चातुर्यता, वढै दोज ज्यों चंद ॥ ३३ ॥
मात पिता सो पढन कौं, भेज दियो चटसाल।
सब विद्या तिन सीखि कैं, धारी उर गुन माल ॥ ३४ ॥
हेमराज पंडित वसै, तिसी आगरै ठाइ।
गरग गोत गुन आगलो, सब पूजै जिस पाय ॥ ३५ ॥
जिन आगम अनुसार तैं, भाषा प्रवचनसार।
पंच-अस्ति काया अपर, कीनें सुगम विचार ॥ ३६ ॥
उपजी ताकै देहजा, जैनी नाम विख्यात।
सील रूप गुन आगली, प्रीति नीति की पाति ॥ ३७ ॥
दीनी विद्या जनक नैं कीनी अति वितपन्न।
पंडित जापै सीखलैं, धरनी तल मैं धन्न ॥ ३८ ॥

सवैय्या

सुगुन की खानि किधौं सुकृत की वानि।
सुभ कीरति की दानि अप कीरति कृपान है॥
स्वारथ विधानि परमारथ की राजधानि।
रमाहू की रानी किधौ जैनी जिनवान हैं॥
धरम धरिनि भव नरम हरनि।
किधौ असरन सरनि कि जन निज हान है।
हेम सौं उपनि सील सागर रसनि।
भनि दुरित दरनि सुर सरिता समान है॥ ३९॥

दोहा

हेमराज तहां जानि कै, नंदलाल गुन खानि।
वय समान वर देखि दी, पानिग्रहन विधि ठानि ॥ ४० ॥
तव सासू नैं प्रीति सौं मोती चौक पुराय।
लीनी गृह सूत्र नाम धरि, जैनुलदे इहि भाय ॥ ४१ ॥
नारि पुरुष सो सो रमै, धारै अन्तर पेम।
पूरव पुन्य फल भोग वै, जैय सुलोचना जेम ॥ ४२ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अल्प बुद्धि तिनकै भयो, बूलचंद सुख खानि।
तहि जैनुलदे यौं चहे, ज्यौं प्रानी निज प्रान ।। ४३ ।।
अन्नोदक संबंध तैं, आइ इन्द्रपथ थांन।
मात पुत्र तिष्ठे सही, भनै सुनैं जिन वांनि ।। ४४ ।।
अरुन रतन पंडित तहां, शास्त्र कला परवीन।
बूलचंद तिस हेत सौं, ज्ञान अंस कछु लीन ।। ४५ ।।
कल्पलता माता सही, सुख करता सरवंस।
दुख हरता सौं यो महा ज्यौ तम सविता अंसु ।। ४६ ।।
सब सुख दै तिन यौं कही, सुनो पुत्र मो वात।
सुभ कारज तैं जग विषै, सुजस होइ विख्यात ।। ४७ ।।
महापुरिष गुन गाइये, ताही तैं यह जानि।
दोइ लोक सुखदाय है, सुमति सुकीरति थान ।। ४८ ।।
मुनि सुभचन्द्र प्रनीत है, कठिन अर्थ गंभीर।
जो पुरान पांडव महा, प्रगटैं पंडित धीर ।। ४९ ।।
ता को अरथ विचारि कैं, भारत भाषा नाम।
कथा पाण्डु सुत पंच की, कीज्यौ बहु अभिराम ।। ५० ।।
सुगम अर्थ श्रावक सबैं, भनै भनावै जाहि।
ऐसो रचिकै प्रथम ही, मोहि सुनावौं ताहि ।। ५१ ।।
जननी के ए वचन सुनि, लीनें सीस चढाइ।
रचिवे कौं उद्दिम कीयौ, धरि कै मन वच काइ ।। ५२ ।।
यह पुरान सागर कहा, मै बालक मति भाय।
तरिवे कौं साहस धरो, सो सब हासमहाय ।। ५३ ।।

चौपई

जे कवीस मह जिनसेनादि, वंदे पद तिनके हम आदि।
लह्यो पुन्य तहां तासो कथा, रचि हौं जिनवर भाषित यथा ।। ५४ ।।
ज्यौं नर मूंकौं वोल्यो चहै, सब जन ताकी हासी बहैं।
त्यौं यह ग्रंथ करत परवान, भाजन मोहि हसन कौं जान ।। ५५ ।।
चढ्यो मेरु पै पंगुल चहै सब जग मैं वह हासी लहै।
यह पुरान आरंभत अबै, तैसैं मोहि हसैंगे सबै ।। ५६ ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकति हीन मैं ऐसौ महा, तौ भी शास्त्र करन कौं गहा।
छीन धेनु ज्यौं वछा हेत, दुगध दाँन बहूं हित सौं देत ॥ ५७ ॥
रवि समान जे पूरव सूरि, तिन हौ द्रव्य प्रकासे भूरि।
तिन कौं दीपक सकति समाँन, क्यौ न प्रकासै ज्योति प्रमांन ॥ ५८ ॥
वक्र वाक कौं जे कवि भनै, तरु पलास वत जग मैं घनैं।
ग्राम्र वृक्ष थोरे वन माँहि, त्यौं कवि उत्तिम जग वहुनांहि ॥ ५९ ॥
दांष कवित्त कौ नासैं जेइ, विरले साधु जगत मैं तेइ।
उज्जल कनक ग्रगनि तैं यथा, निरमल कवित करे ते तथा ॥ ६० ॥
जे ग्रसंत हैं सहज सुभाइ, ते पर ग्रथंहि दूखैं धाइ।
ज्यौं दिन ग्रंध लगावत दोष, देखन रवि कौं धारत रोष ॥ ६१ ॥
ज्यौं मदमंत धरै बहुखेद, हेयाहेय न जानै भेद।
त्यौं जग मैं नर खल जो होइ, सब ही कौं खल मारो सोइ ॥ ६२ ॥
जलधर महिमा जग मैं कही, ग्रंबुदान दै पोषत मही।
त्यौं सब जनकौं सज्जन लोग, देहि सदा सुभ सिख्या जोग ॥ ६३ ॥
संतासंत सुखासुख करै, सोम सर्प सम उपमा धरै।
कोविद जन सव जानत एम, ता वीचार सो हम कौ केम ॥ ६४ ॥
षट् प्रकार कहिये व्याख्यान, तिन मैं मंगल ग्रादिहिं जान।
ग्रौर निमित्त जु करै कारन ठान, कर्त्ता फुनि ग्रभिधान जु मान ॥५५॥
प्रथम ही मंगल या मैं कहा, जो जिनेन्द्र गुन गाए महा।
जाकै हेत जु करी ए ग्रंथ, सो निमित्त ग्रघ हरन सुभ पंथ ॥ ६६ ॥
भव्य वृन्द कारन जग लीन, ज्यौं या मैं श्रेनिक परवीन।
कर्त्ता मूल जिनेसुर मुनी, उत्तर कर्त्ता गोतम गुनी ॥ ६७ ॥
तातै उत्तर ग्रौर जु भये, विष्णुनंदि ग्रपराजित ठये।
भद्रवाहु गोवर्द्धन ग्रौर, इन ग्रादिक कर्त्ता सिर मौर ॥ ६८ ॥
ग्ररथ विचार धरे जो नाम, सोई नाम कह्यौ ग्रभिराम।
ज्यौं पुरान यह पांडव सही, पुरु पुरुषन की महिमा कही ॥ ६९ ॥
नान भेद ग्रब सुनीये सही, ग्रर्थ गनत की संख्या नहीं।
पद ग्रक्षर की संख्या कही, मांन भेद तुम जानौं यही ॥ ७० ॥
षट प्रकार यह भेद विचार, सुभ वखान करिए बुधि धार।
पंच भेद वरनें फुनि ग्रौर, द्रव्य खेत्र ग्रादिक तिहिं ठौर ॥ ७१ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा

इहिं विधि सर्वं विचारि कै, वरनै गुनी पुरान।
वक्ता श्रोता अरु कथा, सुभ लंक्षण पहिचानि ॥ ७२ ॥

प्रथम वक्ता वरणन

दोहा

भव्य छमी सुंदर गुनी, सुचि रुचिवंत अदीन।
न्यायवान नैयायिकी सीलवांन सुकुलीन ॥ ७३ ॥
व्रतधारक वत्सल महा, अरु पंडित बहु होइ।
लछिमीवंत सुसंत चित, उत्तिम वक्ता सोइ ॥ ७४ ॥

उक्तं च श्रावगाचार भाषायां

सवैय्या ३१

विद्वत सुव्रत्तवान सुन्दर सुवैनवान
धारत प्रगलभता जु इंगितग्य जानीये।
प्रश्न मैं न छोभ करै लोक को विज्ञान धरै
ख्यात पूजा माँहि निर इछक बखानिये।
भाषै मित अभिधान दया ही की होइ खानि
अल्पश्रुत उद्धतानसु पुषता ठानीये।
वर्णंत अरुन सिष्य चाहिये सुवर्णं सुद्ध
एते गुन आगम तैं वक्तरि प्रमानीये ॥ ७५ ॥

अथ श्रोता वर्णनं

दोहा

सीलवंत सुभ दर्शनी सुभ लक्षण श्रीमान।
सदाचार चर चक महा, चतुर चतुर गुनखान ॥ ७६ ॥
व्रती सुदाता भोगता दक्ष सुपूरन अक्ष।
हेयाहेय विचार कर थिर थापैं जिन पक्ष ॥ ७७ ॥
प्रतिपालक गुरु वचन कौ, सावधान प्रधान।
क्रियावंत धरमातमा, मांनिनीक विद्वान ॥ ७८ ॥
सुनि अवधारे ग्रह रहै विमल चित्त विनयज्ञ।
त्यागी हास कषाय कौ सौ श्रोता सुभ तग्य ॥ ७९ ॥
कहे सुभासुभ भेद करि, श्रोता बहुत प्रकार।
हंस धेनु ए श्रेष्ठ है, मध्यम माटी सार ॥ ८० ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उक्तं च श्रावगाचार भाषायां

सवैय्या ३१

मृतिका महिष हंस स चालिनी मसक कंक
मारजार सूवा अज सर्प सिला पसु है।
जलूका सछिद्र कुंभ इन के सुभाव ही तैं
सुभा सुभ श्रोता जानि कहे चारिदसु है।
सम्यक विचारि इहै सुरस्वाभाव धारै उदरु
आदर विशेष करि छिमा सौं सरसु है।
भक्त गुरु भीरु भव जैन वैन धारन को
पारायन श्रोता गुन मृत्ति पसूं हंसु है ।। ८१ ।।

दोहा

दीजै जो उपदेस सुभ, ले इन श्रोता मुग्ध।
ज्यो कच्च फूटै घडै, रहै न राख्यौ दुग्ध ।।८२।।
सद श्रोता हिरदै धरै, गुरु उपदेसै जोइ।
वोयौ बीज सुभूमि ज्यौ, भूरि गुनौं फल होइ ।।८३।।

अथ कथा लक्षणं

दोहा

कथन रूप कहीए कथा, सो है दोइ प्रकार।
सुकथा जो जिन कही, विकथा और असार ।।८४।।
चरम सरीरी जे महा, तिनके चरित बिचित्त।
पुन्य हेत जहाँ वर्णीये, सो है कथा पवित्र ।।८५।।
पुन्य पाप फल वर्णीये, वरने व्रत तप दान।
द्रव्य क्षेत्र फुनि तीर्थं सुभ, अरु संवेग वखान ।।८६।।
जो स्व तत्व कौं थापि कै, दूरि करै पर तत्व।
ज्ञान कथा सो जानिये, जहां वरनैं एकत्व ।।८७।।
गुन पूरन सम्यक्त, सुभ बोध वृत्त संयुक्त।
नाना विधि सो वर्णीये, यह जिन भाषित उक्त ।।८८।।

उक्तं च श्रावकाचार भाषायां

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सवैया ३१

जीवा जीव आदि तत्व सम्यक निरूपै अर्थं
देह भव भोगन मांहि वर्णें निरवेद कों।
दान पूजा सील तप देसै विसतार करि
बंध मोख हेतु फल भिन्न भनै भेद कों।
स्यात अस्ति आदि नय सात जे विख्यात
अरु भाखै प्रान दया हित हिंसा के उछेद कों।
अंगी सरवंग संग त्यागैं होइ सिद्ध अंग
सत्य कथा कथा एई नासैं भव खेद कों ॥८९॥

दोहा

रिषि वशिष्ट सुक व्यास अरु, द्वीपायन इन आदि।
तिन करि भाषित कथन जो, सो विकथा वकवादि ॥९०॥
द्रव्य क्षेत्र अरु तीर्थं सुभ, काल भाव फल और।
प्रकृत सप्त ए अंग हैं, मुख्य कथा की ठौर ॥९१॥
ऐसी विधि यह वरन कै, कहियत है अब सोइ।
जो पुरान पावन पुरुष, भारत नामा जोइ ॥९२॥

महावीर भगवान का जीवन

चौपाई

जंबूद्वीप अनूपम लसै, पंडित जन बहु जामैं बसैं।
भरत खेत अति सोभित मही, आरज खंड सुमंडित यही ॥९३॥
देस विदेह विराजै जहाँ, सुर सम नर बहु उपजै तहाँ।
सिद्धारथ नामा तहाँ भूप, नाथ वंस अवतार अनूप ॥९४॥
सरव अर्थं की जाकै सिद्धि, वरतैं नौं निधि आठौ रिधि।
त्रिसला रानी ताके गेह, रूपसील बहु सुन्दर देह ॥९५॥
चेटक भूधर गिरि सम जान, तहाँ उपजी सुर सरित समान।
सो सिद्धारथ सागर मिली, प्रीति कारिनी गुन सौं रली ॥९६॥
प्रथमहि जाके तट छह मास, सेव करी सुरं कन्यां तास।
रतन वृष्टि जाकै घर भई, धनद देव नै आपुन ठई ॥९७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रैन पाछिली सोवत सही, सोलह सुपनैं देखै तहीं।
गज गो हरि श्री माला दोइ, चंद सूर झष जुग अब लोइ ॥९८॥
कुंभ जुगम सरवर सुभ जानि, सागर अरु सिंघासन मानि।
व्योम जान ग्रह पृथिवी तना, मणि रासागनि धूमें विनां ॥९९॥
ए सुपने सुभ देखत भई, जागि उठी तब प्रभु पैं गई।
हाथ जोरि फल पूछ्यौ जवैं; उत्तर सब नृप भाख्यौ तवैं ॥१००॥
पुष्पोत्तर तैं चइ कैं देव, ताकैं गर्भजु तिष्ठयो एव।
सुदि असाढ छठि गज नछत्र, कीनौ गर्भ कल्यानक तत्र ॥१०१॥
चैत त्रयोदसिसुदि के दिना, जनम कल्यानक सुरपति ठना।
वर्द्धमान यह प्रगटयो नाम, व्याप्त जाकै जग मैं धाम ॥१०२॥
तीस बरष के भये कुमार, सुभ तरुनापौ धार्‌यौ सार।
किंचित कारन तब ही पाय, चित वैराग धर्‌यौ अधिकाय ॥१०३॥
सब कुटंब सौं ऐसे कही, ए सब भोग विनश्वर सही।
लोकांतिक सुर तौ लौं नये, थुति करि कै सुलोंकहिं गये ॥१०४॥
तब सुरपति सुरगन सह आइ, जिन पद वंदे मस्तक नाइ।
पुनि न्हवाय भूषन पहिराय, सुरगन भगति करी अधिकाय ॥१०५॥
चंदप्रभा सिबिका सु अनूप. चित्र विचित्रित नाना रूप।
तापै चढि पुर बाहिर गये, परिगह त्यागि दिगंबर भये ॥१०६॥
हस्तरिक्ष मृगसिर वदि दसैं, साझ समैं जिन दीक्षा लसैं।
षष्टम थाप्यौ मन कौं सोध, मनपर्यय तव उपज्यौ बोध ॥१०७॥
पारन पाइ फिरे भू मांहि, मौंन रहे जिन बोले नांहि।
बारह बरष बितीते सवैं, जृंभक ग्राम पहुँचे तवैं ॥१०८॥
तहाँ रजूकूला सरिता तीर, साल वृच्छ तल वैठे वीर।
श्रेणी क्षपक चढ़े जिनराय, घाति करम घाते अधिकाय ॥१०९॥
तब ही केवल उपज्यों तास, सकल लोक प्रति भासत जास।
सोभित समोवसरन जिनराय, गिरि वैभार पहूचे आय ॥११०॥
तरु असोक धुनि दिव्य वखांन, छत्र सिंघासन चामर जान।
पुहप वृष्टि भामंड़ल सजै, घन सम घोर सुदुंदुभि बजै ॥१११॥
सुरपति आपुन ल्याये जिसै, गौतमादि ते गनधर लसैं।
मगध देस तहां सोभावंत, निवसै सु रसम नर जहां संत ॥११२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राज सदन पुर उत्तिम तही, सबै नगर मैं राजा वही।
भूतल भूषन मानौं यहै, बहु मंदिर करि सोभा लहै ॥११३॥

राजा श्रेणिक वर्णन

श्रेनिक भूपति है ती ठौर, नृप गन मैं गनिये सिरमौर।
सम्यक दृष्टि चित्त गम्भीर, परम प्रतापी धीर सुवीर ॥११४॥
प्रिय चेलिनी जाकै गेह, आये जिन तिन जान्यौ एह।
आदिनाथ अजोध्यापुरि ठये, भरत आदि ज्यौं बंदन गये ॥११५॥
त्यौंही श्रेनिक भूपति चल्यौ, दल चतुरंग सुसाथे रल्यौ।
हिन हिनाट हय करते चले, गय मयमत्त सुगरजत भले ॥११६॥
नाना भांति अरथ सौं भरे, ऐसे रथ सारथि अनुसरे।
भटगन निरतत अति ही चलैं, बाजे बजहिं मधुर धुनि रलैं ॥११७॥
गावें जस बहु चारन भाट, ता श्रेनिक कौं चलतैं वाट।
चलत राय सो पहुँचे तहां, समवसरन सुर राजै जहां ॥११८॥
गज ऊपर तें उतरे तवैं, चमर छत्र तजि दीने सवैं।
सिंघपीठ परि जिनि थिति करै, छत्र तीनि सिर सोभा धरैं ॥११९॥
चारु चतुर मुख च्यारौं दिसा, रवि सम ते जिनवर ते तिसा।
सुर नर खग पति जाकौं नमैं, तीनों भुवन पसंसा पमैं ॥१२०॥
आठों अंग मही सौं लाइ, नमन कीयौ धरि मन बच काइ।
पूजा करि थुति करै अनूप, सब विधि पूरन श्रेनिक भूप ॥१२१॥

श्रेणिक द्वारा महावीर की स्तुति

दोहा

स्तुति जानिस्तोतारस्तुति, स्तुति फल फुनि अवलोइ।
थुति आरंभी वीर की, मन वच काय संजोइ ॥१२२॥

चौपाई

तुम भगवंत भुवन पति सही, तुम थुति कौ क्षम कोउ नहीं।
सुरपति सम भी अखम भये, तुम गुन अंत न काहू लये ॥१२३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चित रहित चिनमय चिद्रूप, इन्द्रिय वर्जित निर्मल रूप ।
गंध विवर्जित ग्यायक गंध, वेत्ता रूप अनूप अबंध ॥१२४॥
ह्वै नीरस अद्‌भुत रस ठन्यौ, तुम तरुनापै रति पति हन्यौ ।
बालक क्रीड़ा कीनी जहां, देव नाग ह्वै आये तहां ॥१२५॥
तिनकौं जीति अति अभिराम, वीरनाथ यह पायौ नाम ।
बाल खेल तुम करतें तही, मुनि जुग नभतैं आये सही ॥१२६॥
तुम देखत तिन संसै टर्‌यौ, सनमति नाम तुम्हारो धर्‌यौ ।
ग्यानादिक गुण बढ़ते रहे, वर्द्धमान तुम तातैं कहे ॥१२७॥

महावीर को दिव्य ध्वनि

ऐसे थुति करि बैठो राय, सभा मांहि नर कोठै ठाय ।
तौलौं वानी जिनवर तनी, हौन लगी बहुगुन सौं सनी ॥१२८॥
तालु अधर गल हालै नांहि, और अनछर गुन जिस मांहि ।
धर्म विषै मति धारो भूप, द्वै विधि सो करता रस कूप ॥१२९॥
तजि गोचर अरु श्रावक तना, आदि धर्म निरगंथे ठंना ।
ग्यान गुन जप तप कौ थांन, ऐसो पद निरग्रंथै जानि ॥१३०॥
ग्रह गोचर सुनि दूजो धर्म, दान सील तप साधै कर्म ।
नाक तनै सुख सोई लहै, सील सहित श्रावक व्रत गहै ॥१३१॥
आहारादि चतुर्विध दान, त्रिविधि सुपत्तहि देहि सुजान ।
भोगभूमि फल यासौं वहै, फुनि जिन भावत भावन रहै ॥१३२॥
निज स्वरूप चिद्रूप विचार, हृदय शुद्ध करि भावैं धार ।
यही भावना जानौं सही, जति श्रावक दोनों को कही ॥१३३॥

दोहा

ऐसी विधि सौं धर्म सब सुनिकै श्रेनिक राय ।
गमन कीयो निज सदन को, वंदे जिनवर पाय ॥१३४॥

चौपई

नृप गन करि सो सेवित महा, पहुच्यौ पुर नृप मंदिर जहां ।
रमहि सुरानी चेलिन संग, ज्यो रति साथ रमत अनंग ॥१३५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चारु चित करि चिंतत रहै, जिन वच भावन हिरदै लहै।
निरधन जन कौं दांन सुदेत, सिद्धि अरथ सुभ साता हेत ।।१३६।।
वीर नाथ धुनि दिव्य वखान, देत चले भविजन कौं दान।
करयौ सुस्वामी देस विहार, जाको सुरपति सेवा धार ।।१३७।।

विभिन्न प्रदेशों में महावीर का विहार

अंग वंग कुर जंगल ठए, कौंसल और कलिंगे गये।
महाराठ सोरठ कसमीर, परा भीर कोकण गंभीर ।।१३८।।
मेदपाट भोटक करनाट, कर्ण कोस मालवै वैराट।
इन आदिक से आरज देस, तहां जिन नाथ कीयौ परवेस ।।१३९।।
भव्य रासि संबोधत वीर, देस मगध फुनि आये धीर।
गिरि वैभार विभूषित भयो, मानो रवि उदयाचल ठयौ ।।१४०।।

मगध नरेश द्वारा महावीर वन्दना

जिन विभूत लखि अकथ अपार, विसमयवंत भयौ वन पार।
नृप मंदिर सोवत ही जाइ, जहाँ सिंघासन बैठे राइ ।।१४१।।
स्वेत छत्र छवि रवि आताप, दूरि करै सव टारै पाप।
मुकट मयूख नभस्तल गई, इन्द्र धनुष रचि सोभा ठई ।।१४२।।
सूर चंद सम कुंडल वर्ण, रतन जडित अति सोभित वर्ण।
हार मनोहर गल मैं लसैं, किरनौं करि उडगन कौ हसैं ।।१४३।।
दीरघ दिढ भुज बाजूबंध, अरु करकट कहरै तम खंध।
भेट अनेक जु आवै लेइ, तिन पै हित सौं लोचन देइ ।।१४४।।
दंत मरीचि अधिक ही धरैं, तिन कर भूतल उजल करै।
मागध गुन गावै संगीत, तिन कौं सुनि करि धारै प्रीति ।।१४५।।
नृप कुलीन बहु थुति कौं करै, वर कृपान कर सोभा धरै।
जान दीयौ दरवानौं जवै, ऐसो भूपति देख्यौ तवै ।।१४६।।
नमस्कार करि तहां वन पाल, कीनीं विनती सुनि भूवाल।
नाथ वंस मैं उपजे जोइ, वीर नाथ जिन आये सोइ ।।१४७।।
गिरि वैभार विभूषित कीयौ, फुनि भूमंडल अचिरज लीयौ।
महावाघनी करुना ठानि, गो सुत छीवै निज सुत जानि ।।१४८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मारजार अरु मूषक रमैं, नागन कुल इक जागै पमैं।
गज अरि शावक अरु मृगराइ, खेलै आपस मैं अधिकाइ ॥१४९॥

सूके सर बहु जल सौं भरे, कोक मराल सवद तहाँ करे।
सुक्क शाल फल फूलौं झूमि, वंदौं जिन पद मानो घूमि ॥१५०॥

तिस प्रभाव वन अचिरज धर्यौं, सब रितु के फल फूलौं भरयौं।
यह अचिरज मैं देख्यो राय, तिनकी भेट करी मैं आय ॥१५१॥

दोहा

वचन सुनें वनपाल के, हरष्यौ चित अति भूप।
तृषावंत ज्यौं नर लहै, लखि कै अमृत रूप ॥१५२॥

अडिल

सार वित्त वन पालहिं राजा धाइ कैं।
सात पैंडि उठि प्रणम्यौं जिन दिस जाइ कैं।
जा प्रसाद चित परमानन्द अनंदिए।
ऐसे चरन कमल जुग जिन के वंदिए ॥१५३॥

बर्द्धमान गुन खांन गुनी गुनपाल है।
धर्मवंत व्रत वंत सुसंत दयाल है।
सुजस सदा जग राइ जई जिन वंदए।
नमस्कार कर जोरि जिनुलदे वंदए ॥१५४॥

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामांकितयां लाला बुलाकीदास विरचितायां भारत भाषायां श्रेणिक जिन वंदनोत्साह वर्णनो नाम प्रथमः प्रभवः।

卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ अनंत जिन स्तुति

दोहा

भव अनंत यह जलनिधी, ताको है वर सेतु ।
जिन अनंत गुए अंत नहिं, बंदौ शिव सुख हेतु ॥१॥

एक समय बिरकत विदूर, भये विषय सुख मांहि ।
छिन भंगुर संसार मैं, जान्यो थिर कछु नांहि ॥२॥

विदुर चतुर चिंतवत, (चित) धिग संपय धिग राज ।
धिग प्रभुता धिग भोगए, सब अनर्थ के काज ॥३॥

जाकै कारन जनक कौं, हतै पुत्र धरि क्रोध ।
कहुंक सुत कौं मारई, पिता पाइ दुरबोध ॥४॥

हनत मित्र कौं मित्र ही, बंधु बंधु कौ मारि ।
भव सुख कारन जीवए, करत काज अविचार ॥५॥

ए कौरव अति दुरमती, महा क्रम चंडाल ।
इन कौं मरतैं रण विषै, लख्यौ न चाहूं हाल ॥६॥

यों विचारि कौरवन सौं, कहि करि वन मैं जाइ ।
विश्वकीर्ति कौं नमन करि, सुनत धर्म धरि भाइ ॥७॥

भए दिगम्बर संजमी, अंबर तन तैं त्यागि ।
बाह्याभ्यंतर तप चरन, परम तत्व चित लागि ॥८॥

एक समैं कोइक महा, सार्थवाह परवीन ।
राजग्रही पुरि ईसकी, भेटि रतन बहु कीन ॥९॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पूछी ताहि नरिंद नैं, कहा तैं आयौ भाइ।
कह्यौ कि द्वारा नगर, तैं तुम देखन कौ राइ ।।१०।।

फुनि पूछ्यौ ता नगर मैं, कौन नाम है भूप।
तिन भाख्यौ बैंकुठ बल, नेमि नृपति जिन भूप ।।११।।

जादव निवसे सुनत हीं, जरासंघ ह्वै ऋुद्ध।
जलधि हल्यौ मनु प्रलय को, चल्यौ करन को जुद्ध ।।१२।।

जुद्ध चहत विन हेतु ही, ऐसे नारद आइ।
जरासंघ कौ छोभ सब, हरि सौं कह्यौ वनाइ ।।१३।।

नेमि निकट फिरि जाइ कै, आगै ठाड़ौ होइ।
पूछी अरि सौं जीति हौं, सत्य कहो तुम सोइ ।।१४।।

नेमनाथ मुसकाइ कैं, निरख्यौं हरि की ओर।
तब अपनी जय जांनि कै, विष्णु चढ्यौ दल जोर ।।१५।।

बल हरि कै संग नृप चढे, समुदबिजै बसुदेव।
अनावृष्टि अरु धर्मसुत, भीम सु अर्जुन एव ।।१६।।

धृष्टद्युम्न प्रद्युम्न जय, सत्यकिसारण संवु।
भूरिश्रवा सहदेव अरु, भोज स्वर्ण गर्मंवु ।।१७।।

द्रुपद बज्र अक्षोभ विदु, सिंधीपती पौंडरीक।
नागद नकुल सुकपिल कुरु, छेम धूर्त्त वाल्हीक ।।१८।।
महांनेमि दुर्मुख निषध, बिजय पद्मरथ भानु।
चारु कृष्णा उन्मुख जबन, फुनि कृतवर्मा जान ।।१९।।
नृप शिखंडि बैराट नृपति, सोमदत्त इन आदि।
जादव पछी नृप महां, चढ़े जुद्ध कौं सादि ।।२०।।

जरासंध को दूत तब, दुरजोधन तट जाइ।
नमसकार करि बीनयौ, सुनौ चक्रि बचराइ ।।२१।।

दुर्द्धर मार्‍यौं कंस जिन, चक्रिसुता पति सूर।
मुष्टि घात तैं चूरियौ, मल्ल वलीचानूर ।।२२।।

करिहिं धर्‍यौ गोवर्द्ध गिरि, अहि मर्दक गोपाल।
प्रगट भयौ सौ भूविषै, धारत मद सविशाल ।।२३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जे जादव रण तैं टरैं, जरे अगिन मैं धाइ।
ते अब सुनीयें जीव तैं, बसे जलधि महि जाइ ।।२४।।

रतन भेट करि वैश्य नै, कह्यौ चक्रि प्रति एम ।
राज महा जादव करत, द्वारिकपुर मय हेम ।।२५।।

जादव पांडव द्वारिका, बसत सुनें चक्रीस ।
महाक्रुद्ध ह्वै नृपनपै, पठए दूत अधीस ।।२६।।

नृप प्रधान जे पुरुष वर, सकल बुलाये पास ।
एक बरस मैं भूप सब, मिले तहां गुन रास ।।२७।।

तातैं हे कौरवपती, तो तट पठयौ मोहि ।
चक्रवर्त्ति अति प्रति तैं, अबहि बुलावत तोहि ।।२८।।

विविधि बाहिनी आपनी, सारी साजि सुकच्छ ।
तुम प्रति चक्री यौं कह्यौ, आवहु मो तट वच्छ ।।२९।।

सोरठा

सुनत भयो रोमांच, मागध कौं आदेस यह ।
पूज्यौ दूत सु संच, वसना भूषण दर्वतैं ।।३०।।

जो मो मन थौ इष्ट, सोई चक्री अब ठनी ।
ह्वै सबहि विसिष्टि, निज चित यौ चिरचिंतयौ ।।३१।।

सवैया २३

सुरन मैं वर सूर दुर्जोधन, ताहि समैं रण भेरि दिवाई ।
जाकी महा धूनि व्याप्त भू, नभ छोभ भयो चहुँ सागर ताई ।
धीरन के तन रोम जगाइ, सुजुंभन कौं चित चौंप लगाई ।
काइर कंपत काइ महा, भय खाइ सुभौंन के कौंन धसाई ।।३२।।

सज्जि चली चतुरंग चमू चय, मत्त मतंग महा निकसेई ।
सागर सैं नहि मद्धि धसे रथ, सारथि सौं महमी नक सेई ।।
चंचल चाल चलैं चल चामर, चारु तुरी सुन जीत कसेई ।
सत्रुन के ग्रसबे कौ सुदोरहि, सुरपयग्दल की नक सेई ।।३३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहरा

कौरव दल दलमलि धरनि, छाई रेनू अकास।
दुख कहिये कौं भूमि मनु, चली इन्द्र के पास ॥३४।

क्रम तैं कौरव वाहिनी, मिली चक्रि दल संग।
सब तैं अधिक समुद्र कौं, आइ रली मनु गंग ॥३५॥

दुरजोधन कौं मांन बहुं, राख्यौ मागध राइ।
कर्णं मिल्यौ यौं कोरवहिं, ज्यौं रवि किरण रलाइ ॥३६॥

तब पठयौ चक्रीस नैं, दूत जादवनि पासि।
तुरित जाइ सौं बीनयौ, सब सौं बचन प्रकासि ॥३७॥

भो जादव तुम पै करत, आज्ञा यह चक्रेश।
जाइ बसे किम जलधि तुम, तजि कै अपनौं देश ॥३८॥

समुदविजै बसुदेव ए, हम प्रीतम हैं आदि।
वांचि आपको किंहि लयें, गए सुछिपि कै वादि ॥३९॥

चरन जुगल चक्रीस के, सोवौह अब तजि गर्व।
जा प्रसाद तैं तुम लहो, राज पाट सुख सर्व ॥४०॥

ऐसी सुनि कँवल वली, बोल्यौ क्रोधित होइ।
हरि कौ तजि या भू विषै, चक्री और न कोइ ॥४१॥

ऐसी सुनि फरकत अधर, दूत भनैं इंहि भाइ।
जातैं तुम सागर विषै, जाय छिपे भय खाइ ॥४२॥

तिस पद पंकज सेव तै, कहीयत कौन सुदोष।
आवत हैं तुम पै चढ्यौ, मगध राइ धरि रोष ॥४३॥

ग्यारह छोहिनि दल सहित, मुकट–बद्ध नृप संग।
आवतं ही तुम गर्व कौ, करै छिनक मैं भंग ॥४४॥

वच कठौर सुनि दूत के, बोले पांडव ताहि।
मन इंछत मुख बकत है, मारि निकासौ याहि ॥४५॥

यौ सुनि निकस्यौ दूत तब, आयौ चक्री तीर।
उन्नतता जादवनि की, बरनी अधिकहि धीर ।.४६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोरठा

अहो देवते जादवा, महा गर्व ग्रह ग्रस्त।
तुम कौं रंचन मांनई, ज्यौं मदिरा मद मस्त।।४७।।

असे वचन सुनि चक्रधर, रण दुंदभि वजाइ।
चलिवे कौं उदित भये, संग लए सब राइ।।४८।।

दीपतिवंत बिमान वहु, वैठि चले खग भूप।
रवि पंकति मनु गगन मैं, धाई उमडि अनूप।।४९।।

वहु नरिंद भूचर महा, भूमि चले मनु चंद।
उडगन सम द्युति वंत अति, संग सर्जे भट वृंद।।५०।।

द्रोण भीष्म जयद्रथ रुकम, अश्वथाम फुनि कर्ण।
सल्य चित्र वृषसेन नृप, कृष्णवर्म सुन वर्ण।।५१।।

इन्द्रसेन अरु रुधिर भी, दर्जोधन दुःसास।
दुर्मंष दुर्द्धर्ष इन प्रभृत, चली नृपन की रासि।।५२।।

पगतैं भूकंपन करत, आए सब कुरु खेत।
तजिकै ममता जीव की, कर्‌यो मरनसौं हेत।।५३।।

केईक नृप सुनि वात यह, जजत भये जिनदेव।
केईक गुरु तट जाइ कै, लए अनुव्रत एव।।५४।।

केइक नरपति यौ कहत, तजीए गृह सुत दार।
कर मैं लीजे तीछन असि, कीजै अरि संघार।।५५।।

केइक निज निज भृत्य प्रति, कहत भये नर राइ।
चापहुँ पनिच चढ़ाईये, गज गन सजोह बनाइ।।५६।।

जीन सजौ बाजीनि पैं, भुंजो भोजन मिष्ट।
अश्व रथन सौं जूजीये, दीजै वित्त विशिष्ट।।५७।।

इह विधि भाषत सैन मैं, गर्जि गर्जि के राइ।
निज निज आयुद्ध कर लीये, चमकावत अधिकाइ।।५८।।

केई फिरावत कुंत कर, गदा उछारत उंचि।
कोई तीर चलाव ही, रंचि निशाना संचि।।५९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

केईक सुरसभा विषै, सरन मरन की बात।
अपने ही मुख मान सौं, भाषण हैं बहु भाँति ।।६०।।

तो लौ हरि कौं दूत तहाँ, गयौ करन के तीर।
नति करि भगतिहि वीनयौ, मो बच सुनिये धीर ।।६१।।

जुगति होई सौं कीजिए, सुनौं सत्ति अवनीस।
जिन भाषति नहिं अन्यथा, कैं है हरि चक्रीस ।।६२।।

कुरु जांगल सुभ देश कौ, सकल राजा तुम लेहु।
पांडु पुत्र कुन्ता जनित्त, मांनहुं मो वच एहु ।।६३।।

भ्रांत पञ्च पांडव जहाँ, तहाँ आयौ तुम वीर।
वचत्त दूत के सुनत्त इम, बोल्यौ कर्ण सुधीर ।।६४।।

अव हम आवन जुगत नहिं, न्याय उलंघहिं केम।
राजा रन के सनमुखें, नीति न त्यागत एव ।।६५।।

सेवित नृप कौं रन विषै, मत्यन मुञ्चै कोइ।
जो मुञ्चै तो अघ लहै, अपजस जग मैं होइ ।।६६।।

निहचै सेतै गर पछै, पाण्डव राज छिनाइ।
दै हो नृप पद कौरवहिं, यही कहो तुम जाइ ।।६७।।

यो सुनि निकस्यौ दूत तब, गयौ तहाँ सुविचार।
जहाँ चक्री कौरव सहित, वैठे सभा मझार ।।६८।।

नति करिकै यो बीनयौ, सुनौं चक्रि तुम बात।
सन्धि करौ जादवन सौं, और भाँति नहि सांति ।।६९।

सांचि सहित सुनि जिन उकति, केशव तैं तुम मति।
गंगा सुत को नाश है, नृप सिखंडितै सति ।।७०।।

धृष्टार्जुन के हाथ तैं, मरण द्रोण कौं जान।
धरम पुत्र तैं मृत्यु है, सल्य तनी परवान ।।७१।।

दुरजोधन की पञ्चता, भीमसेन तै गन्य।
जयद्रथ पारथ हाथ तैं, कारन सुत अभिमन्यु ।।७२।।

कुरु पुत्रन कौं मृत कहीं, जानहुं मागध राइ।
निहचै तैं यह जिन कथित, हम जानत है भाइ ।।७३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यों कहि निकस्यौं दूत सौ, द्वारापुर में आइ ।
नमस्कार करि हरि प्रतें, कह्यौं कि सुनिये राइ ।।७४।।
आई तिनकी बाहनी, कुरु खेतहिं हे देव ।
जुद्ध विषै संकट भये, कर्णं न आवत एव ।।७५।।
तुम कुं प्रभु गंतव्य है, तुरितहि अब कुरु खेत ।
सत्रुन सौं जोधव्य है, जुद्ध विषै जय हेत ।।७६।।

सोरठा

ऐसी सुनि हरि सूर रण कौ उद्दित चित्त भये ।
पांच जन्य कौ पूरि भू अम्बर धुनितैं सुन्यौं ।।७७।।
सुनत सङ्ख की गाजि सैना केसव की चली ।
कुरखेतहिं रन काज, राजन इन्द्र चमु मनौ ।।७८।।

सवैया २३

माधव की चतुरग चमु चल तैं चल चाल लई अचलाई ।
मानहुं मेटि दई पगतैं दरि रैनु भई सु अकासहिं धाई ।
कैं अकुलाई कै भार परै भय भीरू भयें सुर लोकहिं धाई ।
कैं उमही अरि जारन कौ परताप दवानल घूम महाई ।।७९।।

अथ चतुरंग चमुं वर्णनं

— प्रथम गज वर्णनं —

मत्त मयंद झरैं मद नीरहिं स्याम मनौं घन काल घटाई ।
सेतु सुकेतु लसैं तिनपैं बग पंकति की परसी उपमाई ।।
कंचन की चमकै चहुं ओर बनी चउरासि किधौं चपलाई ।
घेरि चले हरि रूप धरैं मनु मेटन कौं अरि ग्रीषमताई ।।८०।।

— अथ रथ वर्णनं —

सागर छार अपार चमुं अरि तारन कौरथ पोत सहाई ।
बज्रभई अर चक्र धरैं अध अश्व चलैं मनु पौंन बहाई ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उन्नत केतु रथी पटु खेयटई सजि ता वन की गति पाई।
आयुव पंच पदारथ पूरन सूरन कौं रन मैं सुखदाई ।।८१।।

— अथ अश्व वर्णनं —

चञ्चल चाल चलैं चल चामर, चारु तुरंगम अंग सुहाए ।
किंकिनि हार गरैं अप पाखर तापर कंचन जीन कसाए ।।
मारू बजैं तजि नीद नचैं परचैं नही जमके नटवाए ।
पौंन के पूत किधौं बड़वा सुत सत्रु समुद्रहिं सोखन धाए ।।८२।।

— अथ पदाति वर्णन —

स्यांग सु कौच कडी दिढलाइ, किधौं तन पैं घन की छवि छाया ।
सूर पयादल ढाल विसाल महा करवाल लयें कर धाए ।।
कांधैं कंमान कटारि छुरी सर कोस सु खैंचि कटिक्राए ।
दुरजन के दल वारन कौं मनु दौरि चले जम पुत्र महाए ।।८३।।

दोहा

ऐसी विधि चतुरंग दल, लीनें जादव राई ।
आइ ठये कुरुखेत तट, महा उदय कौं पाइ ।।८४।।
दुर्निमित्त तब बहु भये, जरासंधि की सैंन ।
दुख के सूचक प्रगट हीं महा अजस के दैंन ।।८५।।
भयौ राहुतें रबि गहन, गगन मांहि भयदाई ।
वरस्यौं बारिद बिन समैं, दीनी सैंन बहाई ।।८६।।
प्रात हीं काग घुजान पै, रबि सनमुख एढन्ति ।
गृद्ध क्रुद्ध छत्रादि पै, बैठे नखनि खनन्ति ।। ८७ ।।
भू कम्पन अनहद रुदन, मार मार धुनि बाह ।
बार-बार उलका पतन, रुधिर विष्टि दिगदाह ।।८८।।
कुसुगन लखि कौरव पति, मन्त्रि प्रतें यौ भाखि ।
दुर्निमित्त हे मन्त्रिपति, लखीयत है वहुं आँखि ।।८९।।
मंत्रि कहै भो प्रभु कहाँ, नाहि सुनी तुम बात ।
गिलि है सबहिं तिमिंगि ज्यौं, यह कुरुखेत विख्यात ।।९०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सरिता रुधिर प्रवाह की, बहि है या भू माहि।
तामैं स्नान करे विनां, रहि है कोऊ नांहि ॥९१॥

राछस भूत पिचास गन, चाहत बलि नर मांस।
तिनके तिरपत कारनैं, मरि है बहु भट रासि ॥९२॥

मुंडि फिकारत राछसी, निरत करत आकास।
राजनि की बनिता घनी, ह्वै हैं विधवा आस ॥९३॥

गिद्ध स्याल मंडलात अति, आत पात्र कै भाल।
होइ धरनि लोथनि मई, अरुन वरुन विकराल ॥९४॥

जरि है आयुध अगनि तैं, कौरव वंश विसाल।
यौं भाषत दिग दाह यह, राज चाल भूचाल ॥९५॥

कुत्सित रन कौ खेत है, यह कुरु खेत कुखेत।
रुदन करत अनहद असद, कौरव नासत हेत ॥९६॥

फुनि दुरजोधन यौं कह्यौ, कहो मंत्रि मो इष्ट।
कितनी है अरि बाहिनी, कितने भट हम सिष्ट ॥९७॥

सो वोल्यो सुनिये नृपति, जे भूपति बल जोर।
दछिनबासी ते सबै, भये विष्णु की ओर ॥९८॥

सवैया २३

हैं वहुतौ करि सिद्धि कहा, प्रभु काइर स्यारन सूरनि मारैं।
एक धनंजयतैं सब भूपति, ए रण मैं न बराबर सारैं॥
कोई समर्थ निवारन कौं नहि, जा हरि सौं असुरादिक हारैं।
और हली हल मूसल धारत, जास नसै अरि ह्वै भय भारै ॥९९॥

विद्य सुप्रग्य यती प्रमुखा, जिस सिद्धि भई अरिनासक सारी।
मार कुमारि सु ताहि निवारण, कौ रण मै नहिं सैन हमारी॥
पावनि पावन सत्रु बिनासन, भूपरि भूप भुजाबल धारी।
मोहि न दीसत कोइ वली, तुम ता समहा बल को अपहारी ॥१००॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहरा

सात अछोहिनि बल सहित, भूपति बली प्रसस्त ।
तिनकौ पाइ सहाइ हरि, सब अरि करे निरस्त ।।१०१।।
एकादसहिं अछोहिनी, दल दुरबल हम साथ ।
कहा होत बहुते भये, जो न बली ह्वै नाथ ।।१०२।।
ऐसी सुनि दुरजोध नृप, कह्यौ चक्रि प्रति सर्व ।
सत्रुन कौं तिन सम गिनत, धारत चित अति गर्व ।।१०३।।

सवैय्या २३

मागध यौ मद अंध भनै, अहि जोर कहा बनिता सुत आगैं ।
कौलौं रहै सम भार धरा परि, भोर भये रवि की कर लागैं ।।
ज्यौं बिचरै मृग होइ सुछंदन, केसरि सोभित केसरि जागैं ।
त्यौं मुझ कौं रण मांहि अरी, सब देखत ही दश हूं दिसि भागैं ।।१०४।।
यों कहिकैं त्रय खंड पती, गजराज चढैं रण कौं चढि आयौ ।
ताही समैं दिसि नाथन कौं, दसहुं दिसि साथहि कंप दिवायौ ।।
संग लये गजराजनि के नर, छत्र निसैं नभ आंगन छायौ ।
रेणु उड़ाय चमुं चपनैं घन, रूप भये तिन सूरहि पायौ ।।१०५।।

दोहरा

जरासंधि निज सैन मैं, चका व्युह सु रचाय ।
गरुड़ व्यूह श्रीकृष्ण नै, ठान्यौं बहु भय दाय ।।१०६।।

सवैया २३

दोऊं महा दल दारुन तैं इम, घोर भयो तम भू रज छाये ।
जाय छिपे जुग कोकनि के निज, आलनि में रवि अस्तड़राये ।।
काग पुकारि उठे भय पाय सुद्योसहि में निसि के भरमाये ।
जुद्ध पर्यौं अति कोप जग्यो, जम कै परलै प्रगटी रन ठाये ।।१०७।।

दोहरा

माधव मागध यौं अरे, एक राज के हेति ।
जीवन ममता तजि सुभट, लरन मंडे कुरुखेत ।।१०८।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोरठा

उमगि चले रन खेत, दुहुं ओर के सूर यों।
स्वामि काज के हेत, निज निज आयुध हाथ लैं ।।१०९।।

करत घोर संग्राम, तजि सनेह निज देह को।
बिसरि भांम सुख धाम, सुमरि सूरपन सूरही ।।११०।।

अडिल्ल

असि निकासि ललकारि, चले निज कोस तैं।
देत सत्रु सिर मांहि, भटाभट रोस तैं।।
घन कुदाल तैं जैसै, वली भेदिये।
कुंत अग्रतैं त्यों, अरि काया छेदिये ।।१११।।
घन समान भट केइक, अति ही गर्जि कै।
गुर्ज्जं घात तैं मारत, अरि कौं तर्जि कै।।
रकत धार निकसी, गज कुंभ विदारि तैं।
भई लाल दस दिसि, मनु कुकुंम विदारि तैं ।।११२।।
हनत अश्व असवार, सुहय असवार हीं।
धाइ धाइ रथ सारथ रथहिं हकार हीं।।
मत्त मत्त गजराज कै, सनमुख आवहीं।
कुंभ कुंभ तैं, दंतहि दंत भिरावहीं ।।११३।।
बान बान तैं छेदि, धनूर्द्धर सूरहीं।
खैंचि खैंचि आकर्णहि, अंबर पूरही।।
परस परस तैं, दण्ड हि दण्ड सुखंड ही।
करत जुद्ध परचण्ड, महाबाल बंड ही ।।११४।।
चक्रि सैंन तैं हरिदल, भाज्यो ता समैं।
जल प्रवाह ज्यौं, दावानल ज्वाला दमैं।।
कूंवर संबू तब निज जन धीरज धार तो।
मुडयौं जुद्ध को, उद्धत अरियन मारतौ ।।११५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छेम विद्धि षग तब ही सन्मुख आइकैं।
लह्यौ सबसौं अति ही बल प्रगटाय कै॥
कर्यौं संबु नै रथविन भूमि गिराइयौ।
जुद्ध छोडि सां खेचर, तब ही पालाईयौ॥११६॥
उठयौ और खग तोलौं, रण कों मद धरैं।
विद्या मांहि सुविसारद, आयुष अनुसरैं॥
कर्यौं संबुतैं सो भी, निरबल ऋुद्ध तैं।
कह्यौ भाजि मत खग रे, अब तूं जुद्ध तैं॥११७॥
बार बार ललकार्यौं, ऐसैं भाषि कैं।
गयो भाजि खग तौ भी, जीवहि राखि कैं॥
कालसंबर सुत वहीं, आयौ खगपती।
हनत सत्रु कौं पहिरैं, कंकट दिढ अती॥११८॥
कुंवर संबू के सनमुख, धायौ जुद्ध कौं।
धनु चढाइ सरलाइ, बढाइ विरद्ध कौं॥
तवहि संबु कौं, बज्जिसु आयौ मार हीं।
मेघ ओघ ज्यौं बरषत, शर की धार हीं॥११९॥
भनैं मार खग प्रति, तूं जनक समान है।
जुद्ध जुक्त नहिं तो, संग न्याइ प्रमान है॥
फिरि सु जाउ तुम तातैं, हम सौं मत लरै।
तब हि मार सों, खगपति ऐसे उच्चरै॥१२०॥
स्वामि काज के कारी हम सेवग सही,
जुद्ध मांहि वच ऐसे कहि ने हैं कहीं।
कर निसंक तुं तातैं धनु संधान ही,
जुद्ध मांहि नहि दोष अरे अरि हान ही॥१२१॥
तबहि मार अरु काल सु संबर गाजि कै,
करत जुद्ध जुग जोधा आयुध साजि कै॥
लगी बार बहु रति पति कौं लरतैं जबै।
तज्यौ बांन प्रज्ञपती विद्यामय तबै॥१२२॥
सकल शस्त्र करि व्यर्थ भयौ तब खग पती।
पुन्यवंत स्यौं चलै न बल अरि कौ रती।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कालसंबरहिं बांधिकर्‌यो निज रथ विषैं,
सल्यखेट तब आयौ रण कै सनमुखै ॥१२३॥

तबहि मारनै छोडै सर बहु तीछना,
छेदि सल्य को संदन कीनो जीरनां।
सल्य और रथ चढि कै रण अति ही कर्‌यो,
सिस्सुपाल को अनूज सुनलौं अनूसरयो ॥१२४॥

हत्यो मार कौं सरतैं मूर्छित कर दीयो,
बहुरि बांन गन तजि कै रथ चूर्णित कीयो।
गिर्‌यौ स्वामि अरु देख्यौ रथ टूट्‌यो जबै,
भयो सारथी अति हीं भय पीड़ित तबै ॥१२५॥

ह्वै सचेत उठि बैठ्‌यो तोलौं काम ही,
सुथिर चित्त ह्वै बोल्यौ गुरु गण धाम ही।
अहो सारथी हिरदै भय नहिं धारिये,
भये भीत रण मांहि अरिसौं हारिये ॥१२६॥

दोहरा

रण सनमुख काइर भये, सुर नर सभा मझार।
खेटन मैं पांडव नमैं, लजीए पावत हार ॥१२७॥
फुनि दशार्हं बल कृष्ण मैं, आवै हम कौं लाज।
तातैं या तन असुचि तैं, ह्वै है कौन सुकाज ॥१२८॥
कीजै पुष्ट शरीर कौं, करकै सरस अहार।
को गुण तासौं जुद्ध मैं, जो भाजै भय धार ॥१२९॥
यौं कहि मनमथ अन्य रथ, चढि सारथि थिर कीन।
सिस्सुपाल के अनुज सौं, बहुरि भयौ रण लीन ॥१३०॥

अडिल्ल

लगे जुद्ध कौं दोऊ रण कौंविद महा।
दुहुं मद्धि तिन के आओ हरि तहां ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तबहिं सल्य खग धायौ भट प्रति विष्णु कौं।
कहत एम सिर छेदौं अब मैं कृष्ण कौं ॥१३१॥
नभ खगेश नैं छायौ वानन सौं तबैं।
परत दृष्टि नहिं केशव रथ सारथि सबैं ॥
मनौं मद्धि सर पंजर घेरे आनि कैं।
लखैं सूर सब जीवित संसय जानि कैं ॥१३२॥
कंपमान रुधिरारुण नर इक और हीं।
आइ कृष्ण प्रति बोल्यौ तिस रण ठौर हीं ॥
भो मुरारि किम करत वृथा तुम जुद्ध ही।
हते पांडवा पांचौ रण मै क्रुद्ध ही ॥१३३॥
फुनि दशार्हं से बलधर जोधा और जे।
जरासंघ नैं मारे रण मैं ठौर तें ॥
नगर द्वारिका सिंधु बिजय नृप जोर है:
जुद्ध मांहि सो अरि नै भेज्यौं जम ग्रहै ॥१३४॥
लई सत्रु नैं निहचै द्वारावति पुरी।
अबहि नाथ क्यों मरत वृथा तुम हे हरी ॥
भाजि जाहु तुम रण तैं जो वांछौ सुखैं।
मायामय वच सुनि इम हरि बोल्यौ रुषैं ॥१३५॥
अरे दुष्ट मो जीवत जादव नृपन कौं।
को समर्थ नर जग मैं इन के हतन कौं ॥
वचन कृष्ण के सुनि सो भांज्यौं दुष्ट ही।
चल्यौ विष्णु अरि ऊपरि धनु गहि रुष्ट ही ॥१३६॥
कै पिशाच खग तौलौं कोइक आइ कै।
कह्यौ कृष्ण प्रति ऐसे झूंठ बनाइ कैं ॥
भो गुपाल तुम देखहु नभ की ओर ही।
हत्यौ भूप वसुदेवहि अरि नैं ठौर हीं ॥१३७॥
चल्यौ त्यागि रन खगगनता बिन भय रत्यौ।
यही बात कहि वृछ विशेष हरि पै हत्यौ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सिखी बान तैं हरि नै छेद्यौ छिन विषै।
तबहि कृष्ण परिडार्‌यो परवत ह्वै रुषैं ।।१३८।।
असनि बांन तैं गिरि भी हरि तैं नासीयौ।
गयो भाजि तव खेचर हरि तैं त्रासीयौ ।।
तबहि विष्णु कौं नर सुर पर संसौं घनौ।
बहुरि आइ तिन खग नै नुत कर्‌यौं भन्यौं ।।१३९।।
भो नरेन्द्र जब लौं खग दूजौ आइ कैं।
केतु छत्र रथ तेरे लुइन न धाइ कैं ।।
जाहु जुद्ध तैं तोलौं मो वच धारिए।
और भांति रण मांहि अरी सौं हारीए ।।१४०।।
अहौ कृष्ण बिन कारन रन क्यौं करतु है।
सिद्धि नांहि कछु या मैं अघ अनुसरतु है ।।
लुनहु चक्र तैं मस्तक मागध को महा।
जनवराक विरथां ही मारै ह्वै कहा ।।१४१।।
सुनत बात यह क्रोधित माधव यौं भनैं।
हन्यौं नाथ किम जाइ बरा कौ विन हनै ।।
यही बात कहि हरि नै असि नंदन करै।
कर्‌यौ खेट द्वै टूक पर्‌यो सो भू परै ।।१४२।।
जीविवंत हरि कौं लखि सुरगन गगन तैं।
पुष्प वृष्टि बहु कीनी बिघन सुरन तैं ।।
कर्‌यौ कृष्ण तब बल प्रति कौ विधि ठानीये।
चका व्यूह अति दुर्द्धर जासौं हानीये ।।१४३।।

दोहा

जाइ विष्णु रण मैं तबै, तीनि सूर लै संग।
चका व्यूह गिरि असन ज्यौं कर्‌यौ छिनक में भंग ।।१४४।।
जरासंघ तब क्रुद्ध ह्वै, अरिगन मारन काज।
दुरजोधादिक तीनि भट पठए आयुध साजि ।।१४५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुरजोधन के सनमुखें, जयो पार्थ परवीन।
रूप्य सामही नेमिरथ, धमंज सेना तीन ॥१४६॥

अडिल

तब परस्पर सूर लगे हुंकारि कै।
करत चूर्ण गज हय रथ आयुध मारि कै॥
सूरवीर सन्नद्ध भये रन सांमही।
चले भाजि मुख मोरि सुकायर धांम ही ॥१४७॥

सूरन के तन आयुध ज्यों ज्यों वर्ष ही।
नारदादि सुरगन कर नांचत हर्ष ही॥
भनत पार्थ प्रति यौं दुरजोध हकारि कै।
कर्‌यौ भस्म मैं तोहि हुतासन जारि कै ॥१४८॥

रे निलज्ज नर गर्व वृथा ही क्या करैं।
तोहि लाज नहिं आवत सनमुख खरैं॥
यही बात सुनि अर्जुन धनु टंकोरीयौ।
प्रलय काल को मनौं घनाधन घोरीयौ ॥१४९॥

छोडि बांन संघात सुकौरव छाइयौ।
दुहुं मधि जालंधर तोलौं आइयौ॥
धनुष पार्थ को छेद्यो रण में आवतैं।
कर्‌यौ जुद्ध फुनि दुर्द्धर सरगन छावतैं ॥१५०॥

तबहिं पार्थ सौं बोल्यौं रूप्यकुमार यौं।
वृथा पक्ष अन्याय करत अविचार क्यों॥
वासुदेव पर कन्याहार कहै सही।
अरु परस्व अभिलाषी तस्कर भीवही ॥१५१॥

यह बात सुनि अर्जुन बोल्यो रे वृथा।
गर्जि गर्जि किम भाषत तूं दादुर जथा॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न्याइ और अन्याइ अबै दिखलाइ हौं।
सीस छेदि तुझ जम के गेह पठाइ हौं ॥१५२॥

यही बात कहि सरगन छोडे अर्जुनां।
कर्‌यौ रूप्य कौ छिन मैं हति के चूरनां॥
हनत विघ्र कौं जैसे श्रेयस छिनक मैं।
रूप्प खेत यौं मार्‌यौ नर नै तनक मै ॥१५३॥

जुद्ध मांहि थिर राइ जुधिस्थिर रण प्रतैं।
स्वेत अश्व करि जो जित रथ राजित अतै॥
रथारूढ रथनेमि विराजत जय करैं।
चक्र व्यूह कौं छेदि सु तीनौं जस धरैं ॥१५४॥

सकल सूर नृप सज्जन जादव बल तनैं।
भये चित आनंदित पुलकित तनठनैं॥
रुधिर नांम नृप कौ सुत सुभट सुप्रगट ही।
हिरन्यनाभ सेनानी मागध को वही ॥१५५॥

लयौ मारि सो रण मैं धमंजनैं जदा।
भयौ खिन्न तिस बध लखि रबि आंथ्यौ तदा॥
मनौं पछिमहि सागर स्नान सुकरन कौ।
गयौं सांतता कारन मगश्रम हरन कौं ॥१५६॥

दोहा

मनु सुभटन कौं मरन लखि, आई करुनां सूर।
भेज्यौ तुम यह जाइ कैं, जुद्ध कर्‌यौ तिन दूर ॥१५७॥
सकल भूप निसि कैं भये, आये निज निज थान।
सेनापति बिन चक्रपति, बोल्यौं मंत्रिहि बांनि ॥१५८॥
सेनापति के पद विषै, थपीये और अनूप।
यौं सुनि कै तव मंत्री यौं, थाप्यौ मेचक भूप ॥१५९॥
तौलौं कौरव राइ नैं, पठयौ दूत प्रवीन।
पांडव तट सौं जाइ कै, नत कर बिनती कीन ॥१६०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम सौं कौरव यौं कहत, सुनीये नाथ विचार।
अब मैं जितने दुख तुमहिं, दयं महा भयकार ॥१६१॥

तिन कौं रन मैं सुमरि कै, क्यौं नहिं आवत दोरि।
जीवत मुचौं तुमहि नहिं, छिन मैं मारौं वीर ॥१६२॥

यह सुन बोले पांडु सुत, उत्तर दैं न समर्थ।
तेरौ प्रभु उदित भयो, जमपुर जानैं अर्थ ॥१६३॥

जरासंध के साथ ही, पठवैंगे जम गेह।
सुनि कै दूत सुकौरवहि, जाइ कही सब एह ॥१६४॥

तौलौं रवि मन उदयगिरि, आयौ देखन हेत।
भोर भये तहां सुभट नट, नटन लगे कुरु खेत ॥१६५॥

मार मार करि ते उठे, धनु सर कर असि लेत।
सोवत जागि परे मनौं, सृष्टि हतन कौ प्रेत ॥१६६॥

सोरठा

सूरनि मैं सिरमौर, रथ बैठे पारथ नृपति।
महासरन की ठौर, प्रश्न करत सारथि प्रतैं ॥१६७॥

कहौ सुत तुम दछ, केतु अश्व लछिन सहित।
जे नृप नांम विपछ, तिन कौ वर्णन कीजिये ॥१६८॥

दोहरा

ऐसी सुनि कै सारथीं, निरखत अरि की सैंन।
भिन्न भिन्न लछन सहित, भाषत उत्तर वैन ॥१६९॥

रथ सोभित जिस स्यांम हय, धुजा बिराजत भाल।
सुर सरिता सुत अरनि कौं, हय आयौ मनु काल ॥१७०॥

सोण सप्त साजित सुरथ, कलस केतु यह द्रोण।
रण मैं सुभटन की धुजा, धनुर्वेद कौं भौन ॥१७१॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो धन्वी दुरजोध यह, नील अश्व अहि केतु।
अरि के शोणित पांन कौं, अति उदित मनु प्रेत ॥१७२॥
पीत अंग तुरंग रथ, यह दुःसासन राय।
लछिन जाकी केतु मैं, राजत है अन्याय ॥१७३॥
अश्वथाम यह द्रोण सुत, हरि धुजि यक्की याह।
मनु दुर्जन बन दहन कौ, महा दवानल दाह ॥१७४॥
सल्य सत्रु कौसल्य यह, सीता केतु विराज।
अम्ब वर्ण बंधूक के, यह आयौ रण काज ॥१७५॥
जाकौ रथ दुरवार अति, महाजय दृढ बीर।
लागे लोहित वर्ण हय, कोल केतु यह धीर ॥१७६॥
अल्प नृपन कौं जानियौं, अर्जुन नृप कपि केतु।
अरि केसन मुख धनुष गाई, उठ्यौ जुद्ध कै हेत ॥१७७॥

अडिल

तबहिं जुद्ध कौ लागी गज सौं गज घटा।
सूरन के कर चमकत असि चपला छटा॥
घोर गर्जनां होत धनुष टंकोर की।
बांन वृष्टि जलधारा वरसत जोर की ॥१७८॥
खेट खेट सौं जुद्ध करत आकास हीं।
भूमि भूमिचर आपसमैं तन त्रास हीं॥
खड्गपानि के सनमुख खड्ग सुपानि हीं।
धनुर्धरि कौं धनुधर मारत बान ही ॥१७९॥
कुंत कुंत तैं छेदहिं गुर्ज सुगुर्ज ही।
चक्र चक्रतैं मारि गदागद तर्ज ही॥
गजारूढ कौ गज आरूढ सुमार ही।
रथारूढ कै सनमुख रथ असवार ही ॥१८०॥
हयारूढ कौ हय आरूढ वुलावही।
पत्ति पत्ति के सनमुख सस्त्र चलावहीं॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निशित बांन के छल तैं धसि भट गातहीं।
मनौ दंत जम के नर मांसहि खातहीं ।।१८१।।

छेदि सीस भू डारत हति करवाल की।
गिलत सृष्टि कौं मानौं रसना काल की।।
परत गुर्ज की मार मनौ जम मुष्टि ही।
हतहिं कुंत करि तांत तनी मनु जष्टि ही ।।१८२।।

मनु कि नाक की लात गदा के रूप ही।
मारि मारि घमसान करे बहु भूप ही।
खड़ग खड़ग तैं लागि झरा झरी ह्वै परैं।
अरुन अग्नि के जोर फुलिंगे अनुसरैं ।।१८३।।

कुंत अग्रतैं गज के कुंभ विदारहीं।
अरुन वर्ण तहां निकसत सोणित धार ही।।
अंतरंग मनु को पानल ज्वाला जगी।
सत्रु दारु अति दारुन जारन कौं लगी ।।१८४।।

ताल पत्र सम गज के कर्ण सुहा लहीं।
शस्त्र अग्नि कौं मांनो धौंकि प्रजालही।।
हस्ति हस्ति के सनमुख धावत अति भिरैं।
प्रलय पौंनतैं पर्वत मनु लुढतें फिरैं ।।१८५।।

जुद्ध मांहि बहु वीर तुरंग अनूप हीं।
मनौ चित्त असवारन के हय रूप हीं।।
अनिल लाग तैं हालत रथ पंकति धुजा।
किधौं शत्रु के रथहि बुलावन की भुजा ।।१८६।।

उर्द्ध केस को पारुण चच्छु रूपतिहीं।
मनौ काल के किंकर गरजत मत्तही।।
घोर वीर संग्राम करत यौं पूरही।
स्वांमि कार्य पारयन अरितन चूरही ।।१८७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहरा

गंगासुत तारण विषै, पनिच चाप सौं तांन।
सनमुखहीं अभिमन्यु कै, धायौ धरि अभिमान ।।१८८।।

अडिल

तब कुमार नैं प्रथमहिं बान चलाइ कै।
धुजा भीष्म की छेदी क्रोध बढाइ कै।।
मनु महत्वता उन्नत कौरव नृपन की।
करी नास रण मांहि सु सोभा धरण की ।।१८९।।

धुजा और आरोपि सुनिज रथ कै विषै।
गंगपुत्र नैं दस सर मारे ह्वै रुषैं।।
धुजा कुमार की छेदी जब गांगेयं ही।
तब कुमार नै मारे सर बहु भये ही ।।१९०।।

रथीबाह धुज छेदे गंगा तनूज के।
नसत बज्रतैं जेम कंगुरे वुरज के।।
सकल सूर सुरवानी तब असे भनी।
बली धन्य अभिमन्यु धनुर्धर है गुनी ।।१९१।।

मनौं पार्थ यह दुजौ है साक्षात ही।
भयौ भूमि मैं सुस्थिर वर विख्यात ही।।
बांनन तैं इन नासैं सत्रु अनेक ही।
हनत नाग निर अंकुसि जिम हय भेक ही ।।१९२।।

पार्थ सारथी उत्तर नामा रण विषै।
तिन बुलाइ कै लीन्यौं भीषम सनमुखैं।।
परयौ आइ अरि तौलौं सल्य सुनाम ही।
महाघोर रण मांड्यौ उत्तर सांम ही ।।१९३।।

कुंत खडग धनू धारैं सल्य सुक्रुद्ध तैं।
हत्यौ सारथी उत्तर जुद्ध विरुद्ध तैं।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनु प्रचंड भुंजदंड सुपारथ कौ गिर्‌यौ।
सुत विराट कौ उत्तर पृथु पृथ्वी पर्‌यौ ॥१६४॥

स्वेत नाम तसु भ्राता धायौ ता समै।
लयौ सल्य ललकारि अनूज के नांसमै ॥
तिष्ठ तिष्ठ रे सल्य यहै रण ठाइ है।
अनुज बाल मो मारि कहां अब जाइ है ॥१६५॥

केतु छत्र सब शस्त्र सुता के तोडि कै।
कर्‌यौ सल्य कौं विह्वल कवचहि फोरि कै ॥
घोर मार बहु दीनी स्वेतकुमार ही।
मर्‌यौ सल्य नहिं तो भी करत सिंघार ही ॥१६६॥

भयौ क्रुद्ध गंगासुत याही अंतरै।
परयौ आइ दुहु मधि सरासन कौ धरै ॥
करत जुद्ध तिन रोक्यौ रण मैं स्वेत ही।
लयौ भीष्म भी छाइ सरन तै खेत ही ॥१६७॥

ह्वै अदृश्य रवि नभ मैं आये मेह ज्यौं।
बांन स्वेत के छाये भीषम देह त्यौं ॥
देखि भीष्म कौ विह्वल कौरव धाइयौ।
मारि मारीये याहि कहत यौ आइयौ ॥१६८॥

स्वेत सांमनैं आवत लखि दुरजोध कौं।
पार्थ ताहि ललकारि लयौ धरि क्रोध कौं ॥
कहत पार्थ रे कौरव तु कहां जातु है।
मो भुजान तैं तो मद अबहिं विलातु है ॥१६९॥
वच प्रचंड यौं भाखि दुर्जोधन रोकीयौ।
धनुष खौंचि गांडीव सु नर टंकोरीयौ ॥
हत्यौ आदि दस सरतैं कोरव ईसही।
बहुरि बीस फुनि मारैं इषु चालीसही ॥२००॥
मारि मांरि करि तीरौ अैसे छाइयौ।
तबहीं क्रोध बहु कौरवपति तैं खाइयौ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लगे पार्थ दुरजोधन दोउ जुद्ध कौं।
धरत क्रुद्ध मद उद्ध बढाइ विरुद्ध कौं ॥२०१॥

खडग खडग तैं झारत कुंत सुकुंत ही।
बान बान तैं छेदत धनुष धुनंत ही ॥
दंड दंड सौं खंडत प्रति बल बंड ही।
घोर वीर संग्राम मंड्यौ परचंड ही ॥२०२॥

नृप विराट कै नंदन तौलौं रण विषै।
करत जुद्ध धरि क्रुद्ध पितामह सनमुखैं ॥
चाप छत्र धुज छेदी भीषम के तहां।
हत्यौ घात फुनि तास उरस्थल मैं महा ॥२०३॥

सिथल होइ कै गिरन लग्यौ तन भार हीं।
कौंरव सैन भयौ तव हा हा कार हीं ॥
भयौ दिव्य धुनि तबहिं सुरन की गगन तैं।
अहो भीष्म मत होउ सु काइर लरन तैं ॥२०४॥

अहो वीर रन माहि सजि कै धीरता।
तोहि मारनैं वैरी तजि कैं भीरुता ॥
यही बात सुनि फुनि थिर आयुध होइ कै।
सावधान ह्वै रथ पै धनु संजोइ कै ॥२०५॥

सांधि लछि सर छाडि सुमार्‌यौ स्वेत ही।
खाइ घाव दृढ सो जु पर्‌यौ रन खेत ही ॥
सुमरि पंच पद इष्ट गयौ सुरलोक सौ।
लहत सर्व सुख सुमिरत जिन तजि सोक सौ ॥२०६॥

दोहरा

तौलौं भई निसीथिनी, भरत लखे जोधार।
मानौं रण कौं वर्जती, आई करुणा सार ॥२०७॥
सूर छिपै हरि आदि सब, आये निज निज थान।
सुत कौ बध वैराट सुनि, रुदन भयो दुख खानि ॥२०८॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हा सुत संगर कै विषै, किन हु न राख्यौ तोहि।
हा धरमातम धर्मसुत, क्यौं न रख्यौ तुम सोहि ॥२०६॥

भीम मूर्ति हा भीम भट, हा हा अर्जुन राइ।
तुम देखत क्यौं सत्रु नैं, मार्यौ मो सुत ठाइ ॥२१०॥

तब जुधिस्थिर राइ न, करी प्रतिग्या घोर।
सत्रहमें दिन आज तैं, हति हौं सल्यहि ठौर ॥२११॥

जो नहिं मरै तौ तबैं, झंपा पातहिं मंडि।
सब के निरखत मांन तजि, जरौं अगनि के कुंड ॥२१२॥

खंडक सत्रु सिखंडियौं, बोल्यौ वचन प्रचंड।
नवमें बासर आज तैं, करौ भीष्म के खंड ॥२१३॥

यही प्रतिज्ञा हम करी, पूरन ह्वै जो नांहि।
अपने तन को होम तौ, करौ हुतासन मांहि ॥२१४॥

धृष्टद्युम्न फुनि यौं कही, मो निहचै यह ठीक।
सेनांनी कौ मारि हौं, यामैं नांहि अलीक ॥२१५॥

सोरठा

उदय भयौ दिन साज, तौलौं दिनकर हरत तम।
मनु देखन के काज, कारज भारत भटन कौं ॥२१६॥
लखे ग्रहत हथियार, मार मार करतें सुनें।
भयौ सूर भय भार, तातैं कंपत ऊदयौ ॥२१७॥

अडिल

भये भोर तब जोधा दोऊ और के।
महा जुद्ध आरंभत धाये धोरि कै ॥
तीछन शस्त्र सौं देह परस्पर खंड ही।
हस्ति हस्ति औं रथ रथ हय हय प्रचंड ही ॥२१८॥
पत्ति पत्ति कै सनमुख धावत जुद्ध कौं।
मारि मारि मुख भाखि बढावत क्रुद्ध कौं ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लछिन तैं पहिचानि भटन के सनमुखैं।
चले धाइ रण मांहि धनंजय ह्वै रुखैं ॥२१९॥
मनौं केसरी मत्त गयंदन कौं हतै।
भूपन कौं त्यौं अर्जुन हति कै जय रतै ॥
घोर वीर रण मांहि पितामह धाइयो।
असंख्यात सर तैं नर कौं तिन छाइयो ॥१२०॥
इन्द्र पुत्र सरि धारा भीषम कूंलहीं।
और राइ ठहराइन ज्यौं तृन पूल हीं ॥
वानन तैं सुर सरिता सुत नैं नभ छंयो।
मनो मेघ जल बरषन कौं उदित भयो ॥२२१॥
अंधकार भू मांहि कर्यौ सर छाइ कै।
करत राति मनु दिन तैं सूर छिपाइ कै ॥
करे पार्थनैं ते सब निरफल छिन, विषैं।
करत जुद्ध बहु धीरज धरि कै सतमुखें ॥२२२॥
छुटत पार्थ के बान महा परचंड ही।
करत खंड बल चंड गजन की सुंड ही ॥
चरन हीन हय कीने उन्नत छेदि कै।
करत चूर रथ चक्र सर्नं तैं भेदि कै ॥२२३॥
कवच चूर करि सूरन के सर फोरि कै।
मर्मथान अति नर्मं सुधर्सहिंतु जोरि कै ॥
सकल पार्थं नैं छेदे धनू गांडीव तैं।
मरे भूरि भट रण मैं छुटिं कै जीव तैं ॥२२४॥

सवैया २३

बसि कै निंषंग वास बैसि कै सरासन पै।
सर ही के रूप ह्वै अकास मैं उडतु है ॥
तीछन है भाल चुंच सर को कठोर कंठ।
पीछै पर लाइ कै पनिच सो छुटतु है ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परत हैं छुत होइ सुरन के तननिपै।
अमिष के खान हार हिंसा ही करतु है॥
ऐसे वान अर्जुन के जम के सिचान किधौं।
जिन्हें जाइ दावैं ते सासन भरतु है॥२२५॥

दोहा

इहि विधि सर अर्जुन तनैं, छुटत लखे दुरजोध।
भीषम कौ निदंत तवै, बोल्यौ धारत क्रोध॥२२६॥

तात तात तुम रण विषै, यह आरंभ्यौ केम।
हार होत निज सैन की, जीतत दुर्जन जेम॥२२७॥

रहि न शकैं रण मैं जथा, यह पारथ दुखदाइ।
अहों पितामह सो करौ, जिहिं विधि शत्रु नसाइ॥२२८॥

अरि आये रण सनमुखे, को भट ह्वै निहचंत।
तातै बांन प्रचंड तजि, हतै शत्रु कौ संत॥२२९॥

अडिल्ल

यही बात सुनि गंगासुत पारथ प्रतैं।
भयो जुद्ध कौ उद्दित ह्वै छोभित अतैं॥
तवहि इन्द्र सुत वोल्यौ सुनि भीष्मपिता।
ह्वैह देस यह सून्य सवै तूसो सौं रिता॥२३०॥
जमागार कौं तोहि तथापि पठाइ हौ।
अवहिं मारि जम की पहुनेर कराइ हौ॥
वच कठोर कहि असें लागैं जुद्ध कौं।
होत निर्दई भिरत वढाइ विरुद्ध कौ॥२३१॥
तव हि द्रोण रण मांहि धनुप चढाइ कैं।
धृष्टद्युम्न के सनमुख आयौ धाइ कै॥
छुरक बान तैं गुरु नैं रथ ध्रुज छेदए।
वहुरि धृष्टि नै छत्र धुजा तिस भेदए॥२३२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक्ति बान तब छोडयो गुरु नैं तुरित ही ।
धृष्टिद्युम्न नैं छिन मैं छेद्यो परत ही ।।
तीछन बुधि धृष्टार्जुन गुरु पैं धाइ कै ।
लोह दंड की मारी जोर थगाइ कैं ।।२३३।।

तीछन बांन तैं गुरु नैं तब ही छेदि कै ।
खंड खंड करि डार्‌यौ छिन में भेदि कैं ।।
तबहि द्रोण गुरु ढाल लई कर बाह नैं ।
पकरि खडग कौ धायो हाथ सु दाह नें ।।२३४।।

धृष्टद्युम्न कौं मारन सनमुख ही चल्यौ ।
मनो ऋुद्ध ह्वैं काल विदारन कौ चल्यौ ।।
इसी अंतरै भीम गदा ते हस्त हीं ।
सुत कलिंग को मार्‌यौ करि कै पस्त हीं ।।२३५।।

नीतवंत बहु उन्नत पुत्र कलिंग कौं ।
पर्‌यौ शीश मनु कौरव दल चतुरंग कौं ।।
करे भीम संत्रासित कौरव नृपत हीं ।
धरत रोस रण मांहि सु अरिगन दलत हीं ।।२३६।।

गदा घात तैं सात सतक रथ चूरए ।
सत्रु सैंनि संधारि मही में पूरए ।।
इक हजार हति हाथी कीनें छय सही ।
घोर वीर रण उद्धत पावनि जय लही ।।२३७।।
इसी अंतरै गुरु नैं तर्‌हि कुठार ज्यौं ।
खडग धृष्टि कौ खेद्यौ तीछन धार त्यौं ।।
जुद्ध माझ अभिमनु सु तोलौ आइ कै ।
टूकि टूकि रथ कीन्यौं गुरु कौं धाइ कै ।।२३८।।
तर्बहि आइ कै पोहुच्यौं सुत दुरजोध कौं ।
नाम सुलखमण सु मानौं पुंजक रोध कों ।।
आवत हीं तिन धनूष सुभद्रा सूनु कौं ।
खंड़ खंड करि ढार्‌यौं मानो ऊन कौं ।।२३९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और चाप अभिमन्यु सूलै तब धाइयौ।
छिनक मांहि अरि कौं दल सकल भगाइयौ ।।
तबहि सत्रु तब इकठें ह्वै अति ही रुषैं।
पार्थ पुत्र कौं वेढि लयौ रण के विषैं ।।२४०।।

पार्थपुत्र पंचानन समयौं हेरियौं।
मनौ सिंघ कौ मत्त गजौ मिलि घेरियो ।।
तबहि आइ कै अर्जुन धनु गांडीव तैं।
सकल पुत्र के सत्रु विनासे जीव तैं ।।२४१।।

नसत मेघ के संचय जैसे पवन तैं।
उडत सत्रु गन तैसे नर कें सरन तैं ।।
जुद्ध मांहि जिहि ठौर धसत पारथ वली।
तिसी ठौर परि जांहि अरिन कौ हल चली ।।२४२।।

दोहरा

इहि विधि जोधा जुद्ध मैं, नित प्रति करतै जुद्ध।
जब आयो दिन नवम तब, भयौ सिखंडी क्रुद्ध ।।२४३।।
लीनो गुरु गांगेय कौ, निज सनमुख ललकार।
तब सिखंडि प्रति पार्थ यौं, बोले वचन विचारि ।।२४४।।
हे शिखंडि अरि हतन कौं, सर प्रचंड यह लेहु।
जा सरसूं हम पूरवैं, जार्यौ खंड बने हु ।।२४५।।
तब सिखंडी वल चंड नैं, लीन्यौ तब वह वान।
अरि मृग खंडन कौ महा, धायौ सिंघ समान ।।२४६।।

अडिल

करत खंड अरि सैन सिखंडी भूप ही।
उठ्यौ जुद्ध को क्रुधित जम के रूप ही ।।
द्रुपद पुत्र गंगासुत लरहिं परस्परैं।
दुहुं मधि नहिं एकहिं जय कौ अनुशरैं ।।२४७।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुगम सिंघ मनु जुद्ध करत वन कैं विषै।
धन्न धन्न धुनि गगन सुरा सुरगन अखैं ।।
धृष्टद्युम्न नैं आइ सिखंडी झोरीयौ।
भो सिखंडि हम देख्यौ जोर न तुम कीयौ ।।२४८।।

जुद्ध मांहि गंगा सुत अवलौं ह्वै रुषैं।
घन समान अति गरजति है तौ सनमुखैं ।।
फुनि सुतास कौ रथ भी दिढ खहरात है।
अरु उतंग अति ताल धुजा फहरात है ।।२४९।।

और पार्थ भी पूरत है तौ पृष्टि कौ।
फुनि सहाइ बैराट करत तुम इष्ट कौं ।।
यही बात सुनि राइ सिखंडी धोरीयौ।
पनिच खैंचि आकरनहिं धनु टंकोरीयौ ।।२५०।।

द्रुपद पुत्र नैं गंगासुत के तन विषै।
सहस एक सर सांधि हते आते ह्वै रुषैं ।।
मेघ ऊर्ध ज्यौं छावत मंडल गगन ही।
लयौ छाइ गंगासुत तैंसे शरन ही ।।२५१।।

कौरव को बल तौलों करि संधान ही।
द्रुपद पुत्र पैं छोडन लाग्यो बांन ही ।।
सत्रुन के सर ताके तन नहि लगत ही।
मनु सिखंडि तैं नासैं ह्वै भयवंत ही ।।२५२।।
धृष्टद्युम्न के कर तैं छूटत बान जें।
लगत सत्रु के उर मैं वज्र समान तें ।।
गंगपुत्र के सर जे छूटत तीछना।
ते प्रसून ह्वैं जाहि सिखंडी के तना ।।२५३।।
होंहि दुख्य सुख रूप सु पूरव पुन्य तैं।
सुख्य दुख्य ह्वैं परनैं सकल अपुण्य तैं ।।
गंगपुत्र धनु जो जो धारत कर विषै।
धृष्टद्युम्न तिस छेदत सरतैं ह्वै रुषैं ।।२५४।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छीन पुन्य नर हारत सब की साखि हीं ।
पुत्र मित्र अरु भ्राता कोइन राख हीं ।।
गंगपुत्र कौ कवच सिखंडी नैं तहां ।
तीछन बांन करि हठतैं भेद्यौ दिढ महा ।।२५५।।

मेघ धारतैं जैसें तरु वरषा समैं ।
परै टूटि ह्वै छीन सुथिरता नहि पमैं ।।
बांन वृष्टि तें तैसे कवच सु फूटि कै ।
परयौ भीष्म कौ रन मैं तन सौ छूटि कै ।।२५६।।

फुनि सिखंडी नैं तीक्षन सरगन छोडए ।
हते अश्व जुग सारथि रथ धुज तोडए ।।
अति अकंप रथ रहित सु गंगासुत रह्यौ ।
कर कृपांन करि अरि के हतिवे कौं चल्यौं ।।२५७।।

द्रुपद पुत्र नै तबहि तीछन सरन तैं ।
खडग छीन करि डार्‌यौ अरि कै करन तैं ।।
छुरक बाँन तैं हृदय बिदार्‌यौ लीन है ।
पर्‌यौ भूमि परि तवहि पितामह छीन है ।।२५८।।

दोहरा

कंठ प्रान तब जानि कै, लीन्यौं सुभ सन्यास ।
धर्म ध्यान हिरदैं गह्यौं, धर्‌यौं धीर्य गुनरास ।।२५९।।
अनुप्रेक्षा चित राखि कै, सुमरि पंच पद इष्ट ।
तन भोजन ममता तजी, गहि सल्लेखन सिष्ट ।।२६०।।
तबहीं रन तजि सकल नृप, आइ ठए तिहितीर ।
पांडव तिस पद नमन करि, रुदन करत इम वीर ।।२६१।।
ब्रह्मचरज आजन्म तुम, अति उन्नत व्रतपाल ।
अहो पितामह पूज्यमह, सकल गुनन की माल ।।२६२।।
धर्म तनुज तब यौं कहत, भो उत्तम व्रतधार ।
हम को क्यों नहि मृत्य अब, आई दुख दातार ।।२६३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सर जर्जर भीषम कहत, कौरव पांडव सौजु।
अभयदान तुम देहु तुम, सबही जीवन कौजु ।।२६४।।

करौ परस्पर मित्रता, तजो सत्रुता चित्त।
अब लौं क्या ऐसे भये, तुम निहचै नहि फित्ति ।।२६५।।

जे केई रन मैं मरै, गये निंद गति सोइ।
तातैं कीजो धर्म अब, दस लक्षण अब लोइ ।।२६६।।

यां अंतर चारन जुगल, आए नभ तैं संत।
शुद्ध चित्त उत्तिम तपा, महा मुनीन्द्र गुनवंत ।।२६७।।

निकट जाइ कै भीष्म के, बोले वचन गंभीर।
तो समान पृथिवी विषै, और नहीं महाबीर ।।२६८।।

काम मल्ल को जो सुभट, करत चित सौ चूर।
ता सम जग मैं और नहिं, सूरन मैं महसूर ।।२६९।।

सवैया २३

भृकुटी कमांन तांन तीछन मदन बांन
कामी नर उर थांन मारै जांन छिन मैं
जोषित विरुद्ध जुद्ध नैनन सौं ठानैं इम
ता मैं ठहराइ सुर सोई सूरगन मैं
बांधि बांधि आयुध कौं धारैं उर धीरपन
सांधि सांधि साइक जे डारैं अरितन मैं
नदलाल सुनु भनैं एतो सूर सूरनांहि
धाइ धाइ लरै जोर जोपै घोर रन मैं ।।२७०।।

दोहरा

असी सुनि गांगेय भट, जुग मुनि के पग द्वंद।
नति करि कैं बोल्यौ गिरा, गुन ग्यायक गुनवृंद ।।२७१।।

जो भगवन भव वन भ्रमत, मैं न लह्यौ नृष पर्म।
कहा करौं या ठौर अब, किहि विधि ह्वै शिव सर्म ।।२७२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वांनन सौ हौं छिन्न ह्वै, मर्यौ सरन तुम आइ।
तुम प्रसाद या भव विषैं, लहि हौ फल सुखदाइ ।।२७३।।

यौं सुनि करि बोले मुनी, सुनौह भव्य गांगेय।
सिद्धन कौ चित सुमिरि कैं, नमन करो बहु भेय ।।२७४।।

पाद्धडी छंद

सुभ चारि आराधन चित आराधि।
धरु धीरय वीर्य तन वचन साधि ।।
वर तत्व अरथ श्रद्धान रूप।
यह दर्श आराधन लहि अनूप ।।२७५।।

नव पदार्थ जहाँ ज्ञान होइ।
नय प्रमान निज उक्ति जोइ ।।
तहां ज्ञान आराधन होई सछ।
फुनि निहचै आतम ध्यान तछ ।।२७६।।

चरीए सुचरण जहां विधि विचार।
तेरह प्रकार अघहार टार शार ।।
खलु प्रवृत्त चिद्रूप मद्धि।
चारित्र आराधन एहु विधि ।।२७७।।

द्वादश सरूप विवहार बुद्ध, चिद्रूप रूप निहचय विशुद्ध।
तप नाग अराधन एम राइ, चित धारि आराधो सुगतिदाइ ।।२७८।।
तपीए जुदेह तप जुगम भाँति, सुभ संजम मय गुन मूल पांति।
अनशन प्रमुख तप बाह्य जानि, रागादि त्याग अंतर सुमांनि ।।२७९।।
विधि अराधन इम प्रकाशि, मुनि चारन कीनीं गति आकासि।
गुणवंत संत गांगेय सार, चारौ सु अराधन हृदय धारि ।।२८०।।
त्यागौ ममत्त आहार देह, छिम भाव सबन सौं धारि एह।
पद पंच इष्ट चित जपत धीर, सुभ ध्यान धरत तजि असु शरीर ।।२८१।।
उपज्यौ सुजाइ दिवि ब्रह्म मद्धि, वर ब्रह्मदेव लहि परम रिद्धि।
मनवंछित सुख भुगतैं सुभोग, सुख होत सहज जिन धर्म जोग ।।२८२।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहां पांडव कौरव रुदन ठाँमि, बहु सोच करत जग सुन्य मांनि ।
दुख मांहि एम वीती सुरात, रवि आइ बहुरि कीन्यौं प्रभात ।।२८३।।
इहि भांति जीव संसार माँहि, नित काल भ्रमत थिर ह्वौत नाहि ।
लछिमी सुचपल चपला समान, संध्या प्रभासम आयु जान ।।२८४।।
सुत बंधु सुखादिक छिनक भंग, इम जानि रहौ नित धर्म संग ।
बर वुद्धि गंतसुत ब्रह्मचार, सुखरिद्धि धार सुर सदन सार ।।२८५।।
फुनि पछ छीन कौरव कुराइ, बल हीन दीन ह्वै रुदन भाइ ।
अरु धर्म तनुज जयवंत संत, जग मांहि प्रगट जस नीतिवंत ।।२८६।।
कृत पूर्व धर्म सुभ सर्म दाइ, विन धर्म परम दुख भरम पाइ ।
जिन धर्म समान न और रत्न, जैनी सदीव सुनि धरत जत्न ।।२८७।।

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामांकितायां भारतभाषायां बुलाकीदास विरचितायां गांगेय संन्यास ग्रहण पंचत्व प्राप्ति पंचम स्वर्ग गमन वर्णनो नाम विंशतिम प्रभवः ।

× × × × × × ×

पुराण का अन्तिम भाग

अथ नेमिनाथ स्तुति

सवैया

धरम के धुरंधर सुनेमि नेमि नेमीसुर, दोष द्रुम दाहन कौं दावानल रूप है ।
काम बेलि मंडप कौं कंदन कुदाल दंड, मंडित अखंड सील पंडित अनूप है ।।
मोष मग मंडन हौ रोष के विहंडन हौ, वैन अवलंबन दे तारक भौं कूप हौ ।
कीजे उपगार भवसागर कौ पार अब, दीजे सुविचार प्रभू चारित के भूप हौ ।।८०।।

पद्धडी छंद

ग्रन्थ प्रशस्ति

कहां पांडव चरित विसाल चारु, श्री गौतमादिक भाषित सुसारु ।
कहाँ मो प्रबोध यह अलप छीन, बलहीन तदपि वरनन सुकीन ।।८१।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिम बाल ग्रहण उडगन करोति, जलसिंधु प्रमांनत भेक पोति ।
तिम ग्रंथ कर्‌यौ निज बुद्धि जोग, नहिं दोष ग्रहत बर दक्ष लोग ।।८२।।

जे नर असंत पर दोष संच, तिन संग न हमकौं काज रंच ।
विष मय पियूष ते नरक रांहि, लहि पाप महा मरि नरक जांहि ।।८३।।

जे साधु महा पर कज्ज रक्ष, पर जद्यपि देषहि दोष सच्छ ।
नहि धारहिं तदपि विकारि भाव, ते होउ महाजस इम सहाउ ।।८४।।

जिम चंद सरद उडवंस बीच, अति सोभ करत दै निज मरीच ।
पर गुन समूह तिम संत देषि, निरदोष करत उपमां विसेषि ।।८५।।

राचि कैं विचित्र पावन पुरान, नहिं वंछौं नर सुर सुष निधांन ।
इस भक्ति तनौं फल होहु एहु, पद मुक्ति परम सुब रास देहु ।।८६।।

पुनरुक्ति जुक्त लछन सुछंद, जहाँ भूल्यौ वरनत वर्ण बिंदु ।
तहाँ सोधि पढौ जे बुध आनिंद, नहि निंद करत ते सुगुन वृंद ।।८६।।

अलंकार गनागन छंद भेद, नहिं जानौं रंचक अलप षेद ।
कछु भूलि देषि इस ग्रंथ मद्धि, मति कोप करौ कवि विपुल बुद्धि ।।८८।।

अथ मूल आचार्य

सवैया

संगन ले मूलसंगी पद्मनंदि नाम भए ताके, पट्ट सकलादिकीरत बषानियें ।
कीरति भुवन तातैं ताकैं भए चंदसूर रि, कीरति विजय सुतास पट्ट परवानीयें ।।
ताके पट्ट सुभचंद सुजस अनंद कंद, पांडव पुरांन परकास कर मानीये ।
मति कौ उदोत तास पाइ कैं बुलाकीदास, भारतविलास रास भाषा करि जानिये ।।८९।।

अथ बादशाहि वंस वर्णन

सवैया

वंस मुगलानें मांहि दिल्ली पति पातिसाहि, तिमिरलिंग मीर सुत बाबर सुभयो है ।
ताकौ है हिमाऊं सुत ताही तैं अकब्बर है, जहाँगीर ताकै धीर साहिजहाँ ठयौ है ।।
ताजमहल अंगनां अगज उतंग महाबली, अवरंग साहि साहित ले जयौ है ।
ताकी छत्र छांह पाइ सुमति के उदैं आइ भारत राइ भाषा जैनी जस लयो है ।।९०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अथ ग्रंथकार आशीर्वाद

सवैया

जौंलौं रहैं तारागन सदन सुरईस को सागर, सुभूमि रहै रहै दुति भान की ।
भूमिवासी भौंनवासी गिरि गिरि ईस वासी, बसै सिर जोति जौंलों ससि के विमान की ।।
गंगा आदि नदीनद कर्म भूमि कल्पतरु है, आन जौंलौं जग वीतराग ग्यांन की ।
भारत सुषेत माँहि तौंलौं सुविकास लहौ, भारत विलास भाषा पांडव पुरान की ।।९१।।

अथ ग्रन्थ पाठक आशीर्वाद

जे नर भव्य भनाइ भनैं भनि भावन सौं यह भारत भाषा ।
आदर धारि लिषाइ लिखैं लिषि देहि सुनाइ सुनैं सुनि भाषा ।।
सोधि सुधारि सुधारिहिं सत्य सुधारस के बुध चाषा ।
ते नरिंद महापद पावहु ह्वै है तिनकी सिव के अभिलाषा ।।९२।।

अथ सरस्वती स्तुति ।।दोहा।।

जिन बदनीं सदनी सुमति, अवसरनीं शिव सीउ ।
जस जननीं जैंनी भनीं, हरनीं कुमति सदीउ ।।९३।।

सवैया

वीरानन सरनीं हरनी दुष दोषन की भरनी रस अनुभौं दैनी शिव मानी है ।
गोतम गुरु वरनीं रमनीं है चेतन की कुमति की करनी पैनी परवानी है ।।
दुरित तैं उधरनी धरनींधर धर्म की तरनी भौसागर की छैनी मैं हानी है ।
सुमति सूर किरनी रजनी रजनीकर बदनी हमारी जग जैनी सुषदानी है ।।९४।।

दोहा

इहि विधि भाषा भारती, सुनीं जिनुल दे माइ ।
धन्य धन्य सुत सौं कही, धर्म सनेह बढाई ।।९५।।
जननि जिनुल दे धन्य है, जिन रचाइ सु पुरान ।
सुगम कर्‌यो भाषा मई, समझैं सकल सुजान ।।९६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अरु नर तन गुरु धन्य है, जाके वचन प्रभाव ।
संस्कृत तैं भाषा रच्यौ, पाइ सबद अरथाव ।।९७।।
वीरनाथ जिन धन्य हैं, जाके चरन प्रसाद ।
यह पुरान पूरन भयौं, सुषदाइक शिव आदि ।।९८।।

अथ ग्रंथ छंद प्रमाण कथन ।।सवैया ।

छप्पे एक करखे अठारै इकतीसे वीस चालीसरु एक सोरठे पर मानिये ।
छयालीस तेईसो पाद्धडी पचीसी गनिव्वैही भुजंग छंद जैनी जग जानिये ।।
तीनसै तिरासीडिल्ल नौसैतीस दोहा भनि ढाईसैं सतानवै सु चौपाई बषानिये ।
सारे इक ठौर करि ठानिये बुलाकीदास एकादश पंचसै हजार चार आनिये ।।९९।।

अथ श्लोक संख्या कथन—दोहा

संष्या श्लोक अनुष्टपी, गनिये ग्रन्थ लषाइ ।
सप्त सहश्र षट सतक फुनि, पचपन अधिक मिलाइ ।।१००।।

अथ संवत मितो—दोहा

संवत सतरहसौ चउन, सुदि असाढ़ तिथि दोज ।
पुष्प रिक्ष गुरुवार कौं, कीन्यौं भारत चोज ।।१०१।।

इति श्रीमन्महाशीलाभरणभूषित जैनी नामांकितायां भारत भाषायां लाला बुलाकीदास विरचितायां पांडवोपसर्गसहन त्रयकेवलोत्पत्ति सिद्धिगमन द्वय सर्वार्थं सिद्धि प्राप्ति वर्णनोनाममद्धि षट्विशतितमः प्रभावः ।।२६।।

इति श्री बुलाकीदास कृत भाषा पांडवपुराण महाभारत नाम सम्पूर्णम् ।।

मिती श्रावणमासे कृष्णपक्षे तिथौ १४ वार दीतवार सम्वत् १९०५ का दसकत नाथुलाल पांडया का । लिषो गयो बड़े मंदिर वास्तै ।।

卐

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेमराज

कविवर हेमराज इस पुष्प के तीसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। समय की दृष्टि से हेमराज बुलाखीचन्द एवं बुलाकीदास दोनों ही कवियों से पूर्व कालिक हैं। मिश्रबन्धु विनोद ने इनका समय संवत् १६६० से प्रारम्भ किया है लेकिन उसका कोई आधार नहीं दिया। इन्होंने हेमराज एवं पाण्डे हेमराज के नाम से दो कवियों का अलग २ उल्लेख किया है। हेमराज की रचनाओं के नामों में नयचक्र, भक्तामर भाषा एवं पंचाशिका वचनिका के नाम दिये हैं तथा पाण्डे हेमराज के ग्रन्थों में प्रवचनसार टीका, पंचास्तिकाय टीका, भक्तामर भाषा, गोम्मटसार भाषा, नयचक्र वचनिका एवं सितपट चौरासी बोल, ग्रन्थों के नाम दिये हैं। इन ग्रन्थों का विवरण देते हुये लिखा है कि ये रूपचन्द्र के शिष्य थे तथा गद्य हिन्दी के अच्छे लेखक थे। नयचन्द्र भाषा एवं भक्तामर भाषा के नाम दोनों में समान है।

डा० कामताप्रसाद जी ने अपने "हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास" में हेमराज की प्रवचनसार टीका, पञ्चास्तिकाय टीका एवं भक्तामर भाषा इन तीन कृतियों का ही उल्लेख किया है।[3] इसी पुस्तक के आगे हेमराज के नाम से ही गोम्मटसार एवं नयचक्र वचनिका का नामोलेल्ख किया है। डा० नेमीचन्द्र शास्त्री ने हेम कवि की केवल एक कृति छन्दमालिका (सं० १७०६) का ही उल्लेख किया है।[4] डा० प्रेमसागर जैन ने हेमराज[5] का रचना समय विक्रम संवत् १७०३ से १७३०

---

१. मिश्रबन्धु विनोद — पृष्ठ संख्या २५२ (४३५)
२. वही „ २७६ (५१३/१)
३. हिन्दी जैन साहित्य का संक्षिप्त इतिहास – पृष्ठ सं. १३१
४. हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन – पृष्ठ सं. २३८
५. हिन्दी भक्ति काव्य और जैन कवि – पृष्ठ सं. २१४-१९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक का दिया है। इसके साथ ही प्रवचनसार भाषा टीका, परमात्मप्रकाश, गोम्मटसार कर्मकांड, पंचास्तिकाय भाषा, नयचक्र भाषा टीका, प्रवचनसार (पद्य) सितपट चौरासी बोल, भक्तामर भाषा, हितोपदेशबावनी, उपदेश दोहा शतक एवं गुरु पूजा का उल्लेख किया है।

राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारों में, पाण्डे हेमराज, हेमराज साह, हेमराज एवं मुनि हेमराज के नाम से अब तक २० से भी अधिक कृतियों की पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हुई हैं। लेकिन नाम साम्य की दृष्टि से सभी कृतियों को आगरा निवासी पाण्डे हेमराज की कृतियाँ मान ली गयी। इस दृष्टि से पं. परमानन्द जी शास्त्री ने अनेकान्त देहली में प्रकाशित अपने एक लेख "हेमराज नाम के दो विद्वान्" में इस भूल की ओर विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया क्योंकि इसके पूर्व पं. नाथूरामजी प्रेमी, डा. कामताप्रसाद जी आदि सभी विद्वान् एक ही हेमराज कवि मानने लगे थे।

अभी जब मैंने अकादमी के छट्ठे भाग के लिये हेमराज की कृतियों का संकलन किया तथा पंडित परमानन्द जी एवं अन्य विद्वानों द्वारा लिखित सामग्री का अध्ययन किया तो मुझे भी अपनी भूल मालूम हुई क्योंकि राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूचियों में सभी रचनाओं को एक ही हेमराज के नाम से अंकित कर दिया गया। वास्तव में एक ही युग में हेमराज नाम के एक से अधिक विद्वान् हुये और उन सभी ने साहित्य निर्माण में अपना योग दिया। १७वीं एवं १८वीं शताब्दि में हिन्दी जैन कवियों के लिये आगरा एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा जहाँ पचासों जैन कवियों ने हिन्दी में सैकड़ों रचनाओं को निबद्ध करने का गौरव प्राप्त किया।

हेमराज नाम वाले चार कवि

हमारी खोज एवं शोध के अनुसार हेमराज नाम के चार कवि हो गये हैं जिन्होंने हेमराज नाम से ही काव्य रचना की थी। इन चारों हेमराजों के नाम निम्न प्रकार है—

१. मुनि हेमराज
२. पाण्डे हेमराज
३. साह हेमराज
४ हेमराज गोदीका

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन कवियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

१. मुनि हेमराज

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में "हितोपदेश बावनी" की एक पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है। जिसके रचियता कवि हेमराज है और जिन्होंने अपने नाम के पूर्व मुनि शब्द लिखा है। ये हेमराज कौन से मुनि थे इसके सम्बन्ध में बावनी में कोई सामग्री नहीं मिलती। लेकिन ये मुनि हेमराज बनारसीदास के अग्रज थे क्योंकि इन्होंने बावनी की रचना संवत् १६६५ में समाप्त की थी। जिसका उल्लेख उन्होंने बावनी के अन्तिम पद्य में किया है—

हरष भयो मुज आज काज सार्‌या मन वांछित।
मुनि साहिब मिल संग्राम नाम सहु जग मैं छति।
तस सीस पभणी एह बावन्नी सुखदाई।
एह पुहवीय रस षट् पंच एह संवत मइ गाइय।
प्रगट्यो गुन ए जां लगै ध्रु व मेर धरणी धरण।
मुनि हेमराज इम उच्चरै सुप्रणत सुनत मंगल करण ।।५५।।

बावनी में ५२ के स्थान पर ५५ छन्द हैं। जो अन्तिम दो पद्यों के अतिरिक्त सभी सवैया छन्दों में निबद्ध है बावनी का हितोपदेश बावनी के अतिरिक्त अक्षर बावनी नाम भी दिया हुआ है क्योंकि स्वर और व्यञ्जन के आधार इसके सवैय्ये लिखे गये हैं। बावनी के प्रथम दो पद्यों में कवि ने मंगलाचरण एवं अपनी लघुता प्रगट की है—

ऊँकार रहित कार सार संसारह जाण्यो।
ऊँकार विस्तार सार मंत्रहि मान्यो।
ऊँकार वरवान ज्ञान पणि गुरु पंइ सिख्यो।
सह गुरु तणै प्रसाद आदि ए अक्षर लिख्यो।
मन मतिबोधस आपणूं करि ससविया बावन्न।
भविक जन तुमे सांभले, ध्यानि धरी एक मन्न ।।१।।

नवि जांणै व्याकर्णं तर्क संगीत रसाला।
भरह पींगल गुण गीत नवि जाणुं नाममाला।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छंद कोस निरघंट अतिहिवें भेव न जाणूं ।
अल्प बुधि गुरु ज्ञान, जाण कहो केय बखाणूं ।
शिव देवी पय लगीहुं, देज्यो बुद्धि प्रकास ।
रसिक पुरुष मन रंजना, करि ससिविया उल्लास ।।२।।

इसके आगे तीन सवैय्या छन्द बिना अकारादिक क्रम के हैं तथा पांचवे पद्य से स्वर और व्यञ्जन के क्रम से हैं। पूरी बावनी उपदेश परक है तथा पौराणिक उदाहरणों के द्वारा अपनी बात प्रस्तुत की गयी है। एक पद्य देखिये—

आदि को कारणहार प्रभु राखि आदि रे।
भूलो रे गमार तुंही नर भव खोयो युंही।
प्रभु विणा दीयें कुण कहै धुं तोरि दावि रे।
काम कुं आतुर भयो पापसुं जमा सरो।
गयो पडसी निगोद मांहि बुंबन फरादि रे।
सोचि कछु जीव माहें जीत कें हारि जाइं।
एक बिना भगवंत सर्व काम वादि रे।।

हेमराजि भणइं मुनि सुणौ सजन जन मेरो उमग्यों है जिन गुण गायवो ।।७।।

हितोपदेश बावनी की एक पांडुलिपि जयपुर के दि० जैन मन्दिर बड़ा तेरहपंथियों के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। कृति की लेखक प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

इति हितोपदेश बावन्नी हेमराजि कृत संपूर्णम् । सविया संपूर्णम् । संवत् १७५७ वर्षे मिती वैशाख सुदि ११ दिने गुरुवासरे लेखयोस्तु ।

उक्त पांडुलिपि पं० विनोदकुमार द्वारा रूपनगर में बहुजी श्री यशरूपदे जी वाचनार्थं लिखी गयी थी। प्रति में १२ पत्र हैं तथा दशा सामान्य है।

पाण्डे हेमराज

पाण्डे हेमराज इस पुष्प के तीसरे कवि हैं जिनका यहाँ परिचय दिया जा रहा है। ये १७वीं शताब्दि के अपने समय के प्रसिद्ध कवि एवं पंडित थे। साहित्य सेवा ही इनके जीवन का प्रमुख धर्म था। ये दृढ़ श्रद्धानी श्रावक थे इसलिये अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुत्री जैनी को भी इन्होंने धर्म अच्छी शिक्षा दी थी। बुलाकीदास कवि इन्हीं जैनी/जैनुलदे के सुयोग्य पुत्र थे जिनके प्रश्नोत्तर श्रावकाचार एवं पाण्डवपुराण का परिचय दिया जा चुका है।

हेमराज आगरा के निवासी थे। ये दिगम्बर जैन अग्रवाल थे। गर्ग इनका गोत्र था। इनका परिवार ही पंडित एवं साहित्योपासक था। आगरा उस समय बनारसीदास, रूपचन्द, कौरपाल जैसे विद्वानों का नगर था। नगर में चारों ओर शास्त्र चर्चा, अध्यात्म ग्रंथों का वाचन, साहित्य निर्माण एवं संगोष्ठियां आदि होती रहती थी। हेमराज पर भी इन सबका प्रभाव पड़ा होगा और उन्हें साहित्य निर्माण की ओर आकृष्ट किया होगा।

जन्म एवं परिवार

हेमराज का जन्म कब हुआ, उनके माता पिता, शिक्षा दीक्षा, विवाह आदि के बारे में उनकी कृतियाँ सर्वथा मौन है। लेकिन यह अवश्य है कि हेमराज ने अच्छी शिक्षा प्राप्त की होगी। प्राकृत, संस्कृत एवं राजस्थानी तीनों ही भाषाओं पर उनका पूर्ण अधिकार था। वे गद्य एवं पद्य दोनों में ही गतिशील थे। अच्छे कवि थे। शास्त्रज्ञ भी थे इसलिये समयसार, प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थों का अच्छा अध्ययन भी किया होगा और इनकी विद्वत्ता को देखकर ही कौरपाल जैसे पंडित एवं तत्त्वज्ञ ने इनसे प्रवचनसार को हिन्दी गद्य पद्य दोनों में भाषा करने का अनुरोध किया था।

कवि का सं. १७०१ में प्रथम उल्लेख पं० हीरानन्द द्वारा किया गया मिलता है। इसलिये उस समय इनकी ४०-४५ वर्ष की आयु होनी चाहिये और इस प्रकार इनका जन्म भी संवत् १६५५ के आस पास होना चाहिये। संवत् १७०९ में इन्होंने अपनी प्रथम कृति प्रवचनसार भाषा की रचना की थी उस समय तक कवि की ख्याति विद्वत्ता एवं काव्य निर्माता के रूप में चारों ओर प्रशंसा फैल चुकी थी।

हेमराज और बनासीदास

पाण्डे हेमराज का तत्कालीन विद्वान् महाकवि बनासीदास से कभी सम्पर्क हुआ था या नहीं इसके बारे में न तो बनारसीदास ने अपनी किसी रचना में हेमराज का उल्लेख किया है और न स्वयं हेमराज ने अपनी कृतियों में बनारसीदास का स्मरण किया है। हाँ बनारसीदास के एक मित्र कौरपाल का अवश्य उल्लेख हुआ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है और उन्हें 'ज्ञाता' विशेषण से सम्बोधित किया है। अपने सितपट चौरासी बोल में कवि ने कौरपाल का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

> नगर आगरै में वसै कौरपाल सग्यान।
> तिस निमित्त कवि हेम नै, कीयो कवित्त बखान ॥

हेमराज और कौरपाल

प्रवचनसार की भाषा तो हेमराज ने कौरपाल की प्रेरणा एवं आग्रह से ही लिखी थी।[1] लगता है कौरपाल परोपकारी व्यक्ति थे तथा जैन शास्त्रों के अधिकारी विद्वान् थे। वे आध्यात्मी व्यक्ति थे तथा आगरा की आध्यात्मिक सैली के प्रमुख सदस्य थे। लेकिन हेमराज द्वारा बनारसीदास की उपेक्षा करना आश्चर्य सा अवश्य लगता है क्योंकि स्वयं हेमराज भी आचार्य कुन्दकुन्द के भक्त थे इसलिये उनके ग्रंथों का भाषानुवाद उन्होंने किया था। लगता है हेमराज का बनासीदास से मतैक्य नहीं था तथा विचारों में भिन्नता थी। हेमराज को पाण्डे हेमराज भी लिखा हुआ मिलता है। संभवतः वे मध्यस्थ विचारों के थे। कुछ भी हो दोनों कवियों में से किसी के द्वारा एक दूसरे का उल्लेख नहीं होना कुछ अटपटा सा लगता है।

हीरानन्द और हेमराज

संवत् १७०१ में रचित "समवसरण विधान" में हीरानन्द कवि ने हेमराज

---

१ हेमराज पंडित बसै, तिसी आगरे ठाइ।
गरग गोत गुन आगरो, सब पूजै तिस ठाइ।
उपजी ताके देहजा, जैनी नाम विख्यात।
शील रूप गुण आगरी, प्रीति नीति पांति।

२ बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुणहु कहूं मैं तैसे।
नगर आगरे में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अधिकारी।
तिनि विचारि जिय मैं यह कीनी, जो यह भाषा होइ नवीनी ॥४॥
अलप बुद्धि भी अरथ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै।
यह विचारि मन मैं तिसि राखी, पाण्डे हेमराज सौ भाखी ॥५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को पंडित एवं प्रवीण इन दो विशेषणों के साथ वर्णन किया है। इससे प्रकट होता है कि हेमराज संवत् १७०१ में ही समाज में अच्छा सम्मान प्राप्त कर लिया था तथा उनकी गिनती पंडितों में की जाने लगी थी।

लेकिन हेमराज कब से पाण्डे कहलाने लगे इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। मुझे ऐसा लगता है कि ये पंडित कहलाते थे और धीरे धीरे पाण्डे कहलाने लगे। और पाण्डे राजमल के समान इन्हें भी प्रवचनसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थों की भाषा टीका करने के कारण इन्हें भी पाण्डे कहा जाने लगा। पाण्डे हेमराज की अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं—

१ प्रवचनसार भाषा (गद्य)	रचनाकाल सं० १७०९
२ प्रवचनसार भाषा (पद्य)	"
३ भक्तामर स्तोत्र भाषा (गद्य)	"
४ भक्तामर स्तोत्र भाषा (पद्य)	....
५ चौरासी बोल (सितपट चौरासी बोल)	संवत् १७०९
६ परमात्मप्रकाश भाषा	—
७ पञ्चास्तिकाय भाषा	—
८ कर्मकाण्ड भाषा	—
९ सुगन्ध दशमी व्रत कथा	—
१० नयचक्र भाषा	संवत् १७२६
११ गुरुपूजा	—
१२ नेमिराजमती जखडी	—
१३ रोहिणी व्रत कथा	—
१४ नन्दीश्वर व्रत कथा	—
१५ राजमती चुनरी	—
१६ समयसार भाषा	—

उक्त कृतियों के अतिरिक्त कुछ पद भी राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में संग्रहीत विभिन्न गुटकों में उपलब्ध होते हैं। उक्त कृतियों का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१ प्रवचनसार भाषा (गद्य)

कविवर बुलाकीदास ने अपने पांडवपुराण में हेमराज का परिचय देते समय जिन दो ग्रन्थों की भाषा लिखने का उल्लेख किया है उनमें प्रवचनसार भाषा का नाम सर्वं प्रथम लिखा है ।[1] जिसमें ज्ञात होता है कि इस समय हेमराज का प्रवचन-सार भाषा अत्यधिक लोकप्रिय कृति मानी जाने लगी थी । महाकवि बनारसीदास द्वारा समयसार नाटक लिखने के पश्चात् आचार्य कुन्दकुन्द की प्राकृत रचनाओं पर जिस वेग से हिन्दी टीका लिखी जाने लगी थी प्रस्तुत प्रवचनसार भाषा भी उसी का एक सुपरिणाम है ।

हेमराज ने प्रवचनसार भाषा आगरा के तत्कालीन विद्वान कौरपाल के आग्रहवश की थी । कौरपाल महाकवि बनासीदास के मित्र थे तथा उनके साथ कौरपाल ने कुछ ग्रंथों की रचना भी की थी । बनारसीदास ने जिन पांच आध्यात्मिक विद्वानों का उल्लेख किया था उनमें कौरपाल भी थे ।[2] उन्होंने हेमराज से कहा कि पांडे राजमल्ल ने जिस प्रकार समयसार की भाषा टीका की थी उसी प्रकार यदि प्रवचनसार की भाषा भी तैयार हो जावे तो जिनधर्म की और भी वृद्धि हो सकेगी तथा ऐसे शुभ कार्य में किञ्चित भी विलम्ब नहीं किया जाना चाहिये । हेमराज ने उक्त घटना का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

बालबोध यह कीनी जैसे, सो तुम सुनहु कहुं मैं तैसे ।
नगर आगरे में हितकारी, कौरपाल ज्ञाता अविकारी ।।४।।

तिन विचार जिय मैं यह कीनी, जै भाषा यह होइ नवीनी ।
अलपबुद्धि भी अर्थ बखानें, अगम अगोचर पद पहिचानें ।।५।।

---

१ जिन आगम अनुशार तें, भाषा प्रवचनसार ।
पंच अस्ति काया अपर, कीनें सुगम बिचार ।।३५।।
पांडवपुराण/प्रथम प्रभाव

२ रूपचन्द पंडित प्रथम, दुतीय चतुर्भुज जान ।
तृतीय भगौतीदास नर, कौरपाल गुणधाम ।।
धरमदास ए पंचजन, मिलि बैठहि इक ठौर ।
परमारथ चर्चा करैं, इन्हीं के कथन न और । नाटक समयसार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह विचार मन मैं तिन राखी, पांडे हेमराज सों भाखी।
आगै राजमल्ल नै कीनी, समयसार भाषा रस लीनी ॥६॥
अब जो प्रवचन की ह्वै भाषा, तौ जिनधर्म वधै सो साखा।
तातै करहु विलंब न कीजै, परभावना अंग फल लीजै ॥७॥

कौरपाल ने अपनी भावना व्यक्त की और उसके फल प्राप्त करने का कवि को प्रलोभन दिया।

हेमराज संवेदनशील विद्वान थे। वे कवि एवं गद्य लेखक दोनों ही थे। गद्य पद्य दोनों में ही उनकी समान गति थी। इसलिये उन्होंने भी तत्काल प्रवचनसार की गद्य टीका लिखना प्रारम्भ कर दिया।

जिन सुबोध अनुसार, अैसे हित उपदेस सौं।
रची भाष अविकार, जयवंती प्रगटहु सदा ॥६॥
हेमराज हित आनि, भविक जीव के हित भणी।
जिनवर आनि प्रवानि, भाषा प्रवचन की कही ॥१०॥

कवि ने प्रवचनसार की जब रचना की थी उस समय शाहजहाँ बादशाह का शासन था। जिसका उल्लेख कवि ने निम्न प्रकार किया है—

अवनिपति वंदहि चरण, सुनय कमल विहसंत।
साहजिहां दिनकर उदै, अरिगन तिमिर न संत॥

प्रवचनसार की गद्य टीका कवि ने कब प्रारम्भ की इसका तो कोई उल्लेख नहीं मिलता लेकिन वह संवत् १७०९ में समाप्त हुई ऐसा उल्लेख अवश्य मिलता है—

सत्रहसै नव ऊतरै, माघ मास सित पाख।
पंचमि आदितवार कौ, पूरन कीनी भाष ॥१६॥

प्रवचनसार मूल आचार्य कुन्दकुन्द की प्रमुख कृति है। इस पर आचार्य अमृतचन्द ने संस्कृत में तत्व प्रकाशिनी टीका लिखी थी। यह एक सैद्धान्तिक ग्रन्थ है जिसमें तीन अधिकार है। जिनमें ज्ञान, ज्ञेयरूप तत्वज्ञान के कथन के साथ जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साधु आचार का बड़ा ही रोचक एवं प्रभावक कथन किया गया है। ग्रन्थ की भाषा प्राचीन प्राकृत है जो परिमार्जित है। यही नहीं इसकी भाषा उनके अन्य सभी ग्रन्थों से प्रौढ है तथा गम्भीर अर्थ की द्योतक है। इसका दूसरा अधिकार ज्ञेयाधिकार नाम से है जिसमें ज्ञेय तत्वों का सुन्दर विवेचन किया गया है। प्रवचनसार का तीसरा अधिकार चारित्राधिकार है। प्रवचनसार पर जयसेन की संस्कृत टीका भी अच्छी टीका मानी जाती है। प्रवचनसार की गद्य टीका तत्कालीन हिन्दी गद्य का अच्छा उदाहरण है।

पांडे हेमराज ने प्राकृत गाथाओं का पहिले अन्वयार्थ लिखा है और फिर उसीका भावार्थ लिखा है। भावार्थ बहुत अच्छा गद्य भाग बन गया है। इसका एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

"जो मोक्षाभिलाषी मुनि है ताकों यों चाहिए कै तौ गुणनि करि आप समान होइ कै, अधिक होइ असे दोइ की संगति करै और की न करै। जैसे सीतल घर के कोने मैं सीतल जल जल राखे तै सीतल गुण की रक्षा ही है तैसैं अपने गुण समान की संगति स्यों गुण की रक्षा हो है। औस जैसे अति सीतल बरफ मिश्री कर्पूरादि की संगति स्यों अति सीतल हो है तैसैं गुणाधिक पुरुष की संगति स्यों गण वृद्धि हो है तातैं सत्संग जोग्य है। मुनि को यों चाहिए प्रथम दशा विषै यह कही जु पूर्व ही शुभोपयोग तै उत्पन्न प्रवृति ताकों अंगीकार करै पाछै क्रमस्यों संयम की उत्कृष्टता करि परम दशा कों धरै पाछै समस्त वस्तु की प्रकाशन हारी केवलज्ञानानंद मयी शास्वती अवस्था को सर्वथा प्रकार पाइ अपनें अतींद्रिय सुख को अनुभव हु यह शुभोपयोगाधिकार पूर्ण हुवा। पृष्ठ संख्या २२८

प्रवचनसार की पचासों पाण्डुलिपियाँ राजस्थान के विभिन्न ग्रन्थागारों में सुरक्षित है। संवत् १७२८ में लिपिबद्ध एक पाण्डुलिपि हमारे संग्रह में उपलब्ध है।

२ प्रवचनसार भाषा (पद्य)

प्रवचनसार की हिन्दी गद्य टीका का ही अभी तक विद्वानों ने अपने २ ग्रन्थों एवं शोध निबन्धों में उल्लेख किया है लेकिन इनकी प्रवचनसार पर पद्य टीका का कहीं उल्लेख नहीं मिलता। पं० परमानन्द जी शास्त्री जैसे हिन्दी के विद्वान् ने भी हेमराज की गद्य वाली टीका का ही नामोल्लेख किया है। लेकिन सौभाग्य से मुझे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसकी एक पद्य टीका वाली पाण्डुलिपि उपलब्ध हुई है जिसका परिचय निम्न प्रकार है—

हेमराज ने प्रवचनसार का पद्यानुवाद भी इसी दिन समाप्त किया जिस दिन उसकी गद्य टीका पूर्ण की थी जिससे ज्ञात होता है कि उसने प्रवचनसार पर गद्य ·पद्य टीका एक ही साथ की थी। लेकिन जब उसकी गद्य टीका को पचासों पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती है तब प्रवचनसार पद्य टीका की अभी तक पाण्डुलिपि उपलब्ध न होवे यह बात समझना कठिन लगता है। इसका उत्तर एक यह भी दिया जा सकता है कि खण्डेलवाल जातीय दूसरे हेमराज ने भी पद्यानुवाद लिखा है इसलिये आगरा निवासी हेमराज के पद्यानुवाद को कम लोकप्रियता प्राप्त हो सकी।

पद्य टीका में ४३८ पद्य हैं जिसमें अन्तिम ११ पद्य तो वे ही हैं जो कवि ने प्रवचनसार गद्य टीका के अन्त में लिखे हैं। प्रस्तुत कृति का प्रारम्भिक अंश निम्न प्रकार है—

छप्पय—

स्वयं सिद्ध करतार करै निज करम सरम निधि,
आपै करण स्वरूप होय साधन साधै विधि।
संमदछना धरै आपको आप समप्पै।
अयाराव आपतै आपकौं कर थिर थप्पै।
अधकरण होय आधारनिज वरतै पूरण ब्रह्म पर।
षट निधि द्वारिकामय विधि रहित विविध येक अजर अमर ।।१।।

दोहा—

महातत्व महनीय यह, महाधाम गुणधाम।
चिदानंद परमातमा, बंदू रमता राम ।।२।।
कुनय दमन सुवरनि अवनि, रमिनि स्यात पद शुद्ध।
जिनवानी मानी मुनिय, घर मैं करोहू सुबुद्धि ।।३।।

चौपई—

पंच इष्ट के पद वंदौ, सत्यरूप गुर गुण अभिनंदौं।
प्रवचन ग्रंथ की टीका, बालबोध भाषा सयनीका ।।४।।

प्रवचनसार के तीन अधिकारों में से प्रथम अधिकार में २३२ पद्य, तथा शेष २०६ पद्यों में दूसरा एवं तीसरा अधिकार है।

भाषा अत्यधिक सरल, सुबोध एवं मधुर है। प्रवचनसार के गूढ विषय को कवि ने बहुत ही सरल शब्दों में समझाया है। कोई भी पाठक उसे हृदयंगम कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवचनसार पद्य टीका की एक पाण्डुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इसमें ३४ पद्य हैं तथा अन्तिम पुस्तिका इस प्रकार है—

इति श्री प्रवचनसार भाषा पांडे हेमराज कृत संपूर्ण। लिखतं दलसुख लुहाड़िया लिखी सवाई जयपुर मध्ये लिखी।

३ भक्तामर स्तोत्र भाषा (पद्य)

भक्तामर स्तोत्र सर्वाधिक लोकप्रिय जैन स्तोत्र है। मूल स्तोत्र आचार्य मानतुंग द्वारा विरचित है जिसमें ४८ पद्य है। समाज का अधिकांश भाग इसका प्रतिदिन पाठ करता हैं। हजारों महिलाएं जब तक इसको नहीं सुन लेती, भोजन तक नहीं करती। भक्तामर स्तोत्र पर अब तक ७० से भी अधिक विद्वानों ने पद्यानुवाद किया है।[1] लेकिन "तीर्थंकर" में प्रकाशित इस लेख में भक्तामर पर उपलब्ध हिन्दी गद्य टीकाकारों का कोई उल्लेख नहीं किया।

भक्तामर स्तोत्र पर हिन्दी पद्यानुवाद पांडे हेमराज का मिलता है जो समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय है। दि० जैन मन्दिर कामा के शास्त्र भण्डार में स्वयं हेमराज पांड्या की पाण्डुलिपि संग्रहीत है जिसका लेखन-काल सं० १७२७ है। इस पाण्डुलिपि में २९ पत्र हैं। पांडे हेमराज ने पद्यानुवाद जितना सुन्दर एवं सरल किया है उतना अन्य कवियों के पद्यानुवाद नहीं है। एक पद्य का अनुवाद देखिये—

सो मैं शक्तिहीन थुति करूं
भक्ति भाववश कछू नहीं डरूं
ज्यों मृगि निज-सुत पालन हेतु
मृगपति सन्मुख जाय अचेत ॥५॥

अन्तिम पद्य में कवि ने अपने नाम का निम्न प्रकार उल्लेख किया है—

भाषा भक्तामर कियो, हेमराज हित हेत।
जो नर पढै सुभावसों, तें पावै शिवखेत ॥४२॥

---

१ देखिये "तीर्थंकर" में प्रकाशित—पं. कमलकुमारजी शास्त्री का लेख-पृ. १६७-७०

२ राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची भाग—पंचम—पृ० ७४७.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कवि ने अपने इस छोटे से स्तोत्र में चौपई (१५ मात्रा), नाराच छन्द, दोहा एवं षट्पद छन्दों का प्रयोग किया है।

४ भक्तामर स्तोत्र भाषा (गद्य)

पं० हेमराज ने जहां भक्तामर स्तोत्र का पद्यानुवाद किया वहां गद्य में टीका लिखकर पाठकों के लिये स्तोत्र का अर्थ समझने के लिये उसे और भी सरल बना दिया है। गद्य टीका भाषा संस्कृत के एक एक शब्द के अन्वय के अनुसार की है। भाषा में व्रज का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। एक संस्कृत पद्य का गद्यानुवाद अवलोकनार्थं नीचे दिया जाता है—

किल अहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रं स्तोष्ये किलाह निश्चय करि अहमपि मै भी जु हौ मानतुंग आचार्य सो तं प्रथमं जिनेन्द्रं सो जु है प्रथम जिनेन्द्र श्री आदिनाथ ताहि स्तोष्ये स्तवूंगा। कहा करि स्तोत्र करोंगो जिनपाद युगे सम्यक् प्रणम्य जिन जु है भगवान तिनि को जु पद जुग दोई चरण कमल ताहि सम्यक् भली भांति मन वचन काय करि प्रणम्य नमस्कार करि कै। कैसो है भगवान को चरण द्वय भक्तामर प्रणत मौलि प्रभाणां उद्योतकं भक्तिवंत जु है अमर देवता तिनि के प्रणीत नम्रीभूत जु हैं मौलि मुकट तिनि विषै है मणि तिनि की प्रभा तिनिका उद्योतकं उद्योत की है। यद्यपि देव मुकटनि का उद्योत कोटि सूर्यवंत है तथापि भगवान के चरण नख की दीप्ति आगैं वै मुकुट प्रभा रहित हो है तातै भगवांन को चरण द्वय उनका उद्योतक है। बहुरि कैसो है चरण द्वय दलित पाप तमो वितानं दलित दूरि कियो है पाप रूप तम अधंकार ताको वितान समूह जानै बहुरि कैसो है चरण द्वय प्रगटो भव भवजले पततां जनानां आलंबनं। प्रगटो चतुर्थकाल को आदि विषै भवजले संसार समुद्र जल विषै पततां पड़े जु हैं तं कं सो आदिनाथ कौन है जाको स्तोत्र मैं करौगो। स्तोत्रैः यः सुरलोक नाथैः संस्तुतः स्तोत्रै स्तोत्र हुं करि यः जो श्री आदिनाथ सुरलोकनाथै सुरलोक देवलोक के नाथ इंद्र तिनि करि संस्तुतः स्तूयमान भया कैसे है इंद्र सकल वाङ्मय तिसका जु सत्व स्वरूप तिसका जु बोध ज्ञान तातै उद्भूत उत्पन्न जु है मकर बुद्धि ता करि पटुभिः प्रवीण है वे स्तोत्र कैसा है जिन करि स्तुति करी जगत्रिय उदारैः अर्थ की गंभीरता करि श्रेष्ट है ।।२।।

४८वें पद्य की टीका के अन्त में कवि ने अपने आपका निम्न प्रकार परिचय दिया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भक्तामर टीका सदा, पढ़ै सुनै जो कोइ।
हेमराज सिव सुख लहै, तस मन वांछित होइ॥

५ चौरासी बोल

हेमराज ने प्रस्तुत कृति में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर सम्प्रदाय जो मतभेद हैं उनको बहुत ही अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया है। वे भेद चौरासी हैं जिन्हें चौरासी बोल का नाम दिया गया है। कवि ने इसकी रचना कौरपाल की प्रेरणा से की थी। इसका दूसरा नाम "सित पट चौरासी बोल" भी मिलता है।

नगर आगरैं मैं बसै, कौरपाल सग्यान।
तिस निमित्त कवि हेम ने, कियौ कवित्त बखान।

कविवर हेमराज ने इसे संवत् १७०९ में लिखकर समाप्त किया था।

चौरासी बोल एक सुन्दर रचना है जो भाषा एवं शैली की दृष्टि से अनूठी कृति है। चौरासी बोल का प्रारम्भ निम्न प्रकार है—

सुनय पोष हत दोष मोक्ष मुख शिव पद दायक
गुन मनि कोष सुघोष रोष हर तोष विधायक।
एक अनंत स्वरूप संत वंदित अभिनंदित
निज सुभाव परभाव भाव भासेय अमंदित।
अविदित चरित्र विलसित अमित सर्व मिलित अविलिप्त तन।
अविचलित कलित निज रस ललित जय जिनवि दलित कलित घन॥१॥

सवैया इकतीसा—नाथ हिम भूधर तें निकसि गनेश चित्त भूपरि विथारी शिव सागर लौं धाई है।
परमत वाद मरजाद कूल उनमूलि अनकूल मारिग सुभाय ढरि आई है।
शुद्ध हंस सेय पायमल कौ विध्वंस करै सरधंश सुमति विकासि वरदाई है।
सपत अभंग भंग उठह तरंग जामैं असी वांनी गंग सरवंग अंग गाई है॥२॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा— श्वेताम्बर मत की सुनी, जिनतें हैं मरजाद।
मिलहि दिगंबर सौं नहीं, जे चउरासी वाद ।।३।।
तिनकी कछु संक्षेपता, कहिए आगम जानि।
पढत सुनत जिनके मिटै, संसै मत पहचानि।४।।
संसै मत मैं और है, अगनित कल्पित बात।
कौंन कथा तिनकी कहै, कहिए जगत विख्यात ।।५।।

६ परमात्मप्रकाश भाषा

परमात्मप्रकाश दूसरी अध्यात्म कृति है जिसे कविवर हेमराज ने संवत् १७१६ में समाप्त की थी। परमात्मप्रकाश योगीन्दु की मूल कृति है जिनका पूरा नाम योगिचन्द्र है। इनका समय ईस्वी सन् की छठी शताब्दि का उत्तरार्ध माना जाता है। परमात्मप्रकाश मूल में अपभ्रंश रचना है जिसमें प्रथम अधिकार में १२६ दोहे तथा दूसरे अधिकार में २१९ दोहे हैं।

पाण्डे हेमराज ने परमात्मप्रकाश पर हिन्दी गद्य टीका लिखकर उसके पठन पाठन को और भी सुलभ बना दिया तथा उसकी लोक प्रियता में वृद्धि की लेकिन प्रवचनसार के समान इसको व्यापक समर्थन नहीं मिल सका। यही कारण है कि जयपुर के शास्त्र भण्डारों में इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि उपलब्ध होती हैं और वह भी अपूर्ण ही है। इसकी एक पूर्ण पाण्डुलिपि डूंगरपुर के कोटडियों के मन्दिर में तथा दूसरी भादवा (जयपुर) ने जिन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में उपलब्ध होती है। परमात्मप्रकाश की गद्य टीका का एक उदाहरण देखिये—

अथानंतर तीन प्रकार का आतमा के भेद तिनि मै प्रथम ही वहिरातमा के लक्षण कहै है—

दोहा— मूढवियक्खण वंभुपरु, अप्पा तिनिहु हवेइ।
देहु जि अप्पा जो मुणइ, सो जण मूढ हवेइ ।।११।।

मूढ कहिए मिथ्यात्व रागादि रूप परिणया वहिरातमा अर वियक्खण कहिए वीतराग निर्विकल्प सुसंवेदन ग्यान रूप परिणया अंतरात्मा अर ब्रह्म पर कहिए शुद्ध-बुद्ध स्वभाव प्रमात्मा शुद्ध कहिए रागादि रहित अर बुद्ध कहिए अनंतग्यानादि सहित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परम कहिए उत्कृष्ट भाव कर्म तो कर्म रहित या प्रकार आत्मा के तीन भेद जानूं। बहिरात्मा, अन्तरात्मा परमात्मा तिनि मैं जो देह कूं आत्मा जाणै सो प्राणी मूढ कहिए।

उक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि हेमराज ने प्रवचनसार गद्य टीका में जिस शैली को अपनाया था उसी को आगे ग्रन्थों में अपनाया गया।

७ पञ्चास्तिकाय गद्य टीका

पञ्चास्तिकाय भी आचार्य कुन्दकुन्द की कृति है जो प्राकृत भाषा में निबद्ध है। इसमें दो श्रुतस्कंध (अधिकार) हैं षडद्रव्य-पंचास्तिकाय और नव पदार्थ। इन अधिकारों के नाम से ही इनके अभिधेय का नाम हो जाता है। इस पर भी आचार्य अमृतचन्द्र एवं जयसेन की संस्कृत टीकाएं हैं।

पाण्डे हेमराज ने अपने गुरु रूपचन्द के प्रसाद से पञ्चास्तिकाय की भाषा टीका लिखी थी। पंडित परमानन्द जी शास्त्री एवं डा० प्रेमसागर दोनों ने पञ्चास्तिकाय भाषा टीका का रचनाकाल संवत् १७२१ लिखा है लेकिन रचनाकाल सूचक पद्य का दोनों ने उल्लेख नहीं किया है। जयपुर के ठोलियों के मन्दिर में संग्रहीत एक पाण्डुलिपि संवत् १७१४ की लिखी हुई है इसलिये पञ्चास्तिकाय गद्य टीका का लेखन काल संवत् १७२१ तो नहीं हो सकता। स्वयं गद्य टीकाकार में रचनाकाल का कोई उल्लेख नही किया है। पाण्डे हेमराज ने निम्न प्रकार टीका की समाप्ति की है—

आगे इस ग्रन्थ का करणहारे श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने जु यह आरम्भ कीना था तिसके पार प्राप्त हुआ कृतकृत्य। अवस्था अपनी मानी कर्म रहित शुद्ध स्वरूप विषै थिरता भाव धर्‌या। असी ही हमारै विषैं भी श्रद्धा उपजी इसि पंचास्तिकाय समयसार ग्रन्थ विषै मोक्षमार्ग कथन पूर्ण भया। यह कछु एक अमृतचन्द्र कृत टीका तैं भाषा बालावबोध श्री रूपचन्द गुरु कै प्रसाद थी। पांडैं हेमराज नै अपनी बुद्धि माफिक लिखित कीना। जे बहुश्रुत है ते सवारि कै पढियो ।।

---

१ देखिये अनेकान्त— वर्ष १८ किरण—३ पृष्ठ संख्या १३८.

२ हिन्दी जैन भक्ति काव्य और कवि—पृष्ठ सं० ११५.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इति श्री पञ्चास्तिकाय ग्रन्थ पांडे हेमराज कृत समाप्त। संवत् १७१६ पौष सुदि ११ वृहस्पतिवार रामपुरा मध्ये लिखायितं पंचास्तिकाय ग्रन्थ संघ ही कला परोपकाराय लिखितं लेखक दीना। शुभं भूयात्।

ग्रन्थ के प्रारम्भ करते समय कवि ने अपना कोई परिचय नहीं दिया है और टीका को प्रारम्भ कर दिया है।

भावार्थ—एक परमाणु विषै पुद्गल के बीस गुणनि में पंच गुण पाइए। पंच रसनि विषै कोई एक रस पाइए। पंच वर्ण विषै कोइ एक वर्ण पाइए। दोइ गंध विषै कोई एक गंध पाइए। शीत स्निग्ध, शीत रुक्ष उष्ण, स्निग्ध, उष्ण-रुक्ष इति चार स्पर्श कै जुगलनिविषै एक कोई जुगल पाइए। ए पांच गुण जाननै। यह परमाणू षंध भाव कै परणया हुआ शब्द पर्याय का कारण है। और जब षंध तै जुदा है तब शब्द तै रहित है। यद्यपि अपणें स्निग्ध रुक्ष गुणनि का कारण पाइ अनेक परमांणु रूप स्कंध परिणति धरि करि एक हो हैं तथापि अपणें एक रूप करि स्वभाव कौं छोडता नांही। सदा एक द्रव्य है।

उक्त उदाहरण से ज्ञात होता है कि हेमराज हिन्दी गद्य लेखन में बड़े कुशल विद्वान् थे। तथा सिद्धान्त एवं दर्शन के बिषय को भी धारा प्रवाह लिखते थे। आगरा के होने के कारण उनकी भाषा में थोड़ा ब्रज भाषा का पुट है।

८ कर्मकाण्ड भाषा

कर्मकाण्ड आचार्य नेमिचन्द्र के गोम्मटसार का उत्तर भाग है। गोम्मटसार के दो भाग हैं जिनमें प्रथम जीवकाण्ड तथा दूसरा कर्मकाण्ड है। कर्मकाण्ड ग्रन्थ जैनधर्म के अनुसार आठ कर्म एवं उनकी १४८ प्रकृतियों के वर्णन करने वाला प्रमुख ग्रन्थ है। यह ६ अधिकारों में विभक्त है। जिनके नाम निम्न प्रकार हैं—(१) प्रकृति समुत्कीर्तन (२) बन्धोदय सत्व (३) सत्वस्थानभंग (४) त्रिचूलिका (५) स्थान समुत्कीर्तन (६) प्रत्यय (७) भावचूलिका (८) त्रिकरण चूलिका (६) कर्म स्थितिबन्ध। कर्मों के भेद प्रभेदों का वर्णन करने वाला यह प्रमुख ग्रन्थ है। आचार्य नेमिचन्द्र का समय ईस्वी सन् की दशम शताब्दि का उत्तरार्द्ध है।

पाण्डे हेउराज ने अपनी गद्य टीका के प्रारम्भ अथवा अन्तिम भाग में रचना काल का उल्लेख नहीं किया है लेकिन पं० परमानन्द जी शास्त्री ने इसका रचना-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

काल संवत् १७१७ लिखा है। उन्होंने अपनी इस मान्यता का कोई आधार नहीं दिया है। जयपुर के ठोलिया मन्दिर में इसकी एक पाण्डुलिपि संवत् १७२० को तथा हमारे संग्रह में संवत् १७२६ में लिपिबद्ध पाण्डुलिपि सुरक्षित है। संवत् १७२० की पाण्डुलिपि उसी लिपिकर्त्ता दीना की है जिसने इसके पूर्व पञ्चास्तिकाय गद्य टीका की प्रतिलिपि की थी।

हेमराज ने प्रस्तुत ग्रन्थ के आदि अन्त में अपने सम्बन्ध में लिखित प्रशस्ति निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ— ओं नमः सिद्धेभ्यः। अथ कर्मकाण्ड की बालबोध टीका हेमराज कृत लिख्यते।

अन्तिम भाग—इयं भाषा टीका पंडित हेमराज कृता स्वबुद्धयनुसारेण। इति श्री कर्मकाण्ड भाषा टीका।

संवत् १७२६ वर्षे आसुनि मासे कृष्णपक्षे ७ सप्तम्यां सोमवासरे लिखतं साह श्री योमसी आत्मपठनार्थं। लिखितं पाठिग विजैराम। श्री शुभं भवत्।

कर्मकाण्ड भाषा टीका भी अन्य ग्रन्थों की भाषा टीका के समान है। इसके गद्यांश का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

आयुषि भव विाकीनि नरकायु तिर्यंचायु मनुष्यायु देवायु ए चारि आयु भव विपाकी कहिए। जातैं इनका भव कहिये पर्याय सोई विपाक है। आयु के उदय तैं पर्याय भोगइ ए है। तातैं आयु कर्म भव विपाकी कहिए। क्षेत्र विपाकीनि आनुपूर्व्याणि। नरकायु पूर्व्वी तिर्यंचायुपूर्व्वी मनुष्यानुपूर्व्वी देवानुपूर्व्वी। चार आनुपूर्व्वी क्षेत्र विपाकी है। जातैं इनका विपाक क्षेत्र है तातैं क्षेत्र विपाकी है। अवशिष्टानि अष्टसप्ततिः जीव विपाकीनि पुद्गल विपाकी भव विपाकी क्षेत्र विपाकी पूर्व कहै जे कर्मएकसौ अठतालीस प्रकृति मध्य तिनते ते बाकी रहे अठहत्तरि कर्म ते जीव विपाकी कहिए ते जीव विपाकी कर्म अगली गाथा में नाम लेकैं कहै है।

प्रस्तुत टीका में कवि ने केवल गाथा का अर्थ ही किया है अपनी अन्य टीका ग्रन्थों के समान भावार्थ नहीं दिया। इससे भाषा में संस्कृत शब्दों की अधिक भरमार आ गयी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

६ सुगन्ध दशमी व्रत कथा

सुगन्ध दशमी व्रत भाद्रपद महिने की शुक्ल पक्ष के दशमी के दिन रखा जाता है। यह व्रत १० वर्ष तक किया जाता है और फिर उद्यापन के साथ इसको रखा जाता है। समाज में इसका अत्यधिक महत्त्व है। शास्त्र भण्डारों में बहुत सी पाण्डुलिपियाँ इसी व्रत के उद्यापन के उपलक्ष में भेंट स्वरूप दी हुई संग्रहीत है। इस दिन सभी मन्दिरों में धूप खेई जाती है। इस व्रत को जीवन में सफलता पूर्वक करने से दुर्गन्ध युक्त सरीर भी सुगन्धित वन गया था यही इस व्रत का महात्म्य है।

इस कथा के मूल लेखक विश्वभूषण हैं जिसको हिन्दी पद्य में हेमराज ने रचना की थी। रचना स्थान गहेली नगर था जिसका कवि ने निम्न प्रकार उल्लेख किया है।

व्रत सुगन्ध दसमी विख्यात, अतिसुगन्ध सौरभता गात।
यह व्रत नारि पुरुष जो करै, सो दुख संकट वह परै ॥३६॥
सहर गहेली उत्तिम वास, जैनधर्म को करै प्रकास।
सब श्रावक व्रत संयम धरै, दान पूजा सौ पातिक हरै ॥३७॥
हेमराज कवियन यौ कही, विस्मभूषन परकासी सही।
मन वच काइ सुनै जो कोइ, सो नर स्वर्ग अमरपति होइ ॥३८॥

यह छोटी सी कृति है जिसमें ३८ पद्य हैं। इसकी एक पांडुलिपि जयपुर के पटोदी के दिगम्बर जैन मन्दिर में संग्रहीत है। पाण्डुलिपि संवत् १९८५ की है। पाण्डुलिपि भिण्ड नगर के रामसहाय ने की थी।

१० नयचक्र भाषा

नयचक्र का दूसरा नाम आलाप-पद्धति है। इसके मूलकर्त्ता आचार्य देवसेन है जिनका समय संवत् ९९० अर्थात् १०वीं शताब्दि माना जाता है। नयचक्र मूल रचना प्राकृत भाषा में है। इसमें प्रारम्भ में छह द्रव्यों का (जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल) द्रव्य, गुण और पर्याय की अपेक्षा वर्णन किया गया है। इसके पश्चात् द्रव्य स्वभाव का कथन किया गया है। फिर सात नयों का जिनके नाम से यह रचना विख्यात है वर्णन मिलता है। नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शब्द समभिरूढ एवं एवंभूत के भेद से सात प्रकार के हैं। इन नयों का बहुत ही विस्तृत किन्तु सरल एवं बोधगम्य परिचय दिया गया है। हेमराज ने बिना किसी गाथाओं को उद्धृत किये हुये नयचक्र ग्रन्थ का सार लिखा है। यद्यपि नयचक्र का दार्शनिक विषय है लेकिन हेमराज ने उसे एकदम सरल बना दिया है। एक उदाहरण देखिये—

(१) वहाँ सर्व नय को मूल दोइ। एक द्रव्यार्थिक, एक पर्यायार्थिक। इनही का उच्चत्तर भेद सात और है सो लिखिये है। १. नैगम, २. संग्रह, ३ व्यवहार ४. ऋजुसूत्र, ५. शब्द, ६. समभिरूढ एवं ७. एवंभूत। इस तरह ए सात नय दोय मूल अरु सात ए सर्व मिलि तब नय हुई। इति नयाधिकार। इनको अर्थ आगै यथा सम्बन्धे लिखिये होगी।

नय ही को अंगु ले करी वस्तु को अनेक विकल्प लिए कहनों सु उप नय कहिये सो उप नय तीनि भेद व्यवहार ही के विषै संभवे सो लिखिये है। सद्भूत व्यवहार असद्भूतव्यवहार, उपचरत सद्भूत व्यवहार एवं उप नय का तीन भेद। अब पूर्वोक्त नय का विस्तार पणे भेद लिखिए है।

× .... × .... × .... × .... ×

(२) तिहां प्रथम निश्चयै नय हूंती व्यवहार नय। तिहां वस्तु कौ जो अभेद पणैं बतावै सो निश्चय। अरु वस्तु कौ भेद पणै बतावै सो व्यवहार नय। तिहां पहिली जौ निश्चय नय तिस कै दोय भेद। एक शुद्ध नय दूजी अशुद्ध नय। तिहां जो निरुपाधि रूप सो सुध निश्चय नय जैसे केवलग्यानादयो जीव। अर जो उपाधि करि संयुक्त है सो असुध निश्चय नय जैसे मति ज्ञानोदयो जीव। एवं निश्चय का दोय भेद जांणवा। पृष्ठ १७

उक्त दो उदाहरणों से पता चलता है कि नयचक्र की भाषा राजस्थानी प्रभावित अवश्य है लेकिन उसका स्वरूप एवं शैली दोनों ही परिस्कृत है। सैद्धान्तिक बातों के वर्णन में ऐसा सरल एवं किन्तु परिस्कृत भाषा का प्रयोग अवश्य ही प्रशंसनीय है।

प्रस्तुत रचना को हेमराज ने संवत् १७२६ में पूर्ण किया था। जिसका उल्लेख कवि ने ग्रन्थ के अन्त में निम्न प्रकार किया है—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेमराज की वीनती, सुनियौ सुकवि सुजान।
यह भाषा नयचक्र की, रचि सुबुद्धि उनमान ।।४।।

सतरहसै छबीस कौ, संवत फागुण मास।
उजल तिथि दशमी जिहां, कीनो वचन विलास ।।५।।

आगरा में उन दिनों पं० नारायणदास थे। जो खरतर गच्छ के जिनप्रभसूरि के प्रशिष्य एवं उपाध्याय लब्धिरंग के शिष्य थे। हेमराज ने पं० नारायणदास से नयचक्र की भाषा करने के लिये प्रार्थना की। इसके पश्चात् हेमराज ने पं० नारायण-दास की सहायता से नयचक्र की गद्य में भाषानुवाद किया। जिसका कवि ने निम्न प्रकार किया है—

दोहरा— सिरीमाल गछ खरतरै, जिनप्रभ सूरि संतानि।
लवधि रंग उवझाय मुनि, तिनके सिष्य सुजानि।।
विवुध नारायणदास सौं, यहै अरज हम कीन।
ज्यौ नयचक्र सटीक ह्वै, पढै सवै परवीन ।।२।।

तिन्है प्रसन ह्वै कैं कही, भली भली यह बात।
तब हमहू उदिम कियौ, रची वचनिका भांत ।।३।।

प्रस्तुत ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि संवत् १७६० भादवा बुदी भृगुवासर को वेधम गांव में लिपिबद्ध की हुई जयपुर के पांडे लूणकरण जी के मन्दिर में उपलब्ध है।

नयचक्र भाषा का आदि भाग निम्न प्रकार है—

बंदौ श्री जिन के वचन, स्याद्वाद नय मूल।
ताहि सुनत अनुभवत ही, होइ मिथ्यात निरमूल ।।१।।

निहचै अरु विवहार नय, तिनके भेद अनंत।
तिन्ह में कछु इक वरण हो, नाम भेद विरतंत ।।२।।

११ गुरुपूजा

हेमराज ने आध्यात्मिक साहित्य के अतिरिक्त पूजा साहित्य भी लिखा था। उनके द्वारा रचित गुरुपूजा पं० पन्नालाल बाकलीवाल द्वारा प्रकाशित

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृहद्‌जिनवाणी संग्रह में प्रकाशित हो चुकी है। पूजा में पहिले अष्ट पूजा और फिर जयमाल है। कवि के गुरु संसार के भोगों से विरक्त होकर मोक्ष के लिये तपस्या करते हैं। वे भी भगवान जिनेन्द्र के गुणों का नित्य प्रति जाप करते हैं—

दीपक उदोत सदोत जगमग; सुगुरुपद पूजों सदा।
तम नाश ज्ञान उजास स्वामी, मोहि मोह न हो कदा।
भव भोग तन वैराग्यधार, निहार शिव पद तपत हैं।
तिहुँ जगतनाथ अधार साधु सु, पूज नित गुन जपत है।।६।।

पञ्च परमेष्ठी का साधु ही गुरु है। मुनि भी उसी का नाम है। वे राग-द्वेष को दूर कर दया का पालन करते हैं। तीनों लोक उनके सामने प्रकट रहते हैं वे चारों आराधनाओं के समूह हैं। वे पाँच महाव्रतों का कठोरता से पालन करते हैं और छहों द्रव्यों को जानते हैं। उनका मन सात मंगों के पालन में लगा रहता है और उन्हें आठों ऋद्धियाँ प्राप्त हो जाती है।

एक दया पालैं मुनिराजा, राग द्वेष द्वै हरनपरं।
तीनों लोक प्रगट सब देखें, चारो आराधन निकरं।
पंच महाव्रत दुद्धर धारैं, छहों दरब जानें सुहित।
सात भंग वानी मन लावै, पावैं आठ ऋद्धि उँचितं।।

गुरुपूजा की एक प्रति फतेहपुर (शेखावाटी) ने दिग० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में गुटका संख्या ७ में संग्रहीत है।

१२ नेमि राजमति जखडी

कविवर हेमराज लघु कृतियों की रचना करने में रुचि भी रखते थे। नेमिराजमति जखड़ी ऐसी ही एक लघु रचना है जिसमें नेमि राजुल का विरह वर्णन किया गया है। जखडी की एक प्रति जयपुर के बधीचन्द जी के मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत १२४वें गुटके में लिपिबद्ध है। इसकी प्रति देहली में तिलोकचन्द पटवारी चाकसू वाले ने संवत् १७८२ में की थी।

१ राजस्थान के जैन शास्त्र भणरों की ग्रंथ सूची–भाग ३ पृष्ठ संख्या १५२.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१३ रोहिणी व्रत कथा

हेमराज ने कुछ कथा कृतियों की भी रचना की थी। रोहिणी व्रत कथा को उसने संवत् १७४२ में समाप्त की थी। इस कथा की एक प्रति दि० जैन मंदिर बोरसली कोटा में संग्रहीत है। कथा का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

रोहणी कथा संपूरण भई, ज्यों पूरव परगासी गई।
हेमराज ई कही विचार, गुरु सकल शास्त्र अवधार।
ज्यों व्रत फल.... मैं लही, सो विधि ग्रंथ चौपई लही।
नगर वीरपुर लोग प्रवीन, दया दान तिनको मन लीन ॥

कथा के उक्त अंश से पता चलता है कि इसकी रचना वीरपुर में की गयी थी। 'वीरपुर' आगरा के आस पास ही कोई ग्राम होना चाहिये।[1]

१४ नन्दीश्वर कथा

हेमराज की दूसरी कथा कृति नन्दीश्वर कथा है। कवि ने इसे इटावा नगर में निबद्ध किया था। वहां जैनों की अच्छी वस्ती थी तथा जैन पुरानों को सुनने में उनकी विशेष रुचि थी। कथा का अन्तिम अंश निम्न प्रकार है—[2]

यह व्रत नन्दीश्वर की कथा, हेमराज परगासी यथा।
सहर इटावो उत्तम थान, श्रावक करै धर्म सुभ ध्यान।
सुने सदा जे जैन पुरान, गुरो लोक को राखै मान।
तिहिए सुनो धर्म सम्बन्ध, कीनी कथा चौपई बंध ॥

१५ राजमती चुनरी

इस लघु कृति की एक प्रति फतेहपुर (शेखावाटी) के दिग० जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।[3]

---

१ देखिये—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रंथ सूची—भाग पंचम पृ. सं. ४०३
२ वही
३ वही पृष्ठ सं. ११११८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

१६ समयसार भाषा

पं० हेमराज ने आचार्य कुन्दकुन्द के सभी प्रमुख ग्रन्थों का भाषान्तर किया था। समयसार भाषा की उपलब्धि अभी तक हमें राजस्थान के शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियां बनाते समय उपलब्धि नहीं हुई थी। इस ग्रन्थ की एक पाण्डुलिपि नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है ऐसा उल्लेख डा० प्रेमचन्द जैन ने अपनी डेस्क्रिपाटिव कैटालाग आफ मन्युस्क्रफटस् में पृष्ट 25 पर निम्न प्रकार दी है—

"समयसार भाषा—पं० हेमराज/पत्र संख्या १९४/आकार ११$\frac{1}{2}$"×५$\frac{1}{2}$" दशा-जीर्णं/पूर्णं/भाषा हिन्दी (पद्य) लिपि-नागरी/ग्रंथ संख्या १०९०/रचनाकाल-माघ शुक्ला ५ सं० १७६९/लिपिकाल X।"

उक्त परिचय में रचना काल संवत् १७६९ दिया है जो पांडे हेमराज अथवा हेमराज गोदीका के साथ मेल नहीं खाता क्योंकि उक्त दोनों ही कवियों की रचनाये संवत् १७२६ तक मिली है जिसमें ४३ वर्ष का अन्तराला है। इसलिये हो सकता है यह लिपि संवत् हो। इसकी शोध चल रही है।

हेमराज गोदीका (तृतीय)

हेमराज नाम वाले ये तीसरे कवि हैं। ये दिगम्बर जैन खण्डेलवाल थे। गोदीका इनका गोत्र था। ये अध्यात्मी पंडित थे। उस समय सांगानेर क्रान्तिकारियों का नगर था। अमरा भौंसा जो तेरहपंथ के मुख्य आधार स्तंभ थे, वे भी सांगानेर के ही थे तथा उनका पुत्र जोधराज गोदीका भी सांगानेर निवासी थे। यह पूरा गोदीका परिवार ही भट्टारकों के विरुद्ध खड़ा हुआ था और उसमें उन्हें आंशिक सफलता भी मिली थी।

हेमराज गोदीका एवं जोधराज गोदीका संभवतः एक ही परिवार के थे तथा एक ही पिता के पुत्र थे। लेकिन दोनों में मतैक्य नहीं होने के कारण हेमराज को सांगानेर छोड़कर कामां जाना पड़ा। लेकिन ये दोनों ही विद्वान् थे। यह भी संयोग की ही बात है कि दोनों ने एक ही संवत् अर्थात् सं० १७२४ में प्रवचनसार की पद्य टीका समाप्त की थी। हेमराज सांगानेर से कामां नगर आये जबकि जोधराज सांगानेर में ही अपनी साहित्यिक सेवा करते रहे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हेमराज की अब तक तीन कृतियाँ प्राप्त हो चुकी है जिनके नाम प्रकार हैं—
प्रवचनसार हिन्दी पद्य—रचनाकाल संवत् १७२४

उपदेश दोहा शतक— संवत् १७२५

गणितसार संग्रह— —

उक्त रचनाओं का विस्तृत परिचय निम्न प्रकार है—

१५ प्रवचनसार भाषा (पद्य)

प्रवचनसार का पठन पाठन समाज में प्रारम्भ में ही लोकप्रिय रहा है। आचार्य अमृतचन्द्र एवं जयसेन प्रभृति आचार्यों ने गाथाओं पर संस्कृत में टीका लिखी है। हिन्दी भाषा में सर्व प्रथम संवत् १७०९ में आगरा निवासी हेमराज अग्रवाल ने गद्य पद्य दोनो में टीका लिखी थी। हेमराज की गद्यात्मक टीका बहुत लोकप्रिय रही और उसी के आधार पर कामांगढ़ (राजस्थान) निवासी हेमराज खण्डेलवाल ने एक और हिन्दी पद्य टीका लिखी। जिसके पद्यों की संख्या १००५ है। हेमराज ने अपना परिचय देते हुये निम्न पंक्तियाँ लिखी हैं—

सवैया इकतीसा

हेमराज श्रावक खण्डेलवाल जाति गोत भांवसा प्रगट ब्यौंक गोदीका बखानिये।
प्रवचनसार अति सुन्दर सटीक देखि कीने हैं कबित्त ते छवित्त रूप जानीयै।
मेरी यक वीनती विवुध कविवंतनिसों, बाल बुद्धि कवि को न दोष उर आंनीयै।
जहां जहां छंद ओर अरथ अधिक हीन तहां शुद्ध करिकें प्रवान ग्यान ठानीयै ॥९१॥

दोहा— सांगानेर सुथांन कों हेमराज वसवान।
अब अपनी इच्छा सहित, वसें कामगढ थांन ॥९२॥
कामागढ सुखसु वसइ, इति भीत नहि थाय।
कवित वंध प्रवचन कीयो, पूरन तहां बनाय ॥९३॥

उस समय कामां में अध्यात्म सैंली थी उसी में प्रवचनसार की चर्चा स्वाध्याय होती थी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसकी रचना संवत् १७२४ की आषाढ सुदी ८ के शुभ दिन समाप्त हुई थी। कवि ने जिसका उल्लेख अपने पद्य में निम्न प्रकार किया है।

सत्रहसै चौबीस संवत् सुभ असुभ घरी।
कीधो ग्रंथ सुधीस देखि देखि कीज्यो खिमा ॥१००५॥

प्रवचनसार का पद्यानुवाद बहुत ही सुन्दर एवं भाव पूर्ण हुआ है। आगरा निवासी हेमराज पाण्डे का गद्य रूपान्तरण जितना अच्छा है उतना पद्य भाषान्तर नहीं है। उसने ४४१ पद्यों में ही प्रवचन के रहस्य को प्रस्तुत किया है जबकि हेमराज गोदीका (खण्डेलवाल) ने प्रवचनसार पर विस्तृत पद्य रचना की है जो १००५ पद्यों में पूर्ण होती हैं। दोनों ही कवि ब्रज भाषा भाषी प्रदेश के थे। कामां भी ब्रज प्रदेश में गिना जाता है।

आ गई पुन्य पाप कोई भेद नांहीं ग्रैसा निश्चैय करि को ईस कथन कुं संक्षेप में कहै है।

णहि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसोत्ति पुण्ण पावाणं।
हिंडदि घोर मपांर संसारं मोह सछन्नो ॥२८२॥

टीका— नहिंसन्यते य एवं नास्ति, विशेष इति पुन्य-पापयो।
हिंडति घोर मयारं, संसारं मोह संछन्नं ॥

सवईया इकतीसा—

पीकै मद मोह जै परै है भवसागर मद्ध,
आपनी पराइ को विचार न करतु है।
पुण्य के उदेतइ विषइ भोग सुख पाइयत,
तिन्ह कै विलास वै कु उद्यम धरतु है।
पाप उदे दुखी भंग होत विषइ भोगनि सौं,
जिन्ह कुं विलोकि भय मानि कै डरतु है।
ग्रैसै पाप पुण्य तें असाता साता वेदतु है।
तेई भवसागर में भांवरी भरतु है ॥२८३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहरा— पुण्य पाप की एकता, मानतु नांहि जु कोय।
सो अपार संसारमइ, भ्रमत मोह सुत सोय ॥२८४॥
जइसइ शुभ अरु असुभमइ, निहचय भेद न होय।
त्यों ही पुन्यरु पापमइ, निहचय भेद न कोय ॥२८५॥
बेडी लोहरु कनक की, बंधत दुवइं समान।
त्योंही पुन्यरु पापमइं, बंधत मोह निदान ॥२८६॥

उक्त उदाहरण से यह जाना जा सकता है कि हेमराज गोदीका ने गाथा में निरुपित विषय को कितना स्पष्ट करके समझाया है। भाषा भी एकदम परिमार्जित है तथा साथ में सरल एवं बोधगम्य है।

उक्त पद्य रूपान्तरण हेमराज गोदीका ने अपने पूर्ववर्ती पाण्डे हेमराज अग्रवाल आगरा निवासी के प्रवचनसार भाषा (गद्य) के अध्ययन के पश्चात् किया था।

उक्त ग्रंथ की दो पांण्डुलिपियाँ जयपुर के दि. जैन तेरापंथी बड़ा मन्दिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। जिसमें एक पाण्डुलिपि कामा नगर में लिखी हुई है जो संवत् १७४६ की है।

२ उपदेश दोहा शतक

उपदेश दोहाशतक हेमराज गोदीका खण्डेलवाल की रचना है। इसके पूर्व उसने प्रवचनसार भाषा (पद्य की रचना की थी। हेमराज ने शतक में अपना जो परिचय दिया है वह निम्न प्रकार है—

उपनो सांगानेरि कौ, अब कामागढ़ वास।
तहां हेम दोहा रचे, स्वपर बुधि परकास ॥९८॥
कामांगढ सूबस जहां, कीरतिसिंघ नरेश।
अपने खग बलि वसि किये, दुर्जन जितेक देस ॥९९॥
सत्रहसैर पच्चीस कौ, बरतै संवत सार।
कातिग सुदि तिथि पंचमी, पूरन भयो विचारि ॥१००॥

उक्त संक्षिप्त परिचय से इतना ही पता चलता है कि हेमराज सांगानेर में पैदा हुये थे तथा फिर कामांगढ़ में जाकर रहने लगे थे। उपदेश दोहा शतक की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रचना कामां नगर में ही की गयी थी। कामा एक सूबा था जिस पर कीर्त्तिसिंह का शासन था और उसने अपने शौर्य एवं पराक्रम से कितने ही देशों पर कब्जा कर लिया था। उपदेश दोहा शतक की रचना संवत् १७२५ कार्त्तिक सुदी पंचमी को समाप्त की गयी थी।

'उपदेश दोहाशतक' एक आध्यात्मिक रचना है जिसमें मानव मात्र को सुपथ पर लगाने, आत्मिक विकास करने एवं बुराइयों से बचने का उपदेश दिया है। जीवन में दया व दान को अपनाने का आग्रह किया गया है। साथ में यह भी लिखा है कि जिसने जीवन में दान नहीं दिया तथा व्रत एवं उपवास नहीं किये इसका जीवन ही व्यर्थ है क्योंकि मनुष्य तो मुट्ठी बांधे आता है और हाथ प्रसार कर चला जाता है—

दिये न दान सुपत्त को, किये न व्रत उर धारि।
आयौ मूंठी बांधि कै, जासी हाथ पसारि ॥१३॥

यह मूढ आत्मा जगह २ आत्मा को ढूंढता-फिरता है जबकि इसी के घर में यह आत्मा बसता है जो स्वयं निरंजन देवता भी है—

ठौर ठौर सोधत फिरत' काहे अंध अवेव।
तेरे ही घर मैं वसै, सदा निरंजन देव ॥२५॥

शतक में १०१ दोहा हैं। इसकी पांडुलिपि जयपुर के बधीचन्द जी के मंदिर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

३ गणितसार

कविवर हेमराज गोदीका गणितज्ञ भी थे। इन्होंने गणितसार के नाम से एक लघु रचना को छन्दोबद्ध किया था। इसमें ८८ दोहा छन्द हैं। जिनमें गणित के विभिन्न पथों को प्रस्तुत किया है। अब तक इस ग्रन्थ की एक प्रति जयपुर के दि० जैन मंदिर पाटोदियान में तथा एक पाण्डुलिपि आदिनाथ पंचायती मन्दिर बून्दी में संग्रहीत है। बून्दी वाली पाण्डुलिपि संवत् १७८४ की है तथा सांगानेर में लिपिबद्ध है इसलिये हमने गणितसार को हेमराज गोदीका की कृति माना है। जयपुर वाली

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाण्डुलिपि अपूर्ण है और उसका अन्तिम पृष्ठ नहीं है। गणितसार का आदि अन्त भाग निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ—अथ श्री गणितसार लिख्यते—

दोहरा— श्रीपति शंकर सुगत विधि, निरविकार करतार।
अगम सुगम आनन्दमय, सुर नर पति भरतार ॥१॥
चिद्विलास निरविकलपी, अजर अजन्म अनन्त।
जगत शिरोमणि दुखदमन, जव जय जिन अरिहंत ॥२॥

अन्तिम पाठ दोहरा

जाकै जैसी है सकति, ताकै वैसो काज।
यह विचार किंचित कह्या, करि मति सकति इलाज ॥८६॥
अरथ शब्द पद छंद करि, जहां होय सविरुद्ध।
कृपावंत होइ सजन जन, तहां समारहु शुद्ध ॥८७॥
जो पढि याकौ सरदहै, शिवथानक मैं सोई।
हेमराजमय जो अचल, ता सम अविचल होइ ॥८८॥

हेमराज (चतुर्थ)

तीन हेमराज नाम के विद्वानों एवं कवियों के अतिरिक्त एक और हेमराज का पता लगा है जो पांडे हेमराज के समकालीन थे। ये हेमराज भी तत्वज्ञानी एवं सिद्धान्त ग्रन्थों के ज्ञाता थे। उस समय आगरा में जैन समाज के विभिन्न सम्प्रदायों में पूर्ण समन्वय था इसलिये दिगम्बर ग्रन्थों की व्याख्या श्वेताम्बर विद्वान् किया करते थे। समयसार, प्रवचनसार, गोम्मटसार, पञ्चास्तिकाय जैसे ग्रन्थ श्वेताम्बर समाज में भी लोक प्रिय थे। हेमराज ओसवाल ने जब साहु आनंदराम जी खण्डेलवाल ने गोम्मटसार के बारे में प्रश्न पूछे तो उन्होंने सहर्ष उसकी शंकाओं का समाधान किया। जीव समाज इन्हीं शंकाओं पर आधारित ग्रन्थ है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इन्हीं हेमराज की छन्द शास्त्र संभवतः एक और रचना है जिसकी एक पाण्डुलिपि जैसलमेर के भण्डार में सुरक्षित है। इसका रचनाकाल संवत् १७०६ दिया हुआ है। कवि की उक्त दोनों रचनाओं का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है—

जीव समास

हेमराज ने गोम्मटसार जीवकांड में से जीव समास से सम्बन्धित गाथाओं का संकलन किया है जिसका नाम उन्होंने जीव समास नाम दिया है। प्राकृत गाथाओं पर संस्कृत में विस्तृत अर्थ किया है। ग्रन्थ का प्रारम्भ और अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

प्रारम्भ—अथ गोम्मटसारे शरीरावगाहनाश्रयेण जीव समासान् वक्तुमनाः प्रथमं तत्सवं जघन्योत्कृष्ट शरीरावगाहन स्वामिनौ निर्दिशगति।

अन्तिम—इति विग्रह निवारणार्थं कार्म्मणकाययोगे विग्रहगति निर्द्धारणार्थं श्रीमद्‌गोम्मटसारापुद्धृतं हेमराजोन ॥

उक्त ग्रंथ की पाण्डुलिपि जयपुर के पाण्डे लूणकरण जी के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है।

गोम्मटसार जीवकांड एवं कर्मकांड की गाथाओं के एवं पंचसंग्रह की गाथाओं के आधार पर अमितगति आचार्य ने नवप्रश्न चूलिका बनायी थी इसी की हिन्दी पद्य में बालावोध टीका हेमराज ने लिखी थी। इस नव प्रश्न चूलिका में तीर्थंकर प्रकृति का प्रश्न साह आनन्दराम खण्डेलवाल ने उपस्थित किये थे जिनका समाधान गोम्मटसार को देख के उसका उत्तर तैयार किया था। जो ५२ पत्रों में पूर्ण होता होता है। इसकी एक पाण्डुलिपि जयपुर के दि. जैन मन्दिर पाटोदियान में संग्रहीत है जो संवत् १७८८ पौष सुदी १० को लिखी हुई है। हेमराज नाम के पूर्व लिपिकार ने श्वेताम्बर लिखा है। पाण्डुलिपि का अन्तिम भाग निम्न प्रकार है—

इह तब प्रश्न चूलिका बालाबोध किंचित्मात्र तीर्थंकर प्रकृति का प्रश्न साह आणंदराम जी खण्डेलवाल ने पूछ्या। तिस ऊपर स्वेताम्बर हेमराज ने गोम्मटसार की देखि के क्षयोपक्षम माफिक पत्री में जवाब लिखणें रूप चर्चा की वासना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिखी है। संत जन भूल चूक कौं समुझि करि सुधारि कै पठणा सं. १७८८ पोष सुदि १०।

छन्दमाला

हेमराज की एक रचना छन्दमाला का उल्लेख डा. नेमीचन्द शास्त्री ने हिन्दी जैन साहित्य परिशीलन में किया है। इसी छन्द माला की एक ताडपत्रीय प्रति जैसलमेर के शास्त्र भण्डार में संग्रहीत है। इस छन्द माला का रचना काल संवत् १७०६ है। सूची में भाषा गुजराती लिखा है।

इस प्रकार हेमराज नाम के चारों ही कवि हिन्दी साहित्य निर्माण के लिये वरदान सिद्ध हुये। हो सकता है अभी आगरा, मैनपुरी एवं उसके आस पास के मन्दिरों में स्थित शास्त्र भण्डारों के अवलोकन से और भी कृतियां मिल जावे लेकिन जो कुछ अब तक उनकी रचनायें मिली हैं वे ही उनकी कीर्त्ति गौरव गाथा कहने के लिये पर्याप्त है।

गद्य साहित्य का महत्त्व

पांडे हेमराज का सबसे अधिक योगदान प्राकृत ग्रंथों का हिन्दी गद्य में विस्तृत टीका सहित अनुदित करना है। पाण्डे राजमल्ल ने १७वीं शताब्दि के मध्य में जिस समयसार नाटक का हिन्दी में टब्बा टीका लिखी थी पाण्डे हेमराज ने प्रवचनसार पर हिन्दी गद्य में विस्तृत एवं व्यवस्थित टीका लिखकर स्वाध्याय प्रेमियों के लिये नयी सामग्री प्रस्तुत की। वास्तव में जैन कवियों ने जिस प्रकार पहिले अपभ्रंश कृतियों के माध्यम से और फिर राजस्थानी एवं हिन्दी पद्य कृतियों के माध्यम से जिस प्रकार हिन्दी भाषा की अपूर्व सेवा की थी उसी प्रकार हिन्दी गद्य में भी ग्रंथों की टीकाएं लिखकर हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योग दिया।

श्री जैसलमेरु दुर्गस्थ जैन ताडपत्रीय ग्रन्थ भण्डार सूची पत्र—पत्र सं. २३८ क्रम संख्या ६३१.

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिनिधि कवि के रूप में

पाण्डे हेमराज एवं हेमराज गोदीका दोनों को ही हम १७वीं शताब्दि के अन्तिम चरण का प्रतिनिधि कवि के रूप में मान सकते हैं। इन कवियों ने एक ओर जहाँ आध्यात्मिक रचनाओं के पठन पाठन में पाठकों की रुचि जाग्रत की वहां दूसरी ओर लघु रचनायें लिखकर जिन भक्ति की ओर भी जन सामान्य को लगाये रखा। वे एक ही धारा की ओर नहीं बढ़े किन्तु दोनों ही धाराओं का जल सिंचन किया। जिसमें समाज रूप खेत लहलहा उठा। पांडे हेमराज ने प्रवचनसार के पद्यानुवाद में तथा हेमराज गोदीका ने उपदेश दोहा शतक में अपनी जिस आध्यात्मिकता एवं पर हित चिंतन का परिचय दिया वह सर्वथा प्रशंसनीय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उपदेश दोहा शतक

(हेमराज गोदीका) विरचित

दिव्य दृष्टि परकासि जिहिं, जान्यौ जगत असेस।
निसप्रेही निरदुंद निति, वदौ त्रिविधि गनेस ॥१॥
कुपथ उथपि थापत सुपथ, निसप्रेही निरगंथ।
अैसे गुरु दिनकर सरिस, प्रगट करत सिवपंथ ॥२॥
गनपति हिदय विलासिनी, पार न लहै सुरेश।
सारद पद नमि कै कहौ, दोहा हितोपदेस ॥३॥
आतम सरिता सलिल जहं, संजम सील बखानि।
तहां करहि मंजन सुधी, पहुचै पद निरवाणि ॥४॥
सिव साधन कौ जानिये, अनुभौ बडौ इलाज।
मूढ सलिल मंजन करत, सरत न एकौ काज ॥५॥
ज्यौं ईन्द्री त्यौं मन चलै, तौ सव क्रिया अकथि।
तातै ईन्द्री दमन कौं, मन मंरकट करि हथि ॥६॥
तंत मंत मणि मौहरा, करै उपाय अनेक।
होणहार कबहु न मिटै, घडी महूरत एक ॥७॥
पढै ग्रंथ ईंद्री दवै, करैं जु बरत विधान।
आपा पर समझै नहीं, क्यौ पावै निरवाण ॥८॥
तज्यौ न परिगह सौ ममत, मंटयौ न विषै विलास।
अरे मूंढ सिर मूडि कैं, क्यौ छाड्यौ घर बांस ॥९॥
पहली मनसा हाथि करि, पाछै और इलाज।
कांज सिद्धि कौं बाधीए, पानी पहली पाज ॥१०॥
ब्रह्मचर्य पाल्यौ चहै, घंट्यौ न तिय स्यौ पेम।
एक म्यांन मैं द्वै खरग, कहौ समावै केम ॥११॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

असन विविधि बिंजन सहित, तन पोषित थिर जानि।
दुरजन जन की प्रीति ज्यों, दैहै दगौ निदानि ॥१२॥
दिये न दान सुपत्त कौं, किये न व्रत उरि धारि।
आयौ मूंठी बाधि कैं, जासी हाथ पसारि ॥१३॥
जौ नर जीवन जांनिया, अर जानि न रख्या कीन।
व्रिद्ध समैं मुखि लालसो, नरभव पांणी दीन ॥१४॥
सज्जन फुनि लघु पद लहै, दुर्ज्जन कै संग साथि।
ज्यौं सब को मदिरा कहै, क्षीर कुलालनि हाथि ॥१५॥
गज पतंग मृग मीन अलि, भये अष्य बसि नास।
जाकै पांचौं बसि नहीं, ताकी कैसी आस ॥१६॥
लाभ अलाभादिक विषै, सोवत जागत मांहि।
सुद्धातम अनुभो सदा, तजै सुधीजन नांहि ॥१७॥
कोटि जनम लौं तप तपै, मन बच काय समेत।
सुद्धातम अनुभो बिना, क्यो पावै सिव खेत ॥१८॥
बजी आपदा संपदा, पूरव करम समान।
देखि अधिक पर को विभौ, काहे कुढत अज्ञान ॥१९॥
जुस्यौ पुनि संजोग ते, दस विधि विभौ बिलास।
पुनि घटत घटि जाइगौ, गिनत मूंढ थिर तास ॥२०॥
जब लौं बिभौ तलाव जल, घटै न खरचत धीर।
तब लौं पूरब पुन्नि की, मिटै नहीं तलसीर ॥२१॥
जोग भोग हिंस्या करम, करत न बंधत जीव।
रागादिक संजोग तै, वरन्यो बंध सदीव ॥२२॥
लागि लागि मांगत फिरत, मुक्षत दीन कुदेव।
तोहि कहां सो देहिगे, मूढ करत तू सेव ॥२३॥
राग दोष जाकै नहीं, निसप्रैही निरदंद।
तासु देव की सेव सों, कटै करम के फंद ॥२४॥
ठौर ठौर सोधत फिरत, काहे अंध अबेव।
तेरे ही घंट मैं बसै, सदा निरंजन देव ॥२५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोवत सुपिनौं साच सो, जागत जान्यो झूंठ ।
यहै समुझि संसार स्यौ, करि निज भाव अपूठ ।।२६।।
पढत ग्रंथ अति तप तपत, अब लौं सुनी न मोष ।
दरसन ज्ञान चरित्त स्यौ, पावत सिव निरदोष ।।२७।।
निकस्यो मंदिर छांडिकै, करि कटुंब को त्याग ।
कुटी मांडि भोगत विषै, पर त्रिय स्यौ अनुराग ।।२८।।
पुनि जोग तैं संपदा, लहि् आंनत मन मोद ।
सो तौ लैंजै है मुगध, परभव नरक निगोद ।।२९।।
कोटि वरस लौं धोइये, अढसढि तीरथ नीर ।
सदा अपावन ही रहै, मदिरा कुंभ सरीर ।।३०।।
फटे वसन तनहूं लटृयौ, घरि घरि मांगत भीख ।
बिना दिये को फल यहै, देत फिरत यह सीख ।।३१।।
पाप प्रांन पर पीडतैं, पूंनि करत उपगार ।
यहै मतौ सब ग्रंथ कौ, शिव पथ साधन हार ।।३२।।
खोई खेलत बाल वै, तरुनायौ त्रिय साथि ।
बृधि समैं व्यापी जरा, जप्यो न गो जिन नाथ ।।३३।।
जा पैंडै सब जग तगौ, अरजै है सब लोग ।
ता पैंडै जैहै तु हूं, कहा करत सठ सोग ।।३४।।
किये देस सब आप बसि, जीति दसौ द्रगपाल ।
सबही देखत लै चल्यै, एक पलक में काल ।।३५।।
मिलै लोग बाजा बजै, पांन गुलाल फुलेल ।
जनम मरण अरु व्याह मै, है समान सो खेल ।।३६।।
परम धरम सरवरि बसै, सज्जन मीन सुमांनि ।
तिय बडछी सौ काढिये, मनमथ कीर बखानि ।।३७।।
ईंद्री रसना जोग मन, प्रवल कर्म्म मैं मोह ।
ए अजीत जीतै सुभट, करहि मोष की टोह ।।३८।।
होत सहज उतपात जग, विनसत सहज सुभाइ ।
मूंढ अहंमत्ति धारि कै, जनमि जनमि भरमाइ ।।३९।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कांपत देखै सलिल मैं, गड्यौं थंभ जल तीर।
त्यौं परजाय बिनास तैं, मानत द्रव्य अधीर ॥४०॥
सीए समूरत साधि सब, करत काज संसार।
मूंढन समुझै भेद यहु, सुघरै सुघरन हार ॥४१॥
दुरजन नर अरु अगनि कौ, जानहु एक सुभाव।
जाही गहर वासि है, ताही देत जराइ। ४२॥
करत प्रगट दुरजन सदा, दोष करत उपगार।
मधुर सचिक्कण पोष तैं, करत मार ज्यो मार ।.४३॥
लागि विषै सुख कै विषै, लखै न आतम रूप।
इह कहवति साची करी, पर्यौ दीप लैं कूप ॥४४॥
सुजस बड़ाई कारणैं, तजै मोक्ष सुख कोइ।
लोह कील के लेन कौं, ढाहत देवल सोइ ॥४५॥
तब लौ विषै सुहावनौं, लागत चेतन तोहि।
जब लौं सुमति बधू कहै, नँही पिछानत मोहि ॥४६॥
ज्यौं धंतूर मांतौ लखै, मांटी कनक समांन।
त्यौं सुख मांनत विषय सौं, संगति कुमति अग्यान ॥४७॥
पाप हरन जिन पाप करि, करुनां कर न बिनास।
किते न लागे तीर तरि, तजि तजि आसापास ॥४८॥
हरैं हरैं सुद्धरत हरि, कम्मं कम्मं ते कम्मं।
सेय चरन सिव सुख करन, इहो बडो जागि धम्मं ॥४९॥
बिषै आस पासा बंध्यौ, आस पास जग जीव।
ताही विषै विलास कौ, उद्यम करत सदीव ॥५०॥
करत पुन्य सौ हेत जो, तजि कै पापारंभ।
सो न जीति है मोह कौं, गड्यौ जगत रणथंभ ॥५१॥
षट विधि त्रस थावर बसै, स्वर्ग मध्य पाताल।
सबही जीव अनादि के, परे मोह गल जाल ॥५२॥
उपजै द्रव्य सुकष्ट तैं, खरचत कष्ट बखानि।
कंष्ट कष्ट करि राखिये, द्रव्य कष्ट की खानि ॥५३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देव ग्रंथ गुरु मंत्र फुनि, तीरथ बरत विधान।
जाकी जैसी भावना, तैसी सिद्धि निदान ॥५४॥

मिलि कैं कनक कु धातु सौं, भयौ बहुत विधि बांन।
त्यौ पुद्गल संजोग सौं, जीव भेद परवांन ॥५५॥

स्यांम रंग तैं स्यामता, फटक पखान न होइ।
त्यो चेतन जड जोग तैं, जडता लहै न कोइ ॥५६॥

खीर नीर ज्यों मिलि रहे, ज्यौं कंचन पाखान।
त्यों अनादि संजोग भनि, पुदगल जीव प्रवान ॥५७॥

सिव सुख कारनि करत सठ, जप तप बरत विधान।
कर्म्म निर्ज्जरा करन कौ, सोहं सबद प्रमान ॥५८॥

तजै अर्थ संपति लखै, परखै बिषै अजांन।
ज्यों गजमोती तजि गहै, गुंजा भील निदान ॥५९॥

दुर्जन संगति संपदा, देत न सुख दुख मूल।
करै अधिक उर जगत मैं, ज्यौं अकाल के फूल ॥६०॥

सज्जन लहे न सोभ कौं, दुर्ज्जन संगति सेत।
ज्यौं कुंजर दर्प्पन बिषै, हीन दिखाई देत ॥६१॥

सोरठा— इहै जलधि संसार, चढि मुनि ग्यान जिहान पर।
तत छिन पंहुचै पार, प्रबल पवन तप तपत जंह ॥६२॥

दोहा सज्जन संगति दुर्जन के, दोष अदोष लहोत।
ज्यों रजनी ससि संग तै, सबै स्यामत खोत ॥६४॥

जांहि जगत त्यागी कहत, ता सम किरपन कौन।
सांची पूरब जनम की, मरत करत हू गौन ॥६४॥

खाइ न खरचै लाछि कौं, कहै कृपन जग जांहि।
बड़ो दानि वह मरत ही, छोडि चल्यो सब ताहि ॥६५॥

सिव साधै परिगह सहित, विषय करत वैराग।
उरग सेइ चाहत अमी, उत्तमता मुखि काग ॥६६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बांम अंग बामा बसै, गदा चक्र करि ताहि।
अपं बसि कियो न काम जै, कहै जगत पति ताहि ॥६७॥

महा मल्ल मनमथ हियो, ध्यान असनि उरि दाहि।
ह्वै अकांम निरभै भये, गनौ जगत पति ताहि ॥६८॥

चेतन तेरैं मांन को, दोष प्रगट जगि जोइ।
दरसत वाँकी दीठि ज्यों, चंद एक तै दोइ ॥६९॥

ग्रीषम बरषा सीत रिति, मुनि तप तपत त्रिकाल।
रतनत्रय बिनु मोक्ष पद, लहै न करत जंजाल ॥७०॥

रतनत्रय धारी अवर, केवल ग्यानी आज।
पंचम कालि न पाइए, भवदधि तरन जिहाज ॥७१॥

केवल ग्यांनी के बचन, केवल ज्ञान समान।
वरतै अज परंपरा, पहुंचावै निरवान ॥७२॥

यों बरतै परिगह विषै, सम्यक दिष्टी जीव।
ज्यों सुत अंतर भेद सौं, पोखै धाय सदीव ॥७३॥

जगत भुजंगम भो सहित, विष सम विषै वखांनि।
रतन त्रय जुगपति इहै, नाग दमनि उरि आंनि ॥७४॥

भए मत्त सो मत्त जे, ते मति वाले जीव।
गही टेक छूटै न ज्यों, मरकट मूंठि अतीव ॥७५॥

परदरा परद्रव्य मल, लग्यो चीकनैं चित्त।
मिटै न मीडै सलिल सौं, मंजन करत सुमित्त ॥७६॥

जो तू मन उज्जल कर्‌यो, चाहै इहै उपाइ।
पर दारा पर द्रव्य सौं, उलटि अलख गुनगाइ ॥७७॥

धोवत देह न धोइए, लगी चित्तरज गूढ।
दर्प्पंण के प्रति बिंब मल, मांजत मिटै न मूढ ॥७८॥

करि कछु सुक्रित तरुन वै, पीछै फुरै न कोइ।
व्यापत जरा तिजर्ज्जरा, अंगल पंगज होइ ॥७९॥

जगत चाक त्रिय कील दिढ, मिथ्या भाव कुंभार।
माटी पिंड सुराइ भनि, भाजन बिबिध प्रकार ॥८०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हाड मांस विष्टा दिथे, भरी कोथरी चांम।
ताहि कुकवि वर्न्नन करै, चंद मुखी कहि नांम ॥८१॥
सुद्धातम अमृत अचै, भए सांत मुनि सूरि।
तिनहिं न व्यापै जगत को, दुख दावानल मूरि ॥८२॥
मूंढ विषै सौं सुख कहै, विषै न सुख को हेत।
स्वांन स्वादि निज रुधिर को, कहै हाड रस देत ॥८३॥
मूंढ अपुनपो देह सौं, कहै इहै सुख खांनि।
सो तो सुर गीत हू विषै, महाकष्ट की दांनि ॥८४॥
रतन त्रय संपति अखै, ताहि न लखै गंवार।
भूमि विकार विलोकि कैं, मांनत संपति सार ॥८५॥
नरकै नरकैं जान को, उर को उपजो त्रास।
तो काहे को सेव हो, वहु बिधि विषैं विलास ॥८६॥
गनै न दुख परलोक को, सेवत विषै गंवार।
सब ही डर को लोपि कैं, ज्यौं पय पिवत मंजार ॥८७॥
ज्ञानी को तप तुछहू, करै मोक्ष सुख कार।
ज्यौं थोरै अक्षर सुकवि, ठानै अरथ अपार ॥८८॥
मोह बधक भव बनि बसो, वाम बागुरा जांनि।
रहै अटकि छूटै नही, मृग नर मूंढ वखानि ॥८९॥
लै विराग करवाल करि, भव वनि बसो निसंक।
जोति सबै अप बसि किये, मोहादिक अरि बंक ॥९०॥
ज्यौं बरिषा रिति जेवरी, विनु ही जल वल हीन।
त्यौं विषई वनिता निरखि, चित्त वक्र गति लीन ॥९१॥
पिसुन प्रेम नौसर वचन, ह्वै उतंग घटि जांहि।
सूधि छांह जुग जाम सम, बढै सु छिन २ मांहि ॥९२॥
चंदन लेपादिक करै, सीतल जनत अभंग।
मिटै न ग्रीषम उषमा, विनु सज्जन के संग ॥९३॥
कनक खात पावत कनक, मद को करै सुन्याय।
इह अपुव्व मद कामिनी, चितवत चित बौराय ॥९४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संपति खरचत डरत सठ, मत संपति घटि जाय।
इह संप्रति सुभ दान दी, बिलसत बढत सवाइ ॥९६॥

छंद मत्त अर अरथ की, जहां असुधता होइ।
तहां सुकवि अवलोकि कैं, करहु सुद्ध सब कोइ ॥९७॥

उतनी सांगानेरि कौ, अब कांमां गढ वास।
तहां हेम दोहां रचे, स्वपर बुधि परकास ॥९८॥

कामां गढ़ सू बस जहां, कीरति सिंघ नरेस।
अपने खग बलि बसि किए, दुर्ज्जन जितेक देस ॥९९॥

सतहत्तर पचीस कौ. बरतै संवत सार।
कातिग सुदि तिथि पंचमी, पूरन भयो विचार ॥१००॥

एक आगरे एक सौ, कीये दोहा छंद।
जो हित दै बांचै पढै, ता उरि बढै अनंद ॥१०१॥

॥ इति हेमराज कृत उपदेश दोहा शतक संपूर्ण ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवचनसार भाषा (पद्य)

रचयिता–पाण्डे हेमराज

अथ प्रवचनसार की भाषा लिख्यते ।

छप्पय

स्वयं सिद्धि करतार करै निज करम सरम निधि ।
आपै कारण स्वरूप होय साधन सावै विधि ।।
संप्रदछना धरै आपको आप समप्पै ।
अपाराव आपतैं आपकों कर थिरथप्पै ।।
अधकरण होय आधार निज बरते पूरण ब्रह्म पर ।
षटविधि कारिक मय विधि रहित विविध येक अजर अमर ।।१।।

दोहा

महातत्व महनीय मह महाधाम गुणधाम ।
चिदानंद परमात्मा, बन्दूं रमता राम ।।२।।
कुनय दमन सुवरनि अवनि रमिनि स्यात पद शुद्ध ।
जिनवांनी मांनी मुनिय, घट में करो हू सुबुद्धि ।।३।।

चौपई

पंच इष्ट पद के पद बंदी, सत्य रूप गुण गण अभिनंदी ।
प्रवचनसार ग्रन्थ की टीका, वालबोध भाषा सयनीका ।।४।।
रचों आप परकों हितकारी, भवि जीव आनंद बिथारी ।
प्रवचन जलधि अरथ जल लेह, मति भाजन समान जल येह ।५।

दोहा

अमृतचंद कृत संस्कृत, टीका अगम अपार ।
तिस अनुसार कहों कछुक, सुगम अलप विस्तार ।।६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वर्धमान स्तुति–कवित्त

सुर नर असुर नाथ पद वंदत, धातिय करम मैल सब धोये।
भयो अनंत चतुष्टय परगट, तारन तरन विरतिहू लोये।।
आतम धरम ध्यांन उपदेसक, लोकोलोक प्रतष्य जिन जोये।
असे वर्धमान तीर्थङ्कर वंदे चरण भरम मल खोये।।७।।
बाकी तीर्थङ्कर तेईस, सिद्धि सहित वंदू जगदीश।
निर्मल दर्शन ज्ञान सुभाव, कंचन शुद्ध अग्नि जिम ताव।।८।।
बंदो शूर अवर उवझाय, सकल साधु मुनि वंदू पाय।
दरशन ज्ञान चरन तप बीज, पंचाचार सहित शिव कीज।।९।।

खेत्रानं नमस्कार कथन–चौपाई

महा विदेह क्षेत्र है जहां, वरतमान जिन है तसु तहां।
ते सबही बंदू समुदाय, जुदे जुदे फुनि बंदू पाय।।१०।।

पंच परमेष्ठी समुच्चय, नमस्कार कथन–छप्पय

नमति आदि अरहंत सिद्ध फुनि सूरन नत पद।
उपाध्याय फुनि नमित नमित सब साधु गलत मद।।
यह परम पद पंच ज्ञान दरशन थानक नित।
तास रूप अवलंबि सुद्ध चारित्र प्रगट हित।।
फुनि है सराग चारित्र कै गरभित अंस खाय मल।
सो करम बंध सब त्याग करि, कहू शुद्ध चारित्र फल।।११।।
दरशन ज्ञान प्रधान जीव चारित्र चरन ध्रुव।
सुही भेद के द्वैक थिति वीतराग सराग हुव।।
वीतराग शिव उदय करत अविचल अखंड़ पर।
सुर नर असुर विभूति देत चारित्र सराग घर।।
तातै सराग संसार सार फल वीतराग सुख मोक्ष वर।
यहु भेद भाव अवलोकि के हेय उपदेय करहु नर।।१२।।

अडिल्ल

जो निहचे चारित्र धरम को आचरै।
मोहादिक तें हीन साम्य भावनि धरै।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निहचे चारित्र धरम साम्य है एक ही।
वीतराग उपदेश बात हमहुं कही ॥१३॥

दोहा

यहु परिणामी आतमा त्रणवत चारित रूप।
ता समय चारित्र सों, तनमय एक सरूप ॥१४॥
जैसे गुडिका लोह कूं, होत अगनि संजोग।
ता समय अवलोकि ही, अग्नि रूप सब लोग ॥१५॥
जैसे इंधण जोग तैं, अगनि इंधनाकार।
तैसे परमातम भयो, चारित जोग अधार ॥१६॥
जीव शुभाशुभ सुद्ध सों, प्रणवत तन्मय होय।
ता समय अवलोकिये, वह एकता सोय ॥१७॥

कवित्त

विषय कषाय असुभ रागादिक पूजा दान भगति सुभ भाव।
चारित शुद्ध शुद्ध परिणामी, जहां न अन संजोग कहाय ॥
यह तीन उपयोग लहे जिह तिह तैसी विधि करै लखाय।
सो चारित्र धरत परमातम, चारित रूप एव शिबराय ॥१८॥

दोहा

रक्तादिक संजोग तै, फटिक बरन घन होत।
त्यों उपयोगी आतमां, बहुविधि करन उद्योत ॥१९॥
जैसे करनी आचरे तैसो कथन कहाय।
करनी त्यागत आतमा निहचै शुद्ध सुभाव ॥२०॥

सवैया

बिना परिणाम अस्ति रूप न द्रव्य को।
कोऊ बिना द्रव्य परिणाम अस्ति न बखानिये ॥
द्रव्य गुन पर्याय येक ठोर होत तब।
वस्तु अस्ति रूप सदा काल परवानिए ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे दूध दही गोरस पर्याय दूध दही घृत हीन गोरस न मानिये ।
तैसे परमात्मा द्रव्य गुन पर्याय शुभाशुभ रूप सो संजोग परवानिये ।।२१।

अडिल

पीत तादि गुन कनक द्रव्य के जानिए ।
कुंडलादि पर्याय बहुविधि मानिए ।।
द्रव्य गुन पर्यांय अस्ति तैं कनक है ।
ईन की अस्ति न जहां कनक नवि तनक है ।।२२।।

दोहा

शुद्ध स्वरूपाचरन तैं, पावत सुख निरवांन ।
शुभोपयोगी आत्मा, स्वर्गादिक फल जान ।।२३।।

वेसरी छंद

विषय कषाई जीव सरागी करम बंध की परनति जागी ।
जहां शुद्ध उपयोग बिदारी, ताते विवधि भांति संसारी ।।२४।।
तपत घीव सीचत नर कोई, उपजत दाह सांति नही होई ।
त्योंही शुभोपयोग दुख सानै, देव विभूति तनक सुख माने ।।२५।।
शुभोपयोग शक्ति सुनि भाई, इन्द्रयाधीन स्वर्ग सुखदाई ।
छिन में होई जाई छिन माहे, शुद्धाचरण पुरुष क्यों चाहे ।।२६।।

छप्पय

फटत वसन तन लटित घटित अद्दखद्दु दर दर ।
अधिक क्रूर फुनि कुटिल भीम सम फिरत सुघर घर ।।
कटुक वयन दुःख दयन नयन सुख कबहु न सुत्तव ।।
सरस अन्नि भरि उदर पूरि भोजन नहि नुत्तव ।
अवलोकि विभव परताप पर कुट्टि कुट्टि छत्तिय मर ।
यह असुभ करम परतक्ष फल धरमत पुरुष न कर ।।२७।।
कीट पतंग लटादि स्याल संघादि विवधि पद ।
वलय तुरंग कुरंग परस्पर वैर भयंकर ।।
सीत घाम दुख जाय नगन तन भार पीठ धर ।
बकरि पारधिय बंधि देत दुख पराधीन पर ।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यम कथन कहां लों कीजिए अधिक भास तिरजंचगति ।
सो असुभ करम परतक्ष फल तजत पुरुष धरमज्ञ मति ।।२८।।
छेद भेद तापादि भूख तिस पीडत प्रानी ।
मारि मारि फुनि बांधि तहां सुनि एवहु वांनी ।।
जनम जनम के वैर उदय देखिय विवधि पर ।
एक समय अंतर न होय दुख बीच सहत नर ।।
यम कथन नरक वरनन करत पारन पाय अथाह गत ।
सो असुभ कर परतक्ष फल तजत पुरुष धरमज्ञ मत ।।२६।।

दोहा

नरक कुनर तिरजंच गति शुभ उदय महि जीव ।
ताके दुख पूरन न ह्वै, बरनन करत सदीव ।।३०।।

बेसरी छंद— अशुभ उपयोग उदे की बातै, भ्रमत जीव दुख पावत जात ।
त्याग रूप सर्वथा बखान्यो, याते उपादेय सुभ मान्यो ।।३१।।
काहू इक काहू परकाटा, शुभोपभोग चारित्त की धारा ।
क्रम क्रम उदय मोक्ष रस भीनों, तातै उपादेय शुभ कीनों ।।३२।।

सोरठा

अशुभपयोगी जीव चारित्त घातिक सर्वथा ।
है भव बास सदीव, ज्ञानवंत नहीं आचरै ।।३३।।

अडिल्ल

यही शुभाशुभ नाण विचारि विलोकिये ।
आचारिय शुभ राग अशुभ को रोकिए ।।
निहचै दोउ त्याग जगत को पूरि है ।
शुद्धातम परतक्ष दोहू तैं दूरि है ।।३४।।

दोहा

सबही सुख तै अधिक सुख है आतम आधीन ।
विषयतीत बाधा रहित, शुद्ध चरन शिव कीन ।।३५।।
शुद्धाचरन विभूति सिव, अतुल अखंड परकास ।
सदा उदं इके रस लिये, दर्शन ज्ञान विलास ।।३६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बेसरी छन्द

ज्यों परमातम शुद्धोपयोगी विषय कषाय परहित उर योगी ।
करै न उत्तर पूरव मानै, सहज मोक्ष को उद्यम ठानै ।।३७।।

दोहा

इन्द्र नरिंद्र फरिणद्र सुख, रुचै इन्द्रियाधीन ।
शुद्धाचरन अखंड रस, उपमा रहित प्रवीन ।।३८।।

सवैया

जीव अजीव पदारथ ज्ञायक केवल ज्ञान सिद्धान्त वखानै ।
भोग विषय अभिलाष तजै, तप संजम राग बिना उर ठानै
इष्ट अनिष्ट संजोग समान सदा निरबंध क्रिया परवानै ।
शुद्धपयोग मई मुनिराजसु तीनहूं लोक बडे कर मानै ।।३९।।

कुंडलिया

शुद्धपयोग प्रसादतैं करम घातिया नासि ।
सर्वज्ञेय ज्ञाता भये केवल ज्ञान प्रकासि ।।
केवल ज्ञान प्रकासि छंडि करि पराधीन सुख ।
तिहां स्वयम्भू नाम साधि षट्कार आप रुख ।।
सकल सुरासुर पूजि ज्ञान दरसन रस भोगी ।
पायो निरमल रूप जानि मुन सुद्धपयोगी ।।४०।।

बेसरी छंद

करता करम करन सुनि भाई, संप्रदान वच यो सुखदाई ।
अपादान अधिकरण विख्याता, निहचै षट्कारक शिवदाता ।।४१।।
निहचै षट् कारक ज्यों होई, आप शक्ति तै साधिक सोई ।
पराधीन साधिक व्यवहारी, अथिट रूप षट्कारक धारी ।।४२।।

सवैया

अतुल अखंड अविचल तिहूकाल सदा सासतो ।
स्वरूप ध्रोव्य भाव परकानिये शुद्ध उपयोग के प्रसाद ते स्वभाव पाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह उतपाद अविनास रस मानिये ।
हूते जे विभाव परिणाम राग द्वेष मोह ।।
कीये है विनास फेर उदै न बखानिये ।
असो है स्वयंभू भूतानागत वर्तमान ।।
उत्पाद व्यय ध्रौव्य येक समय जानिये ।।४३।।

दोहा

शुद्ध स्वभाव उपजत जाहां तहां असुद्ध को नास ।
ध्रौव्य रूप परमात्मा, येक समय परकास ।।४४।।
सर्व द्रव्य परजायतैं उत्पति नास बखांनि ।
तातैं जीवादिकन की सिद्ध होत परवान ।।४५।।
सत्ता बिन कोऊ द्रव्य, सधत न अस्ति स्वरूप ।
उतपति थिरता नासतैं, सत्ता सधत अनूप ।।४६।।

छप्पय

कबहू देव नर कबहु, कबहु तिर्यंच नरक कबहु ।
पुग्गल उत्पति नास प्रकट जग जीव करत सबु ।।
कंकणादि आभर्णं कनक उत्पाद नास हुव ।
कुंडव कर वस राव मृतका बिवधि भेद हुव ।।
यह उदय अस्ति संसार मधि सर्व द्रव्य उर आनिए ।
उत्पाद नास गुन रहित जबु तबु जग लोप बखानिये ।।४७।।

दोहा

सर्व द्रव्य परजाय करि उत्पति नास सिद्धंत ।
निज निज सत्ता सव मगन यह उपदेस करंत ।।४८।।

सोरठा

उत्पति नास बखानि काहे कूं तुम करत हो ।
ध्रौव्य भाव परवान असे क्यों न कहो सदा ।।४९।।
घट कुंडव नर देव कंकण कुंडल दूध दधि ।
परते इतने भेव, उत्पादिक गुन रहित ।।५०।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौपाई

सिद्ध अवर संसारी जीव ज्ञान भाव करि ध्रौव्य सदीव ।
ज्ञेयाकार ज्ञान परजाय उत्पादादि सधत समवाय ।।५१।।

सवैया-३१

कीयो है विनास जिन घातिया कर्म च्यार ।
उदयो अनंत वर वीर तेज धरि कै ।।
इन्द्रिया रहित ज्ञानानंद निज भाव वेदि ।
ममता उछेदि पराधीन सुख हरि कै ।।
असे भगवान ज्ञान दर्शन प्रकासवान ।
आभर्ण भांनि निरावर्ण दशा करि कै ।।
जैसे मेघ घटातीत दीसत अखंड जोति ।
त्यों ही जीव सहज स्वभाव कर्म टरि के ।।५२।।

अडिल

भोजन सुख दुख भूख शरीर सम्बन्ध है ।
तिनकै केवल ज्ञान व्याप अबंध है ।।
उदय अतिंद्री ज्ञान सदा सुख रूप है ।
अचल अखंड अभेद उद्योत अनूप है ।।५३।।

दोहा

लोह असंगति अग्नि कै लगै न कबहू चोट ।
त्यो सुख दुख वेदक नहीं तजत जीव तन वोट ।।५४।।

अडिल्ल

केवल ज्ञान स्वरूप केवली परनए ।
सर्व द्रव्य परजाय प्रगट जग अनुभए ।।
अवग्रहादि जे भेद क्रिया करि हीन है ।।
यह अतीन्द्रीय ज्ञान सदा स्वाधीन है ।।५५।।

दोहा

जगत वस्तु छांनीन को, सब इन्द्री गुन जानि ।
अक्षातीत उदै भयो, निजाधीन निज ज्ञान ।।५६।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वेसरी छंद

इन्द्रिय विषय भोग के थानी, सपरस वर्न गंध रसवानी।
जुदे जुदे अपने रस चाहै, एक एक निज गुन अवगाहै ॥५७॥
तृपति न परत करत सुख सेती निज निज क्रम तै वर्त्ततेती।
छिन में उदय अस्त छिन मांहै, खंड खंड ज्ञान अवगाहै ॥५८॥

दोहा

आन अक्ष के काज कों करै न अक्ष जु आन।
निज निज मर्जादा लिये, वरते अक्ष प्रवान ॥५९॥
सदा अतिंद्रि ज्ञान की जानहू शक्ति अनंत।
सब इन्द्रिन के विषय सुख, एक समय झलकंत ॥६०॥

कवित्त

चेतन ज्ञान प्रवान सदा भनि ज्ञेय प्रवान ज्ञान गति जान।
लोकालोक प्रवान ज्ञेय सब तातैं ज्ञान सर्व गतमांन।
ज्यों पावक गर्भित ईंधन के दरसत ईंधन ज्ञान प्रवान।
त्यों ही छहों द्रव्य जग पूरित व्यापक भयो केवली ज्ञान ॥६१॥

दोहा

पीततादि निज गुन लियें, कुंडलादि परजाय।
ईनही के गर्भित कनक, अधिकन हीन कहाय ॥६२॥
ज्ञान प्रवानन आत्मा, मानत कुमती कोई।
हीन अधिकता मत विषै, साधत आतम सोई ॥६३॥
जो लघु आतम ज्ञानतें, ज्ञान अचेतन होय।
अधिक ज्ञान तै मानिये ज्ञान पनो जड खोइ ॥६४॥
जहा अधिकता ज्ञान की, तहां जीव लघु होय।
जेतो ज्ञाननु अधिक है सपरसादि जड सोई ॥६५॥
जहां अचेतन द्रव्य है, जान पनों तहां नास।
ज्यों पावक गुण ऊनतै, परै न जारै घास ॥६६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जुदे न पावक उष्णता, जुदे न चेतन ज्ञान ।
अधिक हीन के मान तैं, साधत भिन्न प्रवान ।।६७।।
तातैं चेतन ज्ञान सों, जहां अधिकता होइ ।
सो तू मानि अचेतना, घट पटादि विधि सोइ ।।६८।।
ज्यों पावक गुन उष्ण है, त्यों चेतन गुन ज्ञान ।
अधिक हीन जो परनवै, उपजत दोष निदान ।।६४।।
अधिक हीन नहीं आत्मा, है गुन ज्ञान प्रवान ।
यह याको सिद्धांत सब, जानहू वचन निदान ।।७०।।
सकल वस्तु जो जगत की, ज्ञान मांहि झलकंत ।
ज्ञान रूप को वृषभजिन, प्रगटत ज्ञेय अनंत ।।७१।।

कवित

ज्यों मलहीन आरसी कै मध्य घटपटादि कहिए विबहार ।
निहचैं घटपटादि न्यारे सब, तिष्टत आप आप आधार ।
त्यों ही ज्ञान ज्ञेय प्रतिबिंवित, दरसन एक समय संसार ।
निहचैं भिन्न ज्ञेय ज्ञायक कहवति ज्ञान ज्ञेय आकार ।।७२।।

अडिल

घट पटादि प्रतिबिंब आरसी मांहि है ।
निहचै घट पट रूप आरसी नांहि है ।।
त्यों ही केवल ज्ञान ज्ञेय सब भासि है ।
अपने स्वतैं स्वभाव सदा अविनास है ।।७३।।

कवित्त

ज्यों गुन ज्ञान सुही परमातम सो परमातम सो गुणज्ञान ।
धर्म अधर्म काल नभ पुग्गल ज्ञान रहित ए सदा अजांन ।
तातैं ज्ञान शक्ति परमातम ज्ञान हीन सब जड परवान ।
ज्यों गुण ज्ञान त्यों ही सुख वीरज, यों आतम अनंत गुनवान ।७४।

दोहा

ज्ञान अवर परमात्मा है अनादि सनमंघ ।
ज्ञान हीन जे जगत मैं, सबै द्रव्य जड अंध ।।७५।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छप्पय

ज्ञानी ज्ञान स्वभाव अवर जड रूप ज्ञेय सबु।
आप आप गुन रक्त परसपर मिल तन को कबु।
नयन विषय ज्यौं नयन देखिये विवधि वस्तु वहू।
विना किये परवेस जानि कर गए मरम सहू।
निहचै स्वरूप सब भिन्न भनि कथन एक व्यवहार मत।
यह ज्ञान ज्ञेय सनमंध है दुरनिवार तिरकाल गत ।।७६।।

सवैय्या ३१

जैसे नीलमणि को प्रसंग पाय स्वेत षीर।
नील रंग भासै पन न नील रंग षीर है।
जैसे नैन वस्तु को विलोकि व्यापि रहै सब
यद्यपि तथापि भिन्न पंकज ज्यों नीर है।
मानों ज्ञेय भावकौं उखारि ज्ञान गिलि गयो
ऐसी हीं विचित्रता अखंडित सधीर है ।।७७।।
देखन जानन की शक्ति ज्ञान नैन मैं होत।
तातै व्यापत ज्ञेय सौं, निहचै भिन्न उद्योत ।।७८।।
जैसे दर्पण दरसि है घट पटादि आकार।
निहचै घट पट रूप सों, दर्पण है अविकार ।।७९।।

बेसरी छंद

जहां न ज्ञेय ज्ञान मैं आवै, तहां न केवलज्ञान कहावै।
जो केवल सब ज्ञेय प्रकासी, तो सब ज्ञेय ज्ञान मैं भासी ।।
जब घट पट दर्पण मैं भासै, तब दर्पण सब नाम प्रकासे।
घट पट प्रतिबिंवत नहि होई, दर्पण नाम न भासै कोई ।।

दोहा

घट पट दर्पण मैं भरा, दर्पण घट पट नांहि।
ज्ञान ज्ञान मैं रम रह्यो, ज्ञेय ज्ञान कै मांहि ।।८२।।

सोरठा

ज्ञेय ज्ञान सनमंध, हे काहू उपचार करि।
निहचै सवै अबंध, आप आप रस मैं मगन ।।८३।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौपाई

त्याग ग्रहणवै न परसै, केवल ज्ञान अकंपन दरसै ।
देखन ज्ञानन के गुण सेती, ज्ञायक वस्तु जगत मैं जेती ।।८४।।

दोहा

सहजि सकति है ज्ञान मैं, सर्व ज्ञेय प्रतिभास ।
त्याग ग्रहण पलटन क्रिया, ज्ञान दसा मैं नास ।।८५।।
जैसे चोखे रतन की, ज्योति अकंप प्रकास ।
सहज रूप थिरता लिये, त्यों ही ज्ञान विलास ।।८६।।
बिन इच्छा प्रतिबिंब सब, दरसै दरपण मांहि ।
त्यौही केवल ज्ञान मैं, ज्ञेय भाव अवगाहि ।।८७।।
न्यारी दरसण आरसी, न्यारे घट पट रूप ।
त्यों न्यारे ज्ञेय ज्ञायकी, यहै अनादि अनूप ।।८८।।

कवित्त

जे श्रुत भाव ज्ञान करि जांनत परमातम निज रूप वसेष ।
सो परमातम सहज स्वभावनि ज्ञायक लोकालोक असेष ।।८९।।
तातै श्री जिनवर इम भावत श्रुत भावी श्रुत केवल रेख ।
केवल ज्ञान अवर श्रुत केवल दोउ वेदत आतम भेष ।।
पूरन भाव अनंत सक्ति करि बेदत प्रगट केवली ज्ञान ।
श्रुत केवल केतीक शक्ति तै क्रमवर्त्ती वेदत परवान ।।
दोउ एक ज्ञान निहचै भनि, भेद भाव आवरण बखान ।
जैसे मेघ घटा आछादित, दीसत अधिक हीन दुति भान ।।९०।।

अडिल

मतिज्ञानादिक भेद एक ही ज्ञान के ।
ज्यों बादल आवरन ह्वै रहै भान के ।।
श्रुत केवल सामान्य विसेष विवेक है ।
निहचै ज्ञायक जोति ज्ञान रवि एक है ।।९१।।

कवित्त

जिनवर कथित वचन की पंकति द्रव्य सूत्र कहिए परवान ।
ते सब वचन स्वरूप जज्ञतम ताकै निमित पाय वह ज्ञान ।

Gaṇesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सोई भाव सूत्र निहचै भनि द्रव्य सूत्र व्यवहार बखान।
ता नय चरन ज्ञान परमातम भिन्न भेद भावै भगवान ॥९२॥

दोहा

द्रव्य सूत्र पुग्गल मई जामैं वचन विलास।
निर्विकल्प परमात्मा क्यों वनि है इक वास ॥९३॥
द्रव्य सूत्र के निमित करि, उपजत ज्ञान प्रवान।
तातैं श्रुत व्यवहार नय, गर्भित ज्ञान बखान ॥९४॥
श्रुत भव गाहक ज्ञान को, लाहै यहै व्यवहार।
निहचै उतपति ज्ञान की, ज्ञान मांहि निरधार ॥९५॥
जाणिए शक्ति है जीव मैं, सोही ज्ञान बखान।
जीव जानि है ज्ञान तैं, वनै ज आतम जानि ॥९६॥
घट पटादि प्रतिबिंब सब, दरसत दर्पण मांहि।
त्योंही ज्ञान प्रकास तैं, ज्ञेय भाव अवगाहि ॥९३॥
ज्ञानन आतम ज्ञान तैं, विना ज्ञान जड़ जीव।
जीव ज्ञान की भिन्नता, कुमती कहे सदीव ॥९८॥
जीव ज्ञान की भिन्नता, साधत कुमति कोय।
जाकै मन आतम द्रव्य, ज्ञान हीन जड़ होय ॥९९॥
घट पट जेते जगत मैं, प्रगट अचेतन द्रव्य।
समय पाय ये ह्वोयगे, चेतन रूपी सव्वै ॥१००॥

× × × × × × ×

अन्तिम पाठ—

मूल ग्रन्थ कर्त्ता भए, कुंदकुंद मतिमान।
अमृतचन्द टीका करी, देव भाष परवान ॥४२८॥
जैसो करता मूल को, तैंसो टीकाकार।
तातै अति सुन्दर सरस, वर्ते प्रवचनसार ॥४२९॥
सकल तत्व परकासनी, तत्वदीपका नाम।
टीका सुरसत देव की, यह टीका अभिराम ॥४३०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौपई

वालबोध यह कीनी जैसे, यो तुम सुनहु कहु मै तैसे ।
नगर आगरे मैं हितकारी, कौंरपाल ज्ञाता अविकारी ।।४३१।।
तिन विचारि जिय मैं यह कीनी, जो भाषा यह होय नवीनी ।
अलप बुद्धि भी अर्थ बखानै, अगम अगोचर पद पहिचानै ।।४३२।।
इह विचार मन मैं तिहा राखी, पांडे हेमराज सों भाषी ।
आगै राजमल्ल ने कीनी, समयसार भाषा रस लीनी ।।४३३।।
अब ज्यो प्रवचन की ह्वै भाषा, तो जिन धरम वधै वृष साखा ।
तातै कहू विलंबन कीज्ये, परम भावनां अंग फल लीज्ये ।।४३४।।

दोहा

अवनीपति बंधहि चरन, सुगय कमल विहसंत ।
साहजिहां दिन कर उदय, अरिगण तिमरन संत ।।४३५।।

सोरठा

निज सुवोध अनुसार, असे हित उपदेश सों ।।
रची भाष अविकार, जयवंती प्रगटो सदा ।।४३६।।
हेमराज हित आनि, भविक जीव के हित भणी -
जिणवर आण प्रवान, भाषा प्रवचन की करी ।४३७।।

दोहा

सत्रहसै नव उत्तर, माघमास सित पाष ।
पंचमि आदितवार कों, पूरन कीनी भाष । ४३८।।

इति श्री प्रवचनसार भाषा पांडे हेमराज कृत संपूर्ण । लिखतं दलसुख लुहाड्या लीखी सवाई जयपुर मध्य लिखी । श्री श्री श्री ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवचनसार भाषा (कवित्त बंध)

रचयिता–हेमराज गोदीका

अथ श्री प्रवचनसार सिद्धान्त कवित्त बंध भाषा लिखते/अथ परमातमा को नमस्कार

अरिल्ल छन्द

ध्याय अगनि करि कर्म कलंक सबै दहै
नित्त निरंजन ग्यान सरूपी ह्वै रहै ।
व्यापक ज्ञेयाकार ममत्त निवारि कै,
सो परमातम देव नमौं उर धारि कै ।।१।।

अथ आदिनाथ स्तुति सवैय्या—31

आदि उपदेश सिव साधन बतायौ, सोइ गावत सुरेश जाम तारन तरन है ।
जाके ग्यान मांहि लोकालोक प्रतिभासित है,
सांभित अनुरूप कंचन वरन है ।
जुगल धरम की धरनि के निवारन कौ,
आतम धरम के प्रकास कु करन है ।
असो आदिनाथ हेम हाथ जोरि वंदत है,
सदा भवसागर मैं सबको सरन है ।।२।।

अथ पंच परमेष्टी को नमस्कार—दोहरा

अरिहंतादिक पंच पद, नमहुं भक्ति जुत तास ।
जाके सुमिरन ध्यांन सौ, लहै स्वर्ग सिव बास ।।३।।

अथ सरस्वति स्तुति—मरहटी छंद

वंदौ पद सारद भवदधि पारद सिव साधन को खेत,
निरमल बुधिदाता जगति विख्याता सेवत मुनि धरि हेत ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सो जिनवर बानी त्रिभुवन मांनी दिव्य वचन मंडार।
हौं फुनिवर पांऊ कवित्त बनाऊं पूरन प्रवचनसार ।।४।।

अथ कवित्रय नाम छप्पय छन्द

कुंदकुंद मुनिराज प्रथम गाथा वंघ कीनो,
गरभित अरथ अपार नाम प्रवचन तिन्ह दीन्हौ।
अमृतचंद फुनि भये ग्यान गुन अधिक विराजित
गाथा गूढ विचारि सहंस्कृत टीका सर्जित।
टीका जुमांड जो अरथ भनि बिना विबुध को ना लहै
तव हेमराज भाषा वचन रचित वालबुधि सरदहै ।।५।।

वेसरी छंद

पांडे हेमराज कृत टीका पढत पढन सबका हित नीका।
गोपि अरथ परगट करि दीन्हौ सरल वचनिका रचि सुख लीन्हौ ।।६।।

चौपई

टीका तत्व दीपका नाम, हरत अग्यांन तिमर सब धाम।
जामै दरव कथन अधिकार, पढत प्रगटत ग्यांन अपार ।।७।।

अथ कवि लघुता कथन—सवैय्या ३१

जैसे कोऊ बालक बिलोकि ससि बिंब दुति।
करै कर ऊरध उचकि भरे वाथि हो।
जैसे मन कायर करन कहै झूझ जहां तहां।
घन सूरि हरि हाथिन के जथि है।
जैसे कर चरन ते हीन बल खीन नर धरै,
उर उद्यम जलधि पैसि मथि है।
तैसै हैं अजान अंक मात न पिछानो जांहि,
प्रवचनसार कौ न पार कैसो कथि है ।।८।।

अथ ग्रंथ स्तुति तथा कवि लघुताई कथन सवईया—३१

जैसे करहू पर्वत को मारग विषम लहू
दीसत उतंग शृंग सैल की सी धार है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तहाँ एक चतुर सिलावट बनाय दई
पैंडीन की पंकति सुं सुगम सुढार है।
त्यौंही प्रवचनसार परमागम अगम अति
गूढ गति अरथ सु अधिक अपार है।
पंडित सटीक करि कोमल प्रकासि दयो
मेरी हू अलप मति ताकै अनुसार है ।।६।।

आगै श्री कुंदकुदाचार्य प्रथम ही ग्रंथ प्रारंभ विषै मंगलाचरण निमित्त नमस्कार करै है[1]

कवित छन्द

सुर नर असुर नाथ पद वंदित घातिय करम मैल सब धोये,
भयो अनंत चतुष्टय परगट तारन तरन विरद तिह्न लोये।
आतम धरम ध्यांन उपदेसक लोकालोक प्रतक्ष जिन जोये।
ऐसे वर्धमान तिर्थंकर वंदत चरन भरम मल खोये ।।११।।

चौपई

बाकी तिर्थंकर तेइस, सिद्धि सहित वंदौ जगदीश ।
निरमल दरसन ग्यांन सुभाव, कंचन सुद्ध अगनि जिम ताव ।।१२।।

× × × × × × × ×

अन्तिम पाठ

आगै श्रवणाभास मुनि कैसा है य कथन करै है—सवैया बाईसा

जो मुनि संयम भाव अराधि करै तप साधि सिद्धंत सवै,
जौं परमागम सो परमातम भेद विचार लहै न जवै
जो दरसैं जग मैं मुनि सौं फुनि सो मुसौ कहियेन कवै
तास बिनौ करि येन कछु तिन्ह ते नहि संमिक ज्ञान फवै ।।९४२।।

---

1. गाथा एवं उनकी संस्कृत टीका को यहां नहीं दिया गया है। केवल कवित बंध भाषा को ही दिया जा रहा हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे यथार्थ मुनि पद संयुक्त मुनि की विनायिदि क्रिया जो न करै सो चारित रहत है यह दिखावै है—

दोहरा

जो मुनिस को देखि मुनि, करै दोष दुरभाव।
सो मुनि उदै कषाय स्यौं, चारित भंग कहाव ।।९४४।।

आगै जो जाति भाव करि उत्कृष्ट है ताकौ जो आप तैं हीन आचरै सो अनंत संसारी है यह दिखावै हे—

दोहरा

जो मुनि आंन मुनीस पै, चाहै आदर भाव।
सो मुनि भवदधि तिरन कौ, लहै न कबहू दाव ।।९४६।।
कहा भयौ जो मुनि भयौ हम फुनि मुनिव्रत धार।
अैसे मुनि के गर्व ते, लहै न भवदधि पार ।।९४७।।

आगै आप जति भाव करि उतकिष्ट है। जो गुणहीन की विनयादिक करै तो चारित्र का नास होय यह दिखावै है—**दोहरा**

जो मुनि गुन उतकिष्ट धर करै जघनि सौ संग।
सो मिथ्या जुत जगत मैं, कहिये चारित भंग।.९४९।।
हीन संगति ते हीनता, गुर ते गुरता जानि।
सम ते सम गुन पाइये, यह संगति परवांनि ।।९५०।।

आगै कुसंगति मनै करै है— **विलंबित छंद**

करकै मुनि आगम ठीकै, परमारथ जानते नीकै।
तप साधि कसाय न आनै, उपयोग अकंप सुठानै ।।९५२।।
ममता तजि संजय धारै, तिर आप सु औरनि तारै।
जब लौकि को सृंग द्वानै, छिन मैं मुनि चारित भानै ।।९५३।।
जिय पावक कै संग पानी, निज सीतलता तहि भांनि।
मुनि लौकिक लक्षण जैसो, बरनै जिन आगम तैसो ।।९५४।।

नोट— ९४३, ९४५, ९५१ संख्या गाथा है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगै लौकिक मुनि का लक्षण कहै है—सवैय्या २२

जो निरग्रंथ दिक्षा धरि कै, बनवास वसै मुनि को पद धारै
संयम सील क्षमा तप आचरि जोतिक वैदक मंत्र विचारै ।
सो जग मैं मुनि लौकिक जानहु, चारित भिष्ट सिद्धांत उचारै ।
जे मुनिराज विराजत उत्तम, ते तिन्ह कौ परसंग निवारै ॥६५६॥

आगै भली संगति कोजिए यह दिखावै है—

गुन समान के गुन अधिक, तासौ करिये संग ।
जासौ सिव सुख पाइये, चारित रहै अभंग ॥६५८॥
सीतल जलधर की नमै, सीतलता न घटाय ।
त्योंही संग समान सौं गुन समान ठहराय ॥६५६॥
दै कपूर धरि छाह जल, अधिक सीत ह्वै जात ।
त्यौं ही गुर के संग ते, मुनि गुर पद कौ पात ॥६६०॥
पावक संगति सीत जल, छिनक माझ तप जात ।
त्यौं कुसंग के संग त्यौं, गुन अवगुनता पात ॥६६१॥

वेसरी छंद

पहलै सुभपयोग मुनि धारै, क्रम क्रम संजम भाव विचारै ।
जब संजम उतकिष्ट बढावै, तब मुनि परम दसा को पावै ॥६६२॥

दोहा

परम दसा धरि कै मुनी, पावै केवल ज्ञान ।
जो आनंद मैं सास्वती, चिदानंद भगवान ।६६३॥

इति श्री शुभोपयोगाधिकार पूर्ण हुवा । आगै पंच रत्न कहै है । पंच गाथानि करि । अथ पंच रत्न नाम कथन ।

वेसरी छंद

प्रथम तत्व संसार बखानो, दुतिय मोष तत्व पहिचानो ।
त्रितिय तत्व सिव साधन कीजै, सिव साधक थांनक फुनि कीजै ॥६६४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जो सिद्धंत फल लाभ बतावै, पंचम तत्व जिनागम गावै।
ये ही भव सिव की थिति साधै, अनेकांत मत ताहिं अराधै ।।६६५।।
ये ही पंच रतन जग मांहि, यहु गरंथ इन्ह की परछांही।
तातै पंच रत्न जयवंता, होह जगत मैं जिन भाषंता ।।६६६।।

अथ संसार तत्व कहै है— कवित्त

जिन मत विषै दरव लिंगी मुनि, धरि है नगन अवस्था जोई।
यै परमारथ भेद न जांनत, गहि विपरीत पदारथ सोई।
कहै यहै ही तत्व नियत नय, यौ उरमानि रहत इहि लोई।
काल अनंत भ्रमत मुंजत फल, यहु संसार तत्व जगि होई ।।६६८।।

आगै मोक्ष तत्व को प्रगट करै है— सवैय्या २३

जो मुनिराज स्वरूप विषै वरतै तजि राग विरोध दसाकौं,
जो निहचे उर आनि पदारथ नीर दयो भव वास वसाकौ।
जो न मिथ्यात क्रिया पद धारत जारत है अति मोह दसाकौ।
सो मुनि पूरन ताप दई कहिये नित मोष सरूप आसाकौ ।।६७०।।

आगे मोक्ष तत्व साधक तत्व दिखाइए है—सवैया २३

जो चउबीस परिग्रह छंडित दिव्य दिगंबर कौ पद धारै।
जो निहचे सबु जांनि पदारथ, आगम तत्व अखंड बिचारै।
जे कबहु न विषै सुख राचत, राग विरोध कलंक निवारै।
ते मुनि साधक है सिव के फुनि, आप तिरै अरु ओरनि तारै ।।६७२।।

आगे मोक्ष तत्व का साधन है तत्व सर्व मनोवांछित अर्थनि का स्थान कहै यह दिखावै है— कवित्त

जो मुनि वीतराग भावनि कौ प्रस्त हवै सो सुद्ध कही जै।
जाकै दरसत ग्यांन सुद्ध भनि ताही कै सिव शुद्ध लहीजै।
सो मुनि सुद्ध सिद्ध सम जानहु, जाके चरन नमत सुख लीज्यैं।
मन वंछित थांनक सिव साधन, करि कै भक्ति महारस पीजै ।।६७४।।

नोट—६६७, ६७१, ६७३ संख्या गाथाओं की है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आगे शिष्य जन को सास्त्र का फल दिखाय सास्त्र की समाप्ति करे है—

कवित्त

जो नर मुनि श्रावक करि याको, धारत जिन आगम अवगांहैं।
प्रवचनसार सिद्धंत रहसि को, प्राप्त होत एक छिन माहे।
भेदाभेद सरूप वस्त को, साधत सो आतम रस चाहे।
सो सिद्धंत फल लाभ तत्व वल पूरब कर्म कलंकनि दाहै ॥९७६॥

इति पंच रत्न कथन समाप्त।

अथ ग्रंथ कर्ता कवि स्तुति—दोहरा

मूल ग्रंथ करता भये कुंद कुंद मतिमान।
अमृतचंद टीका करि देव भाषा परवांन ॥९६७॥

बेसरी छन्द

पांडे हेमराज उपगारी नगर आगरे मैं हितकारी।
तिन्ह यहु ग्रंथ सटीक बनाये, बालबोध करि प्रगट दिखायें ॥९७८॥
बाल बुद्धि फुनि अरथ वखानैं, अगम अगोचर पद पहिचानैं।
अलप बुद्धि हम कवित बनाये, बुधि उनमान सवै बनि आयौ ॥९७९॥
जीवराज जिन धर्म धरैया, सबै जीव परि क्रिपा करिया।
प्रवचनसार ग्रंथ के स्वादी, रहै जहां न होत परमादी ॥९८०॥
तिन्ह उर मै विचार यहु कीयौ, प्रवचनसार बहुत सुख दीयौ।
कवित बंध भाषा जो होई, कंठ पाठ करि है सब कोई ॥९८१॥
तब हमस्युं यहु बात बखानी. कवितबंध भाषा सुखदानी।
प्रवचन कवित बंध जो होई, घर घर विषै पढै सबु कोई ॥९८२॥
इहि विधि काल बतीत करीजै, मनिष जनम को सुभ फल कीजै।
निज पर सब ही कौ सुखदाई, करिये वेग न विलंब कराई ॥९८३॥
हेमराज फुनि यहु उर आनी, अमृत सम तुम बात बखानी।
अलप बुद्धि मो मांझ गुसाई, क्यों करनौं प्रवचन के तांई ॥९८४॥
मैं नहि कवित छंद को पाठी, लघु दीरघ मै मो मति माठी।
छंद भंग गन अगन जु होई, अर पुनरुक्त सब्द भनि कोई ॥९८५॥
तिन्ह को कछु भेद नहिं जानो, कवित उचार किसी विधि ठानो।
पंडित जन अर कविता होई, मोहि विलोकि हसी मति कोई ॥९८६॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहरा

छंद अरथ गन पुनसकत, होत न जहां प्रवान ।
विबुध क्षमा करि कीजियो, सुद्ध जथा तुम्ह ज्ञान ॥१८७॥
पातिसाह ऊरंग कै, नीत धरम परगास ।
देत असीस सबै दुनी, अचल राज पदवास ॥१८८॥
जिने भूप भूपर बसै, सब सेवै दरबार ।
जाकै चादर नीत की, तनी जाय दधिपार ॥१८९॥

सवैया

सोभित जेसिंघ महासिंघ सुत कूरम कै,
अवनि कै भारसौं सुभार पीठ बनी है ।
ताकै घरि कीरति कुमार ते उदार चित,
कामांगढ राजित ज्यों राजे दिनमती है ।
जहां काम करता दीवान गर्जसिंघ,
जाति कायथ प्रवीन सवे सभा नति सनी है ।
तहां छहो मत को प्रकास सुख रूप,
सदा कामांगढ सुन्दर सरस छवि बनी है ॥१९०॥

सवैया इकतीसा

हेमराज श्रावक खंडेलवाल जाति गोत भवसा प्रगट ज्यौंक गोदीका बखानिये ।
प्रवचनसार अति सुन्दर सटीक देखि, कीये है कवित छवित रूप जानिये ।
मेरी एक वीनती विबुध कविवंत सौं, बालबुद्धि कवि को न दोष उर आनीये ।
जहां जहां छंद और अरथ अधिक हीन, तहां शुद्ध करिकै प्रवाँन ग्यांन ठानिये ॥१९१॥

दोहरा

सांगानेर सुथान को हेमराज वसबांन ।
अब अपनी इच्छा सहित, बसै कामांगढ थांन ॥१९२॥
कामांगढ सुख सुं वसइ, ईत भीत नहि थाय ।
कवित्त बंध प्रवचन कीयो, पूरन तहां बनाय ॥१९३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छप्पय

वंदौ हु गुर निरगंथ जहां तिणमत्त न परिगह।
वंदू धर्म सुसदा सवै सुख दानि सदा सह।
दोष अठारह रहित देव वंदू सो शिवंकर।
सुगुरु सुधर्म सुदेव परषि पुज्जै सुजानिकर।
भनि हेम जिनागम जेम गहि सो समकित धारक है उर।
जो कुबुद्धी कुनर मिथ्यामती सुनहि त्याग पुज्जहै अनर ॥९९४॥

अध्यातम सेली सहित, बनी सभा साधर्म।
चरचा प्रवचनसार की, करे सबै लहि मर्म ॥९९५॥
अरचा अरिहंत देव की, सेवा गुरु निरग्रंथ।
दया धरम उर आचरे, पंचम गति को पंथ ॥९९६॥

बेसरी छंद

असी सभा जुरे दिन राती, अध्यातम चरचा रसि माती।
जब उपदेस सबनि कौ लीयौ, प्रवचन कवित्त बंध तब कीयौ ॥९९७॥

दोहरा

प्रवचनसार समुद्र सरस लीन सु अरथ अपार।
लहतु सबै जे विबुध जन, मति भाजन अनुसार ॥९९८॥
सुर गुरादि सब जनम भरि, करि है अरथ विचारि।
सो फुनि पारन पावहि, प्रवचनसार अपार ॥९९९॥
जो नर उर यौ जानहि, मैं जान्यो सब भेद।
सो बालक बुधि जगत्त मैं करत अविरथा खेद ॥१०००॥
ज्यौ पावक ईंधन विषै, ज्यौ सलिता दधि छीन।
त्यौं प्रवचन मैं अरथ की, पूरतान निदांनि ॥१००१॥
कथन सु प्रवचनसार कौं, कहि कहि कहै कितौंक।
तातै कवि वरनै इतौ, मति अनुसार जितौक ॥१००२॥

आगे छंद की संख्या कहै है—कवित्त

उनसठि कवित अरिल्ल वत्तीस सुवेसरि छंद निवै अरतीन
दस पद्धरी चारि रोडक भनि, सब चारीस चौपई कीन।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दोहा छंद तीनसे साठा तामैं एक कीजिये हीन ।
गीता सात आठ कुंडलिया ए मरहठा जिनहू प्रवीन ।।१००३।।
बाईसा भनि चारि पांच चौईसा कहिये ।
इकतीसा बत्तीस एक पचीसा लहिए ।
छप्पय गनि तेईस छंद फुनि सात विलंबित ।
जानहु दस अर सात सकल तेईसा परमित ।
सोरठा छंद तेतीस सब सात सयर पचवीस हुव ।
आषाढ मास दुतीया धवल पुष्य नक्षत्र गुरवार धुव ।।१००४।।

सोरठा

सत्रहसै चौईस संवत सुभ अर सुभ घरी ।
कीनो ग्रंथ सुधीस देखि रोष कीजहु षिषा ।।१००५।।

इति श्री प्रवचनसार सिद्धंत भाषा कवित समाप्तानि । शुभं भवतु । सर्वं श्लोक संख्या २८७० । संवत १७२६ वृषे पोस सुदि १० बुधवार संपूर्णं । श्री श्री श्री ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नामानुक्रमणिका

अजितनाथ ७,४६
अगरवाल ३०,११६,११७,१२०,१५२
अभिनन्दननाथ ८
अश्वसेन १४
अनन्तनाथ १२,५५
अरनाथ १३,५८
अमृतचन्द्र २४१,२५३,२५६,२६१
अमरसी ११७,११६,१२०
अचलकीर्ति २
आचार्य सोमकीर्ति १
अमरा भौसा २२४
आनन्दराम २३०
अवरङ्ग १६८
अर्हंदवल्भसूरि ४३
अरुन १२५,१५५
औरङ्गजेब १४६
अकब्बर १४७
आदिनाथ ४५
उमास्वामी ८,३१,४३,
कल्याण सागर ३
कुन्दकुन्द २०,२८,१०५,१५२,२०६
२०८,२५३,२५६,२५७,
२६७
कुंथनाथ १३,५८
कामता प्रसाद २०१,२०२
कीरतिसिंह २४०
कौशल्या ४६
कुमुदचन्द
कौरपाल १,२०५,२०६,२०८,२०६
२५४
खडगसेन २
खण्डेलवाल २२५
गोयल ११७
गुणभद्र १५३
गुप्तागुप्त २८,१०५
गौतम २६
गारवदास ३
ठक्कुरसी १
चन्द्रदत्त १०,५१
चन्द्रप्रभ १०,५१
चतुर्भुज २०८
जैनुलदे ११७,११८,१२१,१२२,१४६,
१५४,१५५,२०५
जितारथ ४७
जितरिपु ६
जयदेवी ५४
जयकीर्ति ३
जिनचन्द ३
जगतराम २
जयसेन २१०
जहांगीर १४७,१६८

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जम्बू स्वामी ५,११३
जयकुमार ८५,८६,१२१
जीवराज २६१
जोधराज गोदीका २,२२४
जैनी ११८,१६४,२०५
जैसवाल ३,१५,३६,३८,६४,११३
तिहिंनपाल ३६,११३
तुलसी १
तिमिर लिंग १४७,१६८
दलसुख २५४
देवसेन ११६
द्रढरथ १०
धर्मनाथ १२,५६
धरसेन ५६,
धुरराजा ५०
नन्दलाल ११६,११७,११८,११६, १२१,१५१,१५४
नेमिदत्त ६१
नेमिनाथ १३,१४,६१,२१७
नेमिचन्द २,२०१,२१७
नाभिराजा १७
नंदीवर २६
नंदिसेन ५६
नंदाराणी ५३,८४
नाभिराय ४५,८१,८४
पार्श्वनाथ १४,६२
पुष्पदन्त १०,५२
पेमचन्द ११६,११७,११६,१२०,१५३
पदमप्रभु ६
पुरनमल ३
पं० विनोदकुमार २०४
पं० पन्नालाल बाकलीवाल २२१
पं० हीरानन्द २०५
पं० नारायणदास २१६
परमानन्द २०२,२१७
पद्मदत्त ४६
प्रताप ३,११४
प्रभावती ५६
बनारसीदास १,२,४१,२०३,२०५, २०६
बुलाखीचन्द ११४,११५,११६,२०१ २०२,२०३
बुलाकीदास २,११६,११६,१२१,१२२ १२३, १२६,१४६, १४७,१४६,१६४ १६८,२०१,२०५, २०६,२०७
बूलचन्द ११७,११८,११६,१२१, १२८,१५५
बूचराज १
भरत १६,२५,३२
भ० रत्नकीर्ति १
भ० ज्ञानभूषण १
भद्रबाहु १०५
भ० शुभचन्द १४७
भानु १२,५६
भरथराय ८४
मीरा १
मनोहरलाल २
माघनन्दि २८
महासेन १०,५१
मगला ४६

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मरुदेवी १७,
मिश्रबन्धु २०१
मल्लिनाथ १३,५६
मुनिसुव्रतनाथ १३,६०
मेघराय ४७,४६
महेन्द्रदत्त ५०
मरुदेवी ४५,८१,७५
महावीर १४,२६,२७,३३,३८
ब्र० यशोधर १
योगीन्दु २१५
रूपचन्द १,२०१,२०५,२०८
रामचन्द्र २
राजमल्ल २०६,२५४
राजसिंह १,
ब्र० रायमल्ल १
राघव ३
लछमा १०,५६
लालचन्द ३ ११२
लोहाचार्य ४३
वामादेवी १४,६२
वासुपूज्य स्वामी ११
विमलनाथ ११,
विश्वसेन ५७,६०
विजया ६,४६
विमला ५३
वरदत्त ५८
सुमतिनाथ ९
सिद्धारथ १४,५४,६३
सोमकीर्ति ४३
सुरजादेवी ५६
सुपार्श्वनाथ ५,५०
संभवनाथ ८,४७
सोमदत्त ५०
सावित्री ४७
सवदेवी ६२
साहिजहाँ १९८,२५४
सुन्दरी ८४
समंतभद्र १५२
सघारु १
सुदर्शन ५८
सागरमल ४,११४
सुलोचना ८५,१२१
समुद्रविजय ६२
सूरदास १,
सुग्रीव ५२,
सुभचन्द्र १५५,१९८
शक्तिकंवर ३२
शिवादेवी १८
शांतिनाथ १२,५७
शीतलनाथ १०,५२
श्रेणिक २६,२७
श्रेयांसनाथ ११ ५३
श्रीराणी ५८ /
श्रवणदास ११६,११७११९,१२०
हेमराज २,२०,११६,११८,१२०, २०२,२०२,२०४,२०७, २०८,२०९,२१०,२११, २१२.२१४,२१७,२१८ २२५,२२६,२२७,२३०
हेमराज शाह २०२
हेमराज गोदीका २२२,२२७,२२८, २३२,,२३३,२४०,२५५
हेमराज पाण्डे २०२,२२७ २३२, २२१,२५६
हेमराज (चतुर्थ) २२९
हीरानन्द २,२०६
हिमाऊँ १४४,१९८
त्रिशला १४

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ग्रंथानुक्रमणिका

उपदेश दोहा शतक २२७, २२८, २३३, २४०
एकीभाव स्तोत्र ३२
कर्मकांड भाषा २०, २४, २०१, २०७
कल्याण मन्दिर स्तोत्र ३२
गुरुपूजा २०२, २०७, २२१
चौबीसी १२४
चोरासी बोल २०७, २१४
छन्दमाला २०१
नन्दीश्वर व्रत कथा २०७, २२३
नयचक्र भाषा २०१, २०२, २०७, २१६
नेमिराजमती जखजी २०७, २२२
पाण्डव पुराण ११६, ११६, १२२, १२३, १४७, १४६, १५०, १५१, १६८, २०५, २०८
पंचास्तिकाय भाषा २०, २०२, २०५, २०७, २१६, २१७, २२६
परमात्म प्रकाश २०२, २०७
पंचाशिका २०१
प्रवचनसार भाषा ४०, ११८, १२०, १५४, २०२, २०५, २०६, २०७, २०८, २०६, २१०, २२५, २२६, २२७
प्रश्नोत्तर रत्नमाला १२४
प्रश्नोत्तर श्रावकाचार ११७, १२१, १२२, २०५
भक्तामर स्तोत्र भाषा ३२, २०१, २०७, २१२, २१३
भूपाल स्तोत्र ३२
रोहिणी व्रत कथा २०७, २२३
राजमती चुनरी २०७, २२४
वार्त्ता १२४
वचनकोश ४, ५, ६, ४५
विषापहार स्तोत्र ३२
समयसार भाषा २०७, २२४
समयसार नाटक १, २, ४०, २०५, २०७, २०८, २०६, २२४, २२६
सुगन्ध दशमी व्रत कथा २०७, २१६
सितपट चौरासी बोल २०१, २०६
समवसरण विधान २०७
हितोपदेश बावनी २०२, २०३, २०४

———

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

३५२८

नगर-ग्रामानुक्रमणिका

अगरोहा २९
अजमेर २
अयोध्या ३२, ४६, १६१
अवधपुरी ३२, ५६, ८३
आगरा २, ३, १२०, १२१, १५३, १५४, २०६, ११४, २५४, २६१
आमेर २
इन्द्रप्रस्थपुर १२२, १४९
कपिलापुरी ११, ५४
करनाट १६३
कशमीर १६३
कलिंग १६३
काकंदी १०
कामागढ़ २२५, २४०, २६२
कुरुखेत १३८
कुण्डलपुर १४, ६३
कौशंबी ५०
कोकण १६३
कोशिकपुर १३९
कोसल १६३
गजपुर १२, ५७, ५८, १३८, १४०
ग्वालियर १११
चहकहपुर ५९
चम्पापुरी ११
चन्द्रपुरी ५१
जयपुर २०४, २१७, २८१, २३०, २५४
जलपथ १४१
जहानाबाद १२१, १२२
जालन्धर १४०
जैसलमेर ३२, ३४, ३५, ४१
जंबूद्वीप १५९
तिलपथ १४१
टोडारायसिंह २
तिहुवनगिरी २
दिल्ली २, १४७, १९५
द्वारावती १३९
धर्मपुर ५६, १४५
नागौर २
पावापुर १४, ५०, १०४
पोदनपुर १९, ३२
बयाना ११७, ११९, १२०, १५२
बूंदी २२८
बैराठ १६३, १६६
मध्यदेस १५३
मध्यप्रदेश २
मालवा १६३
मुलतान २
मथुरा ५, ११३
मिथिलापुर १३, ६०, ६१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महाराठ	१५३	वीरपुरी	६२
मगधदेश	११७, १६३	वर्द्धनपुर	४, ५, १५
मंगलपुर	५०	वृन्दावन	५, ८, ११३
मन्दिरपुर	५८	वाणिकपथ	१४१
मेदपाट	१६३	सांगानेर	२, २२४, २२५, २४०, २६२
भद्रवातु	१५६	सिंघपुरी	११, ५३
भरतपुर	१५०	सुनकापुरी	१४५
भागलपुर	१०, ५३	सुरपुरि	१४५
राजस्थान	२	सोरठ	१६३
रूपनगर	२०४	सावित्री नगरी	८
रतनपुरी	५१	सिद्धार्थपुरी	११
राजाखेरा	११४	हस्तिनापुर	४६, १४१, १४६
राजग्रही	११३, १३७	त्रिभुवनगिरी	५, ३५, ३६
वाराणसी	१३, १५, ८४		
विजयापुर	४६		

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डॉ कस्तूरचन्द कासलीवाल

जन्म : 8 अगस्त, 1920 ग्राम सैंथल (राज.)

साहित्य सेवा : पैंतालीस से भी अधिक ग्रन्थों का लेखन एवं सम्पादन।

प्रमुख कृतियाँ : राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूचियाँ पाँच भागों में (तीन हजार से अधिक पृष्ठों में), प्रशस्ति संग्रह, प्रद्युम्न चरित, जिनदत्त चरित, हिन्दी पद संग्रह, वीर शासन के प्रभावक आचार्य, Jain Granth Bhandars in Rajasthan, शाकम्भरी के विकास में जैनों का योगदान, महाकवि ब्रह्म रायमल्ल एवं भट्टारक त्रिभुवन कीर्ति, कविवर बूचराज एवं उनके समकालीन कवि, मुलतान जैन समाज-इतिहास के आलोक में, भट्टारक रत्नकीर्ति एवं कुमुदचन्द, आचार्य सोमकीर्ति एवं ब्रह्म यशोधर तथा कविवर बुलाखीचन्द, बुलाकीदास, एवं हेमराज।

नाटक : परित्यक्ता, लड़की, जीवन संघर्ष, नयी दिशा, घर की लाज, तपस्विनी एवं धरम-करम — सभी मञ्चित।

पुरस्कृत कृतियाँ : राजस्थान के जैन सन्त (विद्वत् परिषद् द्वारा) महाकवि दौलतराम कासलीवाल (शास्त्री परिषद् द्वारा)

सम्मानित : वीर निर्वाण भारती मेरठ द्वारा अक्टूबर 74 में सम्मानित एवं इतिहास रत्न की उपाधि से अलंकृत अप्रेल 79 में निवाई (राज०) समाज द्वारा सम्मानित, अगस्त 80 में महिला जाग्रति संघ जयपुर द्वारा सम्मानित

सम्पादन : वीरवाणी जयपुर, स्मारिकाएँ — बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रन्थ, पण्डित चैनसुखदास न्यायतीर्थ स्मृति ग्रन्थ, पण्डित बाबूलाल जमादार अभिनन्दन ग्रन्थ, डॉ दरबारीलाल कोठिया अभिनन्दन ग्रन्थ एवं विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में 250 से अधिक लेखों का प्रकाशन।

परिवार : दो भाई, एक बहिन, पत्नी, दो पुत्र, तीन पुत्रियाँ एवं दो पौत्र।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

35828

श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

उद्देश्य

• प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सम्पूर्ण हिन्दी जैन साहित्य के प्रतिनिधि कवियों के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के मूल्यांकन के साथ उनकी विशिष्ट कृतियों को २० भागों में प्रकाशित करना।

•• जैन साहित्य का प्रकाशन, नव साहित्य निर्माण एवं प्रकाशन, प्राचीन एवं अर्वाचीन साहित्य पर शोध करने वाले विद्यार्थियों को दिशा निर्देशन।

पंडिताचार्य स्वस्ति श्री भट्टारक चारुकीर्त्तिजी
परम संरक्षक

साहू अशोककुमार जैन पूनमचन्द जैन
रमेशचन्द जैन डी. वीरेन्द्र हेगडे
निर्मलकुमार सेठी, महावीरप्रसाद सेठी
कमलचन्द कासलीवाल, डॉ. सरयू दोशी, पन्नालाल सेठी
संरक्षक

•

कन्हैयालाल जैन
अध्यक्ष

रतनलाल गंगवाल
पूरणचन्द गोदीका
कार्याध्यक्ष

•

डॉ कस्तूरचन्द कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान सम्पादक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi